Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

सं॰- 192

डॉ. टी. राजेश्वरानन्द शर्मा

सं॰ 963

हिन्दी और तेलुगु में महाकाव्य का स्वरूप-विकास

श्री वेंकटेश्वर विश्वविद्यालय
तिरुपति (आन्ध्र प्रदेश)

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Presented
by Author
at Ramayan Mela
Chitrakoot

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

सं. - 193

हिन्दी और तेलुगु में महाकाव्य का स्वरूप-विकास

(तुलनात्मक अध्ययन)

इलाहाबाद विश्वविद्यालय की डी. फिल्. उपाधि हेतु स्वीकृत शोधप्रबन्ध

लेखक

डॉ. टी. राजेश्वरानन्द शर्मा

एम. ए. (हिन्दी), एम. ए. (तेलुगु), डी. फिल्.

प्राध्यापक, हिन्दी विभाग

श्री वेंकटेश्वर विश्वविद्यालय, तिरुपति

प्रकाशक

श्री वेंकटेश्वर विश्वविद्यालय

तिरुपति (आन्ध्र प्रदेश)

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

प्रकाशक
श्री वेंकटेश्वर विश्वविद्यालय
तिरुपति (आन्ध्र प्रदेश)

लेखक
डॉ. टी. राजेश्वरानन्द शर्मा

प्रथम संस्करण, 1986

मूल्य :

मुद्रक
किरण प्रिन्टर्स
5-2-674, रिसाला अब्दुल्ला
(नया उस्मानगंज)
हैदराबाद–500 195.

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

प्रस्तावना

'हिन्दी और तेलुगु में महाकाव्य का स्वरूप-विकास' इलाहाबाद विश्वविद्यालय की डी. फिल. उपाधि के लिए स्वीकृत मेरे शोध-प्रबन्ध का संशोधित रूप है। इस ग्रन्थ में भारत की दो प्रमुख भाषाओं में समानान्तर रूप से विकसित एक विशिष्ट काव्य-विधा का अध्ययन तुलनात्मक दृष्टि से प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। वास्तव में युग-युग के विदेशी आक्रमण, भिन्न-भिन्न धार्मिक सम्प्रदायों का प्रचार-प्रसार और विविध भाषाओं के प्रचलन के बावजूद भारत का जनमानस एक है। भारत की सांस्कृतिक एकता के आधारतत्व धर्म में दर्शन में, जीवन में चिन्तन में, और काव्य में कला में सुरक्षित हैं। इन आधार तत्वों का अन्वेषण राष्ट्रीय एकता को सुदृढ़ बनाने के पावन कार्य में महत्त्व रखता है। इस दिशा में उक्त दोनों भाषाओं के साहित्यों का तुलनात्मक अध्ययन अत्यन्त महत्त्वपूर्ण माना जा सकता है। जैसे ललित कलाओं में साहित्य का प्रमुख स्थान है, वैसे ही साहित्य की अनेक विधाओं के बीच महाकाव्य का विशिष्ट स्थान है। इसी कारण उक्त भाषा-साहित्यों में महाकाव्य का स्वरूप-विकास प्रस्तुत अध्ययन का विषय बना है।

तेलुगु में महाभारत का प्रणयन ईसा की ग्यारहवीं शताब्दी में आरंभ हुआ और इससे पहले रचित साहित्य अब उपलब्ध नहीं होता। इस कृति की कतिपय रचना-पद्धतियाँ तेलुगु महाकाव्यों में गृहीत हुई हैं। हिन्दी साहित्य में महाकाव्य इस काल-सीमा के बाद ही रचित हुए हैं। अतः प्रस्तुत अध्ययन की पूर्ववर्ती सीमा तेलुगु के आदिकवि नन्नयभट्ट का समय है। तब से अद्यावधि परिस्थिति-सापेक्ष रूप में महाकाव्य के स्वरूप में विकास होता रहा है। आधुनिक युग में पाश्चात्य शिक्षा-संस्कारों का प्रभाव, स्वतन्त्रता-आन्दोलन आदि परिस्थितियों के कारण भारतीयों के जीवन-क्षितिज का विस्तार हुआ और नये मूल्यों के प्रति नयनोन्मेष संभव हुआ। फलतः भारतीय साहित्य में नई-नई काव्य-विधाएँ दृष्टिगत होने लगीं और पुरानी काव्य-विधाओं का नवीन रूप सामने आया। हिन्दी और तेलुगु में उन्नीसवीं शताब्दी के चतुर्थ चरण के आरंभ तक आधुनिक युग अवतरित हुआ। किन्तु बीसवीं शताब्दी में ही महाकाव्य का आधुनिक रूप स्पष्टतः लक्षित होता है। अतः प्रस्तुत अध्ययन की परवर्ती सीमा के रूप में उन्नीसवीं शताब्दी को ग्रहण किया गया है।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

प्रस्तुत शोधप्रबन्ध में संस्कृत के आलंकारिकों के द्वारा निरूपित महाकाव्य-लक्षण का विवेचन तो किया ही गया है। पाश्चात्य धारणाओं की किंचित् मीमांसा चिरन्तन मूल्यों के देशकाल-निरपेक्ष होने की दृष्टि से की गयी है। मुख्य रूप से आलोच्य भाषाओं के महाकाव्यों में दृष्टिगत विशेषताओं और प्रवृत्तियों के आधार पर इस काव्य-रूप को व्याख्यायित करने का प्रयत्न हुआ है। महाकाव्य-रचना की प्रेरक राजनैतिक धार्मिक एवं साहित्यिक परिस्थितियों को प्रस्तुत करते हुए भिन्न भाषा क्षेत्रों की दृष्टि से वातावरणगत साम्य एवं अन्तर को उजागर करने का प्रयास किया गया है। उभय क्षेत्रों में लब्धप्रतिष्ठ तथा महाकाव्य-संज्ञा के अधिकारी प्रमुख प्रबन्धकाव्यों को प्रतिनिधि रूप में माध्यम बनाकर इस काव्य-विधा के स्वरूप-विकास का तुलनात्मक अनुशीलन किया गया है। तुलना के लिए वस्तु-योजना, चरित्रचित्रण, रसव्यंजना, अलंकार-विधान, छन्दविधान और भाषा-प्रयोग के आधार गृहीत हुए हैं। साथ ही रस, अलंकार, छन्द आदि के विषय में उक्त साहित्यों में प्रचलित दृष्टि की भी मीमांसा की गई है। अन्त में इस अध्ययन की उपलब्धि को निष्कर्ष रूप में प्रतिपादित करके विषय का समापन किया गया है।

इस अध्ययन के दौरान आलोच्य भाषाओं के महाकाव्यों में कतिपय समानताएँ मुझे दृष्टिगत हुईं। भारतीय साहित्य की मूलभूत एकता के अन्वेषण में मेरे इस नम्र प्रयास का भी स्थान रहे, यह आकांक्षा स्वाभाविक है। भिन्नताओं को भी मैंने अनुभव किया है। एक क्षेत्र में किसी विशिष्ट महाकाव्य-प्रकार का आधिक्य और दूसरे क्षेत्र में उस प्रकार का एकदम अभाव, सोचने के लिए बाध्य करनेवाला तथ्य है। ऐसे स्थानों पर मैंने कार्यकारण सम्बन्ध की व्याख्या की चेष्टा की है। साहित्य-शोध में मतभेद के लिए हमेशा अवकाश है। विद्वान पाठक महोदयों से निवेदन है कि वे इन व्याख्याओं को सहृदयता से ग्रहण करें।

प्रस्तुत शोध-विषय के प्रति श्रद्धेय गुरुवर आचार्य एस. टी. नरसिंहाचारी ने मेरे मन में रुचि जागृत की थी। प्रबन्ध का लेखन आदरणीय प्रोफेसर रघुवंश के निर्देशन में सम्पन्न हुआ। सम्माननीय डॉक्टर साहब की प्रखर आलोचना दृष्टि एवं सहृदयता से मैं विशेष प्रभावित हूँ। उन्होंने समय समय पर सत्परामर्शों से मुझे अनुगृहीत किया। इस शोधकार्य के समय काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में भारतीय भाषा विभाग के अध्यक्ष मित्रवर प्रो. बी. वी. सूर्यनारायण ने तेलुगु साहित्य के विषय में अमूल्य सुझाव देकर बड़ी सहायता की। डॉ. जगदीश गुप्त, डॉ. हरदेव बाहरी तथा डॉ. राजेन्द्र कुमार वर्मा से मुझे प्रेरणा, प्रोत्साहन और पुस्तकादि की सहायता मिलती रही। एतदर्थ इन सब विद्वानों के प्रति हार्दिक कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

इस पुस्तक के प्रकाशन के लिए विश्वविद्यालय अनुदान-आयोग की आर्थिक सहायता श्री वेंकटेश्वर विश्वविद्यालय के माध्यम से प्राप्त हुई है। इसलिए आयोग तथा विश्वविद्यालय के अधिकारियों का आभारी हूँ। अन्त में मैं उन सभी के प्रति, विशेष रूप से सहृदय-शिरोमणि प्रोफेसर भीमसेन निर्मल के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ, जिनके सद्भाव से यह शोधप्रबन्ध प्रकाशित हो रहा है।

तिरुपति **टी. राजेश्वरानन्द शर्मा**

5-7-1985

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

अनुक्रमणिका

1. महाकाव्य का स्वरूप ... 1
2. महाकाव्य-सृजन की पृष्ठभूमि ... 30
3. वर्गीकरण और प्रमुख महाकाव्यों का परिचय ... 66
4. वस्तुयोजना ... 124
5. चरित्रचित्रण ... 145
6. रसव्यंजना ... 165
7. अलंकार-विधान ... 177
8. छन्दयोजना ... 201
9. भाषाप्रयोग ... 216
10. उपसंहार ... 225

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

प्रथम अध्याय

महाकाव्य का स्वरूप

भारतीय एवं पाश्चात्य अवधारणा में विभिन्न काव्यविधाओं के बीच महाकाव्य को प्रमुख स्थान प्राप्त है। दृश्यकाव्यों में नाटक को एवं श्रव्यकाव्यों में महाकाव्य को रचनाकार की कलात्मक प्रतिभा की चरम परिणति की दृष्टि से यह महत्वपूर्ण स्थान मिला है। संस्कृत के आदि महाकाव्य रामायण से लेकर अब तक लिखित विभिन्न भारतीय महाकाव्यों की लम्बी परम्परा ही यह प्रमाणित करने के लिए पर्याप्त है कि महाकाव्य-सृजन को कवि एवं प्रमाता अत्यन्त महत्व देते आये हैं। मुक्तक रचनाओं की अपेक्षा महाकाव्य या 'सर्गबन्ध' को श्रेष्ठ दो आधारों पर माना गया है, यथा—(1) मुक्तक के सीमित कलेवर में रस-परिपाक के सभी अंगों—विभावादि की सम्यक् योजना सम्भव नहीं। महाकाव्य का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक होता है, जिसमें मुक्तकों का अन्तर्भाव हो जाता है। विभिन्न पात्रों की चरित्रगत विशेषताओं को विकसित एवं स्पष्ट करने के लिए कतिपय प्रसंगों की योजना, कथा के प्रसंगों के माध्यम से रमणीक प्रकृति-वर्णनों के लिए अवकाश निकालना, किसी एक जाति के जीवन के भव्य आदर्शों का रसमय प्रतिपादन, उपक्रम एवं उपसंहार से युक्त तथा मार्मिक प्रसंगों से अलंकृत कथानक का सुन्दर निर्वाह आदि, महाकाव्य अर्थात् निबद्ध काव्य रूप में ही सम्पन्न हो सकते हैं, अनिबद्ध काव्यों में यह सम्भव नहीं होता।

(2) इसके अतिरिक्त कवि की प्रतिभा मुक्तकों की रचना से आरम्भ होकर निबद्ध काव्य के रूप में परिणत हो जाती है। निबद्ध काव्य के—महाकाव्य एवं खण्डकाव्य—इन दोनों रूपों में विस्तृति के आधार पर महाकाव्य ही उत्तम है।

मुक्तक की अपेक्षा प्रबन्ध के महत्त्व का प्रतिपादन करनेवाले प्रमुख आचार्यों के मतों का अवलोकन करना यहाँ पर समीचीन होगा।

आचार्य वामन के अनुसार असंकलित (मुक्तक) काव्यों में चारुता नहीं आती, जैसे अग्नि के अलग-अलग परमाणु प्रकाशित नहीं होते हैं। जिस प्रकार अग्नि के परमाणु मिलकर ही प्रकाशित होते हैं, उसी प्रकार प्रबन्धकाव्य ही शोभित होते हैं, मुक्तक नहीं। इसके अतिरिक्त माला और मौर के समान अनिबद्ध और निबद्ध काव्यों की सिद्धि क्रमशः होती है।[1] कहने का यही अभिप्राय है कि जिस प्रकार माला गूंथने के बाद ही मुकुट गूँथना सम्भव है,

---

1. 'हिन्दी काव्यालङ्कार सूत्र', पृष्ठ 59

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

कि महाकाव्यकार की प्रतिभा ही सबसे श्रेष्ठ है, क्योंकि अन्य रचनाओं के लिए किसी एक प्रकार की प्रतिभा पर्याप्त है तो महाकाव्य सृजन के लिए उन सब प्रतिभाओं का सम्यक् समन्वय आवश्यक है ।[1]

इस प्रकार भारतीय एवं पाश्चात्य दृष्टि में महाकाव्य के महत्वपूर्ण स्थान के विवेचन के अनन्तर महाकाव्य के स्वरूप-विषयक संस्कृत के काव्याचार्यों, तेलुगु एवं हिन्दी के आलोचकों एवं पाश्चात्य विद्वानों के मतों का अवलोकन करना उचित होगा। किन्तु यहाँ पर यह स्मरणीय है कि लक्षण-ग्रन्थों का निर्माण लक्ष्यग्रन्थों के प्रणयन के बहुत बाद में उन काव्य-ग्रन्थों के पर्याप्त प्रचार-प्रसार, पठन-चर्वण, चर्चा-समालोचन के फलस्वरूप होता है। जो लक्षण किन्हीं कला-कृतियों को दृष्टि में रखकर किसी समय-विशेष या देश-विशेष में बनाये जाते हैं, वे सार्वकालिक एवं सार्वभौम नहीं होते हैं। विकास की प्रक्रिया में से प्रत्येक वस्तु, प्रत्येक प्राणी एवं प्रत्येक भाव-विचार गुजरते रहते हैं तो काव्यरूपों में भी विकास अवश्य होता है। यदि विकास की प्रक्रिया के लिए कोई वस्तु अपवाद है तो वह नामरूपात्मक जगत् से भिन्न एवं त्रिकालाबाधित ब्रह्म ही है। अस्तु, उत्कृष्ट प्रतिभा के कवि काव्यशास्त्रियों के लक्षणों के अंकुश को स्वीकार भी नहीं करते हैं। इसका यह अभिप्राय कदापि नहीं है कि पूर्ववर्ती रचनाओं एवं प्रमुख काव्यशास्त्रीय ग्रन्थों से प्रभावित सामाजिक चेतना से अनन्तरकाल के साहित्यकार असंपृक्त रहते हैं। वस्तुस्थिति यह है कि रचना की स्रोतस्विनी परम्परा एवं प्रयोग के कूलों के बीच निरन्तर आगे बढ़ती रहती है।

आलोच्य साहित्यों (हिन्दी एवं तेलुगु) के महाकाव्य संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश आदि में प्रणीत भारतीय महाकाव्यों की अविच्छिन्न कड़ियाँ हैं। अतएव संस्कृत के आचार्यों के द्वारा निरूपित लक्षणों की मीमांसा यहाँ पर आवश्यक है। परन्तु पाश्चात्य महाकाव्यों एवं अरस्तू आदि के लक्षणों से हिन्दी एवं तेलुगु के महाकाव्य न्यूनाधिक मात्रा में प्रभावित हुए हों (आधुनिक महाकाव्य को छोड़कर) इसके स्पष्ट प्रमाण नहीं मिलते। फिर भी पाश्चात्य काव्यशास्त्रीय दृष्टि की किंचित् चर्चा मानवीय-मन एवं चिरन्तर मूल्यों के देश-काल निरपेक्ष होने के कारण प्रस्तुत सन्दर्भ में की जायेगी।

---

1. "By the general consent of critics the first praise of genius is due to the writer of an epic poem, as it requires an assemblage of all the powers which are singly sufficient for other compositions"—An Anthology of critical statements–S. Johnson : Lives of the poets–Milton, Page 156

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

संस्कृत के महाकाव्यों के लिए एवं महाकाव्य विषयक लक्षण-निरूपण के लिए आदि कवि वाल्मीकि का रामायण-काव्य ही मूल स्रोत रहा है, यह संस्कृत के विद्वानों का मत है।

संस्कृत साहित्य के इतिहासकार एम. कृष्णमाचार्य के अनुसार काव्य-शास्त्रियों के द्वारा निरूपित सभी लक्षण (महाकव्य संबंधी) रामायण में प्राप्त होते हैं और संस्कृत महाकाव्यों के रचना-विधान के लिए आदिकाव्य ही आदर्श रहा है।[1]

आचार्य बलदेव उपाध्याय के अनुसार "वाल्मीकि हमारे आदिकवि ही नहीं हैं, प्रत्युत् आदि आलोचक भी हैं। काव्य का नैसर्गिक रूप क्या होता है, महाकाव्य के भीतर किन मौलिक उपादानों का ग्रहण होता है, आदि प्रश्नों का प्रथम उत्तर हमें 'वाल्मीकि रामायण' में उपलब्ध होता है। संस्कृत साहित्य में 'महाकाव्य' की कल्पना रामायण के साहित्यिक विश्लेषण का निश्चित परिणाम है।[2] इसके अतिरिक्त संस्कृत महाकाव्य का विश्वविख्यात आलोकस्तम्भ 'रघुवंश' काव्य भी वाल्मीकीय रामायण का कतिपय दृष्टियों से ऋणी है। कथावस्तु के अलावा निसर्ग मधुर शैली के आधारभूत प्रसाद एव माधुर्य नामक काव्यगुण, वैदर्भी रीति, पात्र-चित्रण-विधान उपमौचित्य आदि विशेषताएँ वाल्मीकि से कलिदास ने उत्तराधिकार के रूप में प्राप्त कीं और काव्य के अवतारिका भाग में कालिदास ने वाल्मीकि स्तुत की है।[3] इस प्रकार स्पष्ट है कि संस्कृत के महाकाव्य विषयक निरूपण के उपजीव्य वाल्मीकि रामायण एवं कालिदास के महाकाव्य रहे हैं। भापा (देशी भाषा तेलुगु, हिन्दी इत्यादि) के कवियों के लिए कम से कम रामकथा पर लेखनी-विन्यास करनेवाले तुलसी, केशव, रामभद्र, रंगनाथरामायणकार आदि के सामने प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्षरूप से कालिदास एवं वाल्मीकि का रहना नितान्त स्वाभाविक था।

संस्कृत के आचार्यों के लक्षण:

संस्कृत के आचार्यों में कालक्रम की दृष्टि से सर्वप्रथम भामह ने महा-काव्य के स्वरूप के सम्बन्ध में लक्षण-निरूपण किया था। उनके अनुसार महाकाव्य सर्गों में निबद्ध होता है, महान का प्रतिपादन करता है, अभिव्यक्ति

---

1. 'हिस्ट्री आफ क्लासिकल संस्कृत लिट्रेचर', पृष्ठ 82
2. संस्कृत साहित्य का इतिहास-परिवृंहित संस्करण, पृष्ठ 36
3. रघुवंश—1–4

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

सम्बन्धी ग्राम्यता से रहित और अलंकार-सहित होता है, सदाश्रय होता है, इसमें मन्त्र, दूत, प्रयाण युद्ध एवं नायक का अभ्युदय वर्णित होते हैं, अतिव्याख्या का इसमें अभाव होता है, पंचसंधियों से युक्त इसका कथानक होता है, चतुर्वर्ग फलप्राप्ति का निरूपण लोकस्वभाव का चित्रण और विभिन्न रसों की पृथक्-पृथक् योजना इसमें होती है। महाकाव्य के आरम्भ में ऐसे व्यक्ति का वर्णन निरर्थक है, जिसका चरित्र समूचे काव्य में परिव्याप्त नहीं होता अथवा नायक के अभ्युदय में जो योगदान नहीं देता।[1] भामह के इस लक्षण में महाकाव्य की रूप सम्बन्धी विशेषताएँ स्पष्टतः प्रतिपादित हैं, यद्यपि बाह्य रूढ़ियों एवं वर्णनीय विषयों की विस्तृत सूची का इसमें अभाव है।

भामह के लक्षण में महाकाव्य का लक्ष्य, कथानक का संगठित रूप, भाषा शैली की अलंकारमयता एवं उदात्तता, नेता के चरित्र प्रतिपादन का विधान, जीवन के विविध पक्षों का अंकन-सभी मुख्य तत्व आ गये हैं।

भामह के उपरान्त आचार्य दण्डी का लक्षण विवेचनीय है, जिसके बहुप्रजलित एवं लोकप्रिय होने के कतिपय प्रमाण उपलब्ध होते हैं। दण्डी की परिभाषा में भामह-निरूपित सर्गबन्धत्व, कथानक का सदाश्रयत्व, चतुवर्ग फलायतत्व एवं पंचसंधियुक्तत्व का अनुमोदन है। साथ ही मंगलाचरण के रूप में निबद्ध काव्यरूढ़ि का प्रतिपादन है जो 'आशीर्नमस्क्रिया वस्तुनिर्देश' इन तीन

---

1. सर्गबन्धो महाकाव्यं महतांचमहच्च यत्।
अग्राम्य शब्द यर्थ्य च सालंकारं सदाश्रयम ॥

मंत्रदूत प्रयाणाजि नायकाभ्युदयैश्चयत्।
पंचभिः सन्धिभिर्युक्तं नाति व्याख्येयमृद्धिमत ॥

चतुर्वर्गाभिधानेपि भूयसार्थोपदेशकृत्।
युक्तं लोकस्वभावेन रसैश्च सकलैः पृथक् ॥

नायकं प्रागुपपन्यस्य वंशवीर्यं श्रुतादिभिः।
न तस्यैव वधं ब्रूया दन्योत्कर्षाभिधित्सा ॥

यदि काव्यशरीरस्य न स व्यापितयेष्यते।
न चाभ्युदय भाक्तस्य मुवादौ ग्रहणं स्तवे ॥

'काव्यालंकार आफ भामह'। —1–19–23

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

में से किसी एक रूप में हो सकता है ।[1] वर्णनीय घटनाओं में नगर वर्णन, शैल, ऋतु चंद्र, अर्कोदय, उद्यान, सलिल क्रीडा, मधुपान, रतोत्सव, विप्रलम्भ, विवाह, कुमारोदय, मन्त्र, दूत, प्रयाण, युद्ध और नायक अभ्युदय' को दण्डी ने समाविष्ट किया । भामह की 'सालंकार' अग्राम्य भाषा का अनुमोदन 'अलंकृत' शब्द से दण्डी ने किया । इस प्रकार दण्डी की परिभाषा में काव्य-रूढ़ियों की स्पष्ट योजना के कारण तदनन्तर काव्यशास्त्रियों एवं महाकाव्य प्रणेताओं को गतानुगतिक रूप में भी इसे स्वीकार करना पड़ा ।

रुद्रट की परिभाषा भामह एवं दण्डी के उपरान्त अपनी व्यापकता एवं माननीयता के सन्दर्भ में हिन्दी के कुछ विद्वानों की चर्चा का पात्र बनी । रुद्रट की दृष्टि राजसम्बन्धी कथानक के विवरण प्रस्तुत करने की अधिक रही है । इसके अतिरिक्त रुद्रट ने कथानक के उत्पाद्य एवं अनुत्पाद्य तथा महत्-लघु भेद किए हैं । अवान्तर कथाओं के गुम्फन को भी अपने लक्षण के अन्तर्गत समाविष्ट किया है । विविध घटनाओं को चित्रित करने की बात विस्तारपूर्वक कही । अन्य बातें भामह एवं दण्डी के समान ही हैं ।[2] डॉ. सत्यदेव चौधरी के अनुसार 'महाकाव्य का स्वरूप इस ग्रन्थ में सर्वाधिक विशद् एवं स्वच्छ रूप में प्रस्तुत हुआ ।'[3] डॉ. शम्भूनाथ सिंह के अनुसार—'रुद्रट ने महाकाव्य के संकीर्ण लक्षणों का नहीं. उसके व्यापक और आवश्यक तत्त्वों का निर्देश किया है ।'[4] किन्तु उपर्युक्त मान्यताओं में सत्यांश ही है, क्योंकि "महाकाव्य

---

1. सर्गबन्धोमहाकाव्यमुच्यतेतस्य लक्षणम् ।
अशीर्नमस्क्रिया वस्तुनिर्देशोवापि तन्मुखम् ।।
इतिहास कथोद्भूत मितरद्वा सदाश्रयम् ।
चतुवर्ग फलायत्तं चतुरोदात्त नायकम् ।।
नगरार्णव शैलर्तुचन्द्रार्कोदय वर्णनैः ।
उद्यान सलिल क्रीडा मधुमान रतोत्सवैः ।।
विप्रलंभै विवाहश्च कुमारोदय वर्णनैः ।
मन्त्रदूत प्रयाणाजि नायकाभ्युदयैरपि ।।
अलंकृत मसंक्षिप्त रसभावनिरन्तरम् ।
सर्गे रनतिविस्तीर्णैः श्रव्यवृत्तैः सुसन्धिभिः ।।—काव्यादर्श 1–14–20
2. रुद्रट—काव्यालंकार, षोडशोध्यायः, पृष्ठ 1, 32
3. रुद्रट—काव्यलंकार, भूमिका, डॉ. सत्यदेव चौधरी, पृष्ठ 21
4. हिन्दी महा-काव्य का स्वरूप-विकास, पृष्ठ 45

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

की कथा में अवान्तर कथाओं का समावेश जिस पर उन्होंने बल दिया है, कोई मौलिक मान्यता नहीं।...मूल कथा से असम्बद्ध कथाओं का समावेश कथा-संगठन की दृष्टि से शुभ नहीं हो सकता। ...जीवन के विविध प्रसंगों और व्यापारों की सूची बनाना और विशेष वस्तुओं और घटनाओं का ब्यौरा प्रस्तुत करना अधिक अपवादों को ही आमन्त्रित करना है।"[1]

भोज के लक्षण में दण्डी के लक्षण की प्रतिध्वनि है, क्योंकि उनके अनुसार महाकाव्य में कवि ऐसा इतिवृत्त ग्रहण करता है, जो स्वतः अपने मूलस्रोत में सुन्दर हो अथवा असुन्दर, बल्कि महाकाव्य रचयिता की प्रतिभा से सुष्ठु रूप ग्रहण करता है।[2] इसके अतिरिक्त भोज ने महाकाव्य की विशेषताओं को प्रबन्धगुण एवं प्रबन्धालंकार के नाम से प्रतिपादित किया। यद्यपि ये विशेषताएं भोज की मौलिकता का परिचय नहीं देती हैं तथापि उनका प्रतिपादन गुण एवं अलंकार के रूप में करना भोज की मौलिकता अवश्य है। भोज के द्वारा प्रबन्ध गुण तीन प्रकार के बताये गये हैं—शब्दगुण, अर्थगुण एवं उभयगुण। संक्षिप्त ग्रन्थत्वम्, अविषमबन्धत्वम्, श्रव्यवृत्तत्वम्, अनतिविस्तीर्ण सर्गादित्वम् शिष्ट-सन्धित्व—शब्दगुण हैं। चतुर्वर्ग फलायत्तत्वम्, चतुरोदात्तनायकत्वम्, रसभाव-निरन्तरत्वम्, विधिनिषेधव्युत्पादकत्व, सुसूत्रसंविधानकत्व ये पाँच अर्थगुण है। रसानुरूप सन्दर्भत्व, पात्रानुरूपभाषत्व, अर्थानुरूपछन्दस्त्व समस्त लोकरंजकत्व, सदलंकार वाक्यत्व—ये उभयगुण हैं।[3] शब्दगुण महाकाव्य के बाहरी रूपविधान से सम्बन्धित हैं तो अर्थगुण आन्तरिक वस्तु या कथानक से सम्बन्धित हैं। उभयगुण बाहरी रूप एवं आन्तरिक वस्तु दोनों से सम्बन्ध रखते हैं। इसी प्रकार भोज ने शब्दालंकार, अर्थालंकार एवं उभयालंकार का प्रतिपादन किया जो क्रमशः महाकाव्य के बाह्य रूप, वर्णनीय वस्तुओं तथा कथानक के संगठन से सम्बन्धित हैं।[4]

शब्दालंकार—नमस्काराद्युपक्रमत्व, सम्बन्धादिममताक्यत्व, भिन्न वृत्तत्व।
अर्थालङ्कार—नगराश्रमशैल सैन्यावासादि वर्णन, ऋतु, रात्रि आदि का वर्णन।
उभयालङ्कार—बीज, बिन्दु, पताका, प्रकारी, कार्योपकल्पनम् आदि।

---

1. आधुनिक हिन्दी काव्य में रूप–विधाएँ, पृष्ठ 62, 63
2. यस्मिन्नितिहासार्थानपेशनन्पेशलान् कविः कुरुते।
   स हयग्रीव वधादि प्रबन्ध इव सर्गबन्धस्यात्॥
   —भोज शृंगारप्रकाश, पृष्ठ 627
3. भोजस शृंगार प्रकाश, पृष्ठ 313 4. वही, पृष्ठ 403

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

चौदहवीं शताब्दी के आचार्य विश्वनाथ एवं विद्यानाथ के काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ पठन एवं पाठन की दृष्टि से अधिक प्रचलित रहे हैं। विश्वनाथ के अनुसार महाकाव्य सर्गबद्ध होता है। महाकाव्य की कथा इतिहाससम्मत अथवा सज्जनाश्रित होती है, उसका नायक सद्वंशज, क्षत्रिय या देवता होता है। एक वंश के अनेक राजा या अनेक कुलीन राजा भी नायक बन सकते हैं। श्रृंगार, वीर एवं शान्त इनमें से कोई एक रस अंगी होता है, आदि में नमस्क्रिया, वस्तुनिर्देश, आशीर्वाद—इन तीनों में से किसी एक रूप में मंगलाचरण होता है। खलों की निन्दा एवं सज्जनों का गुणकीर्तन होता है। पूरे सर्ग में एक ही प्रकार के छन्द का प्रयोग होता है, परन्तु सर्ग के अन्त में भिन्न वृत्त का प्रयोग होता है। सर्ग न तो अति स्वल्प होने चाहिए और न अति दीर्घ। संख्या में सर्ग आठ से अधिक होते हैं। वर्णनों की सूची में संध्या, सूर्य, इन्दु, रजनी, दिवस, प्रातः, मध्याह्न, मृगया, ऋतु, पर्वत, संयोग, वियोग, मुनि, यज्ञ, युद्ध, प्रयाण आदि है। वर्णन यथायोग्य और सांगोपांग होना चाहिए।[1] इस प्रकार विश्वनाथ की परिभाषा में संस्कृत के गण्यमान महाकाव्यों के लक्षण समाविष्ट होते हैं और दण्डी आदि पूर्वाचार्यों के लक्षणों का पुनराख्यान भी इसमें प्राप्त होता है।

---

1. सर्वबन्धो महाकाव्यं तत्रैको नायकः सुरः
सद्वंशः क्षत्रियोवापि धीरोदात्त गुणान्वितः।
एकवंशभवाभूपाः कुलजा बहवोपिवा ॥
श्रृंगारवीरशान्तानामेकांगी रस इष्यते।
अंगानि सर्वेपिरसाः सर्वे नाटकसंधयः ॥
इतिहासोद्भवं वृत्त मन्यद्वा सज्जनाश्रयम्।
चत्वारस्तस्य वर्गाः स्युस्तेष्वेकंच फलं भवेत् ॥
आदौ नमस्क्रियाशीर्वा वस्तुनिर्देश एववा।
क्वचिन्निन्दा खलादीनां सतांचगुणकीर्तनम् ॥
एकवृत्तमयैः पद्यै रवसानेन्यवृत्तकैः।
....
संध्यासूर्येन्दुरजनी प्रदोषध्वान्त वासराः
....
वर्णनीया यथायोगं सांगोपांगामी इह ॥

—साहित्यदर्पण 6-315-324

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

विद्यानाथ की परिभाषा यद्यपि महाकाव्य सम्बन्धी सभी विशेषताओं को समाविष्ट नहीं करती, तथापि केवल एक दृष्टि से महत्वपूर्ण है और वह दृष्टि अन्य साहित्यरूपों से इस विशिष्ट विधा के भेदक लक्षण के प्रतिपादन से सम्बन्धित है। विद्यानाथ के अनुसार नगर, अर्णव, शैल, ऋतु, चन्द्र, अर्कोदय, उद्यान, सलिलक्रीड़ा, मधुपान, रतोत्सव, विप्रलम्भ, विवाह, कुमारोदय मन्त्र, दूत, प्रयाण, आजि, नायकाभ्युदय ये अठारह वर्णन जिस काव्य में किये जाते हैं, वही महाकाव्य है और इन वर्णनों में से कुछ कम भी हो सकते हैं।[1] इस लक्षण में महाकव्य में वर्णनीय अष्टादश वस्तुओं की सूचीमात्र है। नायक, रस, कथानक, मंगलाचरण, छन्द-विधान आदि के सम्बन्ध में विद्यानाथ एकदम मौन हैं, केवल वर्णन का ही उल्लेख करने से महाकाव्य के अन्य तत्वों की अपेक्षा वर्णनप्रधानता पर उपर्युक्त आचार्य का बल है। इस लक्षण से यही प्रतीत होता है कि पुराण, इतिहास आदि अन्य साहित्यिक विधाओं से महाकाव्य को पृथक् करने के लिए संस्कृत के आचार्यों के एक वर्ग ने मुख्यरूप से वर्णनों को ही भेदक लक्षण माना है। केवल विद्यानाथ ने ही यह प्रतिपादन किया है, तो भी तत्कालीन कतिपय काव्यशास्त्रियों एवं कवियों के दृष्टिकोण का प्रतिनिधित्व विद्यानाथ करते हैं। विद्यानाथ ने दण्डी के द्वारा निरूपित, नगर, अर्णव, शैल, ऋतु, चन्द्र, अर्कोदय, उद्यान, सलिलक्रीडा, मधुपान, रतोत्सव, विप्रलम्भ, विवाह, कुमारोदय, मन्त्र, दूत, प्रयाण, युद्ध, नायकाभ्युदय—इन अष्टादश वर्णनों को ज्यों के त्यों शब्दतः ग्रहण किया है।

संस्कृत के लब्धप्रतिष्ठ आचार्यों के मतों के अवलोकन के फलस्वरूप महाकाव्य के स्वरूप के सम्बन्ध में निम्नलिखित विशेषताएँ स्पष्ट होती हैं—

(1) महाकाव्य सर्गबद्ध पद्यमय काव्यरूप है और ये सर्ग अत्यल्प भी नहीं होने चाहिए और न अतिविस्तृत।

(2) पुराण, इतिहास आदि अन्य विधाओं से महाकाव्य की पृथकता उसकी

---

1. नगरार्णवशैलर्तुचन्द्रार्कोदयवर्णनम्।
उद्यानसलिलक्रीडामधुपानरतोत्सवाः॥
विप्रलम्भो विवाहश्च कुमारोदय वर्णनम्।
मन्त्रद्यूत प्रयाणाजि नायकाभ्युदया अपि॥
एतानि यत्र वर्ण्यन्ते तन्महाकाव्य मुच्यते।
एषामष्टा दशानां यैः कैश्चिदूनमपीष्यते॥
—प्रदापरुद्रयशोभूषणम्, काव्यप्रकरण। 68-70

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

वर्णन-प्रधानता के कारण है। ये वर्णन अष्टादश या कुछ कम भी हो सकते हैं।

(3) अपने मूलरूप में असुन्दर, स्फीत अथवा विशृंखलित एवं अनौचित्यमय होने पर भी, कवि की प्रतिभा के कारण महाकाव्य में स्वीकृत हो जाने के उपरान्त इतिवृत्त में चारुता आ जाती है। इस चारुता के सम्पादन के निमित्त कवि पंच-सन्धियों से युक्त संगठित रूप में कथानक का निर्वाह करता है।

(4) महाकाव्य में वर्णित नायक धीरोदात्त होता है, जिसका चरित्रांकन आदि से अन्त तक काव्य के कलेवर में परिव्याप्त रहता है और अन्ततोगत्वा नायक के अभ्युदय का प्रतिपादन किया जाता है।

(5) भारतीय जीवन-दृष्टि के आधारभूत चतुर्वर्गफल एवं विधि-निषेध की व्यंजना महाकाव्य में सरस एवं व्यंग्य रूप में होती हैं।

(6) इस काव्य-विधा में कतिपय रसों की योजना की जाती है, किन्तु शृंगार, वीर, शान्त—इनमें से कोई एक रस अंगी रूप में तथा अन्य रस गौण रूप में होते हैं। धर्माविरुद्ध काम के प्रतिपादन के लिए शृंगार, लोक की स्थिति एवं कल्याण के निमित्त दुष्ट प्रवृत्तियों के भंजन के लिए वीर तथा परम सत्य की ओर नयनोन्मेष के लिए शान्तरस की स्थिति अंगीरूप में होती है।

(7) रसानुरूप छन्दों की योजना और अग्राम्य नागर पदावली का प्रयोग महाकाव्य में होता है। अलंकृत शैली महाकाव्य की विशेषता हैं। सर्ग के अन्त में भिन्न वृत्त की योजना की जाती है।

(8) काव्यादि में मंगलाचरण का विधान है। यह मंगलाचरण आशीर्वाद, नमस्क्रिया और वस्तुनिर्देश इनमें से किसी भी रूप में हो सकता है।

संस्कृत महाकाव्य के इन सभी लक्षणों के दो भेद किये जा सकते हैं—बाह्य और आभ्यन्तरिक। वस्तु, नेता एवं रस से सम्बन्धित विशेषताएँ आन्तरिक स्वरूप की हैं और शेष बाह्यरूप सम्बन्धी हैं। कृष्णमाचार्य के अनुसार—"संक्षेप में कहा जाय तो महाकाव्य वृहदाकार रचना है, जिसमें विविध वर्णन, विस्तृत निर्माण, धार्मिक अथवा ऐतिहासिक कथानक होता है और प्रकथन की सुविधा के लिए जो सर्गों में विभाजित किया जाता है।[1]"

---

1. Shortly stated a Mahakavya is a Writing of considerable length, varying discription and elaborate construction embracing a narrative theological or historical theme and is divided into Sargas or Cantos for convenience of narration.
History of classical Sanskrit literature, Page 81

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

पाश्चात्य मान्यताएँ :

पाश्चात्य विद्वानों में सर्वप्रथम अरस्तू ने महाकाव्य के स्वरूप के विषय में अपने मत प्रकट किए हैं। उनके लक्षण होमर के 'इलियड' और 'ओडेसी' को आदर्श महाकाव्य मानकर निरूपित हुए हैं। अरस्तू ने यद्यपि स्वतन्त्र रूप से इस काव्य-विधा का विवेचन नहीं किया है, परन्तु त्रासदी से इसके साम्य एवं भिन्नता के स्पष्टीकरण से महाकाव्य की विशेषताओं पर भी प्रकाश पड़ता है। अरस्तू ने कहा कि महाकाव्य समाख्यानात्मक होता है, इसमें केवल एक ही प्रकार का छन्द ग्राह्य होता है और इसकी कथा का निर्माण त्रासदी के समान नाटकीय ढंग से होना चाहिए। महाकाव्य का विषय आदि, मध्य और अवसान से युक्त समग्र एवं अन्वितिपूर्ण घटना होती है। वस्तु-संगठन की दृष्टि से ऐतिहासिक रचनाओं से महाकाव्य भिन्न है, क्योंकि इतिहास में एक ही कार्य को नहीं, बल्कि एक काल-खण्ड में एक या अनेक व्यक्तियों से सम्बन्धित सभी घटनाओं का समावेश होता है। किन्तु होमर ने युद्ध के एक विशेष भाग का चयन करके शेष के लिए अवान्तर कथाओं की योजना की है, जिसके कारण जीवन के विविध रूपों का चित्रण हो सका।[1] अरस्तू ने महाकाव्य की समाख्यानात्मकता, उसमें प्रयुक्त एक ही षटपदी छन्द, नाटकीय कार्यान्वित, ऐतिहासिक कथानक और बृहद् आकार का प्रतिपादन किया है। साथ ही इस आचार्य ने शैली की दृष्टि से 'इलियड' को सरल शैली का दुर्घटनापूर्ण काव्य और 'ओडेसी' को जटिल और नैतिकतापूर्ण काव्य माना है। भाषा के सम्बन्ध में अरस्तू ने माना कि वह भावानुकूल एवं सहज अलंकृत होनी चाहिए।

---

1. As to that poetic imitation which is narrative in form and employs a single metre the plot manifestly ought, as in a tragedy to be constructed on dramatic principles. It should have for its subject a single action whole and complete with a beginning middle and an end. It will thus resemble a living organism is all its unity and produce the pleasure proper to it. It will differ in structure from historical composition which of necessity present not a single action but a single period....
—Aristotle's theory of poetry and Fine Art–S. H. Butcher, Kalyani Publishers, Indian Edition Page 89

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

कूपर के अनुसार महाकाव्य विशेषतः एक बृहदाकार रचना है, जो किसी जातीय कथावस्तु पर आधारित होती है, वीर पात्र अपने साहसपूर्ण कृत्यों में चित्रित होते हैं और प्रकथन उदात्त शैली में कथानक की असंख्य पद्धतियों का अवलम्बन लेकर किया जाता है।[1]

कासेल के सम्पादित कोश में महाकाव्य के विषय में लिखा हुआ है कि वह लम्बा प्रकथनप्रधान पद्यकाव्य है जो वीर कृत्यों पर आधारित है, सामान्यतः एक मुख्य नायक होता है, जिसका सुदृढ राष्ट्रीय महत्व होता है।[2] उपर्युक्त दोनों परिभाषाओं में किसी जाति के भव्य जीवनादर्शों का प्रतिपादन, कलेवर की विस्तृति, वीर नायक के वीरतापूर्ण कृत्यों का वर्णन एवं उदात्त गंभीर शैली महाकाव्य के आवश्यक तत्व माने गये हैं। इन परिभाषाओं के निर्माताओं के सामने होमर के द्वारा रचित यूनानी महाकाव्य 'इलियड' एवं 'ओडेसी' ही रहे हैं, जिनके स्वरूप के सम्बन्ध में अरस्तू के लक्षण का ही अनुसरण किया गया है। वास्तव में पाश्चात्य भाषाओं में भी 'एपिक' का विकास होता रहा और किसी पूर्व निर्मित परिभाषा या लक्षण के संकुचित क्षेत्र में महाकाव्य की रूप सम्बन्धी सभी विशेषताओं का समाहार नहीं हो सकता था। देश और काल की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि के अनुसार इस काव्यरूप में नई-नई विशेषताएँ प्रकट होने लगीं। निम्नांकित पंक्तियों में इसी तथ्य की ओर ध्यान आकर्षित किया गया है—"संसार में जितने राष्ट्र और जितने कवि हैं, महाकाव्य की सचमुच ही, उतनी ही परिभाषाएं हैं और महाकाव्य रचना के उतने ही नियम हैं।[3]"

'इलियड' और 'ओडेसी' के आदर्श पर निर्मित होने पर भी 'पारडाइज लास्ट' आदि परवर्ती पाश्चात्य महाकाव्य पर्याप्त अन्तर रखते हैं। इस अन्तर को द्योतित करने के लिए आलोचकों ने महाकाव्य के दो भेद माने हैं, जैसे विकसनशील महाकाव्य और अलंकृत महाकाव्य। महाकाव्य के वस्तु-संगठन के सम्बन्ध में अरस्तू का मत है कि इस विधा में वर्णित कार्य परिपूर्ण एवं

---

1. प्रिफेस टू पोएट्री, पृष्ठ 407
2. Epic is a long narrative poem, recounting heroic actions, usually of one principal Hero and of ten with a strong national significance.
   —catsets Encyclopaedia of Literature Page 195
3. गोपीकृष्ण गोपेश : 'विदेशों के महाकाव्य' (भूमिका), पृष्ठ 13

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

एक ही होना चाहिए, जो आदि, मध्य एवं अवसान से युक्त है।[1] अरस्तू के अनुसार सम्पूर्ण महाकाव्य एक ही प्रकार के छन्द में निर्मित होता है और उसका पद्यबद्ध होना भी आवश्यक है।[2] किन्तु 'बुक आफ एपिक' के संकलन-कर्ता ने गद्य पद्य काव्यों का भी संग्रह किया है। इस प्रकार हम देखते हैं कि पाश्चात्य धारणा के अनुसार महाकाव्य का वीररसप्रधान होना, पद्यमय होना उदात्त गंभीर शैली में वर्णित होना, वस्तु का संगठित-रूप में होना और किसी जाति के भव्य जीवनादर्शों का प्रतिपादन करना उसकी प्रमुख विशेषताएँ हैं। भारतीय धारणा में वीररस के अतिरिक्त शृंगार एवं शान्तरस प्रधान भी महाकाव्य होते हैं। जहाँ भारतीय आलंकारिकों ने पंचसंधियों का विधान किया है तो पाश्चात्यों ने 'कार्य के आदि, मध्य एवं अवसान से युक्त होने की बात कही है। उदात्त गंभीर शैली के लिए 'अलंकृत' 'अग्राम्य' शब्दों का प्रयोग भामह और दण्डी ने किया है।

हिन्दी में महाकाव्य-विषयक धारणा :

हिन्दी और तेलुगु में परम्परागत प्रसिद्धि एवं प्रचलन की दृष्टि से जिन काव्यों को महाकाव्य साधारणतया माना जाता है और जिनके आन्तरिक लक्षणों के आधार पर इन भाषाओं के काव्यशास्त्रियों एवं नवीन आलोचकों ने इस विशिष्ट विधा की रूपात्मक विशेषताएँ प्रतिपादित की हैं, उनके अवलोकन से ही आलोच्य भाषाओं में महाकाव्य का स्वरूप स्पष्ट हो सकता है। आदिकाल के मुक्तकेतर निबद्ध काव्यों में हिन्दू सम्राट पृथ्वीराज की गौरव-गाथा को लक्ष्य बनाकर विरचित 'पृथ्वीराज रासो' को, उत्तर-भारत के लोक-नायक तुलसी से निर्मित 'रामचरितमानस' को, प्रमुख सूफी कवि जायसी प्रणीत 'पद्मावत्' को और केशव की 'रामचन्द्रिका' को महाकाव्य माना जाता है।

---

1. With respect to that species of poetry which imitates by narration and is verse it is obvious that the plot ought to be dramatically constructed like that of tragedy and that it should have for its subject one entire and perfect action having a beginning, a mddle and an end.
   —Loci critici–George Saints bury, Page 19
2. Epic poetry agreeas so for with tragic as it is an imitation of great characters and action by means of verse, but in this it differs that it makes use of only one kind of Metre throught and that it is narrative. Ibid Page 4

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

एक अतिवादी दृष्टि यह भी दिखाई पड़ती है—"हिन्दी में यद्यपि लम्बे आकार के अनेक सर्गबद्ध काव्यग्रन्थों की रचना हुई, किन्तु उनमें से केवल कुछ को ही महाकाव्य कहा जा सकता है और सच्चे अर्थ में तो महाकाव्य का प्राय: अभाव ही समझना चाहिए। वास्तव में हिन्दी भाषा के सम्पूर्ण विकास-काल में महाकाव्य की रचना के लिए उपयुक्त वातावरण का अभाव रहा है।"[1] किन्तु वास्तविकता यह है कि प्रत्येक युग एवं देश में महाकाव्य रचे जाते हैं, और उनके स्वरूप में विकास होता रहता है। विकास की इस प्रक्रिया को स्वीकार नहीं करने के कारण ही 'मानस' को पुराण काव्य 'पद्मावत' को 'कथाकाव्य' और रामचन्द्रिका को 'असफल प्रबन्ध काव्य' कहकर इन ग्रन्थों के महाकाव्यत्व को अंगीकार नहीं किया गया है। किन्तु पौराणिक तत्वों से युक्त होने पर भी 'मानस' महाकाव्य हैं, प्रेमाख्यान होते हुए भी 'पद्मावत' महाकाव्य है और आलोचकों की सहानुभूति से वंचित होने पर भी 'रामचन्द्रिका' महाकाव्य है। हिन्दी महाकाव्य के स्वरूप के सम्बन्ध में रीतिकाल में रचित हिन्दी के लक्षण ग्रन्थों में चर्चा होनी चाहिए थी, परन्तु नहीं हो सकी, क्योंकि रीतिकाल के आचार्य पहले कवि थे और बाद में आचार्य। उनके आचार्य पक्ष की अपेक्षा कवि-पक्ष ही सबल था। उन लोगों ने संस्कृत काव्यशास्त्र के कतिपय अंगों का पद्यबद्ध अनुवाद मात्र प्रस्तुत किया था। ऐसे ग्रन्थों से मौलिक उद्भावना और समग्र लक्षण-निरूपण की आशा नहीं की जा सकती। चिन्तामणि, कुलपति मिश्र, कुमारमणि, भिखारीदास, प्रतापसिंह आदि काव्य के सर्वांगनिरूपक आचार्यों ने काव्य-भेदों की चर्चा के प्रसंग में शब्द-शक्तियों के आधार पर उत्तम, मध्यम और अधम काव्यों की बात अवश्य कही है, किन्तु महाकाव्य आदि काव्य-विधाओं का उल्लेख तक नहीं किया है तो उनके लक्षण-निरूपण का प्रश्न ही नहीं उठता। मेरे इन निष्कर्ष की पुष्टि रीतिकाव्य के विशेषज्ञ डा. जगदीश गुप्त से हुई है। हिन्दी के रीति-निरूपकों में इस अभाव का यही कारण प्रतीत होता है कि उस युग में कवियों की यह प्रवृत्ति ही नहीं थी। इसके विपरीत तेलुगु के लक्षण ग्रन्थों में 14 वीं शताव्दी से ही कुछ काव्य-विधाओं पर प्रकाश डाला गया है।

हिन्दी के आधुनिक विद्वानों में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने सफल प्रबन्ध काव्य को महाकाव्य माना और गीतिकाव्य के लिए अधिकतर प्रगीत मुक्तक शव्द प्रयोग में लाया है। शुक्ल जी की दृष्टि में महाकाव्य के आवश्यक गुणों

---

1. हिन्दी साहित्य कोश (प्रथम भाग), पृष्ठ 580

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

में मानव जीवन के पूर्ण दृश्य की योजना सर्वोपरि है और वस्तु संगठन के लिए उन्होंने घटनाओं की सम्बद्ध शृंखला शब्द का प्रयोग किया, रसवादी होने के कारण 'नाना भावों का रसात्मक अनुभव करनेवाले प्रसंगों' की बात कही है। 'प्रबन्धकाव्य में मानव जीवन का एक पूर्ण दृश्य होता है। उसमें घटनाओं की सम्बद्ध शृंखला और स्वाभाविक क्रम के ठीक-ठीक निर्वाह के साथ-साथ हृदय को स्पर्श करनेवाले नाना भावों का रसात्मक अनुभव करानेवाले प्रसंगों का समावेश होना चाहिए।[1] यह सर्वविदित है कि शुक्ल जी की मान्यतायें जायसी और तुलसी के महाकाव्यों के चर्वण के फलस्वरूप निकली हैं। अतः 'मानस' एवं 'पद्मावत' पर उन लक्षणों का घटित होना स्वाभाविक है। इसके अतिरिक्त 'पृथ्वीराजरासो' को भी शुक्ल जी ने महाकाव्य माना है—"चन्दबरदाई—ये हिन्दी के प्रथम महाकवि माने जाते हैं और इनका पृथ्वीराजरासो हिन्दी का प्रथम महाकाव्य है।[2]"

शुक्लजी के बाद के इतिहासकारों ने भी रासो को महाकाव्य माना है, जैसे—"इसे महाभारत की तरह एक विशाल महाकाव्य मान सकते हैं।[3]" रामचन्द्रिका के विषय में शुक्ल जी का मत है कि "उसमें प्रबन्धकाव्य के वे गुण नहीं हैं जो होने चाहिए।[4]" शुक्ल जी की उपयुक्त मान्यता से प्रभावित होने के कारण ही कुछ विद्वानों को यह कहने में विलम्ब नहीं लगता कि उसको महाकाव्य क्या, एक प्रबन्धकाव्य भी नहीं माना जा सकता।[5]" रामचन्द्रिका के महाकाव्यत्व का निराकरण तीन आधारों पर किया गया है—(1) सम्बन्ध निर्वाह, (2) कथानक का समग्र प्रतिपादन, (3) जीवन के विविध पक्षों का उद्घाटन। कथानक और समग्र प्रतिपादन पर बल देनेवाले लोग यह विस्मृत कर देते हैं कि महाकाव्य वर्णनप्रधान काव्य-विधा है और इतिवृत्त की अपेक्षा आलंकारिक शैली एवं रमणीय वस्तु वर्णन ही इस विशिष्ट विधा को इतिहास और पुराण आदि से पृथक् कोटि में पहुँचाते हैं। पं. जगन्नाथ तिवारी ने इस तथ्य की ओर ध्यान आकर्षित किया है—"महाकाव्य जीवन-चरित अथवा इतिहास नहीं है, जिसमें कथानक के सब विवरणों का रहना

---

1. जायसी ग्रन्थावली की भूमिका, पृष्ठ 66
2. हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ 36
3. सम्पा. डा. नगेन्द्र : 'हिन्दी साहित्य का इतिहास', पृष्ट 60
4. जायसी ग्रन्थावली की भूमिका, पृष्ठ 201
5. हिन्दी साहित्य कोश (प्रथम भाग), पृष्ठ 582

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

आवश्यक है । कवि उन्हीं स्थलों को चुन लेता है जिनमें उसकी वृत्ति रमती है और उन्हीं का क्रमिक वर्णन करता है और इस क्रमिक वर्णन में प्रबंधत्व स्वत: ही आ जाता है ।[1]

स्वर्गीय लाला भगवानदीन के शब्दों में—"महाकाव्य का प्रधान लक्षण यह है कि वह वर्णन-प्रधान होना चाहिए । इसी प्रधानता का ध्यान रखते हुए केशव ने सांसारिक प्रधान दृश्यों तथा सामाजिक और विशेषकर राजा सम्बन्धी पदार्थों के वर्णन एक भी नहीं छोड़े ।[2]" इसलिए केशव युग एवं उनकी स्वयं की मान्यताओं को आधार मानकर 'रामचन्द्रिका' का अध्ययन करें तो उसके महाकाव्यत्व को स्वीकार करना ही पड़ेगा । अतः यह कथन असंगत प्रतीत नहीं होता कि "रामचन्द्रिका केशव का ऐसा असाधारण महाकाव्य है, जिसमें परम्परा-पालन के स्थान पर वैशिष्ट्य-सन्निवेश का अधिक ध्यान रखा गया है ।[3]"

'पद्मावत' को डॉ. गणिपतिचंद्र गुप्त महाकाव्य स्वीकार नहीं करके उसको रोमांचक शैली का कथा-काव्य मानते हैं ।[4] उनका तर्क यह है कि महाकाव्य के मूल में आदर्शवादी या आदर्शपरक चेतना है जो किसी महान पुरुष के चरित का अवतरण करती हुई उदात्त सन्देश की व्यंजना करती है, जब कि कथाकाव्य की मूल-चेतना स्वच्छन्दपरक होती है । डॉ. गुप्त के अनुसार कथाकाव्य में आदर्श की स्थापना की अपेक्षा सौन्दर्य और प्रेम की अभिव्यंजना का तथा लोकमंगल की अपेक्षा लोकरंजन का लक्ष्य अधिक रहता है । किन्तु 'पद्मावत' में शैली एवं भावयोजना की दृष्टि से उदात्तता एवं गंभीरता का पूर्ण निर्वाह पाया जाता है । प्रेमकथाओं की परम्परा में रचित होने पर भी प्राचीन काव्य-शास्त्रियों के गिनाये हुए सभी लक्षणों के प्राप्त नहीं होने पर भी इसी उदात्तता के आधार पर 'पद्मावत' को महाकाव्य माना जा सकता है । इस सन्दर्भ में पं. परशुराम चतुर्वेदी का कथन युक्तियुक्त है—"महाकाव्य संबंधी धारणा का आज तक पिछली कई शताब्दियों से विकास होता आया है और इसमें सन्देह नहीं कि उसमें और परिवर्तन या परिमार्जन की आवश्यकता होगी । इसके सिवाय सूफी प्रेमाख्यानों के वर्ण्य विषय तथा उनके विकास-

---

1. संक्षिप्त रामचन्द्रिका (प्रस्तावना), पृष्ठ 8
2. रामचन्द्रिका वक्तव्य, पृष्ठ 6
3. सम्पा. डा. नगेन्द्र : 'हिन्दी साहित्य का इतिहास', पृष्ठ 246
4. वही, पृष्ठ 161

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

क्रम को प्रभावित करनेवाले आदर्शों की ओर ध्यान देने से पता चलता है कि उनके स्वरूप निर्माण में अनेक प्रकार के कारणों ने सहयोग प्रदान किया होगा और इसी कारण इनका महाकाव्यत्व भी बहुत भिन्न लक्षणों पर आश्रित हो सकता है[1] ।" कथानक के समुचित निर्वाह के लिए भारतीय आलंकारिकों ने उसका सर्गबद्ध होना आवश्यक माना है। 'पद्मावत' के शुक्ल जी एवं वासुदेवशरण जी अग्रवाल के सम्पादित संस्करणों में स्तुतिखण्ड, मानसरोदक खण्ड इत्यादि खण्डविभाजन प्राप्त होता है । इस खण्डविभाजन से आलंकारिकों का 'अनतिविस्तीर्ण सर्गत्व' का उद्देश्य सिद्ध नहीं होता, क्योंकि कुछ परिमाण में अत्यल्प हैं तो कुछ अतिविस्तृत हो गये हैं । इसके अतिरिक्त 'पद्मावत' की प्रामाणिक हस्तलिखित प्रतियों में खण्डविभाजन दिखाई नहीं पड़ता[2] । संस्कृत के महाकाव्यों के अनन्तर एवं हिन्दी के महाकाव्यों से भी पूर्व प्राकृत एवं अपभ्रंश भाषाओं में 'सर्गबन्ध' से भिन्न महाकाव्यों की रचना की परम्परा थी, जिसका रूप हमें वाक्पतिराज के प्रसिद्ध महाकाव्य 'गउडवहो' तथा हरिभद्र कवि के 'णेमिणाह-चरिउ' में प्राप्त होता है[3] । इस प्रकार 'पद्मावत' में कुछ परम्परागत विशेषताएँ प्राप्त नहीं होतीं । तो भी उदात्ता एवं गंभीरता के आधार पर उसको महाकाव्य माना जाता है ।

'रामचरितमानस' के काव्यरूप के विषय में डा. श्रीकृष्णलाल का मत है कि वह पुराणकाव्य है, महाकाव्य नहीं । उनके शब्दों में रामचरितमानस रामभक्ति का काव्य है, रामचरित का काव्य नहीं, रामकथा का भी काव्य नहीं', अतः वे मानस को पुराण कहना ही अधिक उचित मानते हैं । साथ ही यह भी स्वीकार करते हैं कि "रामचरितमानस का शरीर तो महाकाव्यों जैसा हैं, परन्तु इसकी आत्मा पूर्णतः पुराणों जैसी है[4] ।" वस्तुतः पुराण उस रचना के लिए प्रयुक्त शब्द है जो सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मन्वंतर एवं वंशानुचरित—इन पाँच लक्षणों से युक्त होता है। वस्तु योजना, काव्यकलात्मक मार्मिक प्रसंगों की योजना, नादसौन्दर्यमय सालंकार भाषाशैली, आदि से अन्त तक परिव्याप्त एक धीरोदात्त नायक का चरित्र-चित्रण आदि ऐसे तत्व हैं, जिनके सद्भाव में 'मानस' पुराण की अपेक्षा महाकाव्य की कोटि में ही स्थान पाने

1. हिन्दी साहित्य, द्वितीय खण्ड, भारतीय हिन्दी परिषद्, पृष्ठ 274
2. हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप-विकास, पृष्ठ 418
3. हिन्दी साहित्य, द्वितीय खण्ड, पृष्ठ 274
4. मानस दर्शन, पृष्ठ 147

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

योग्य है। 'नाना पुराण निगमागम सम्मत' रचना के लिए यह आवश्यक नहीं है कि वह पुराण ही हो। 'रामचरितमानस' में पौराणिकता के अत्यधिक प्रभाव को कहीं-कहीं दृष्टिगत होनेवाले शिथिल कथानक और अवान्तर कथाओं तथा प्रसंगों के आधिक्य में लक्षित किया जाता है। विशेषकर बालकाण्ड एवं उत्तरकाण्ड में इस स्थिति का दर्शन होता है। इसके अतिरिक्त माहात्म्य और स्तोत्र, सैद्धान्तिक विवेचनों और प्रचारात्मक उपदेशों के आधिक्य को भी मानस की काव्यकला को दबानेवाला अंश माना जाता है।[1] किन्तु इस सन्दर्भ में यह स्मरणीय है कि मध्यकाल के धार्मिक जागरण के फलस्वरूप 'मानस' में भी पर्याप्त धार्मिक अंश विद्यमान है। किन्तु आंशिक धर्मभावना के कारण उसे पुराणकाव्य कहना युक्तियुक्त प्रतीत नहीं होता। अतः 'मानस' को पुराण काव्य कहना उसकी समूची काव्य-संवेदना को कुण्ठित करना है।

इन काव्यों के अलावा हिन्दी में 'छत्रप्रकाश', 'सुजान-चरित', 'राजविलास', 'हम्मीररासो' आदि वीरकाव्यों की एक समृद्ध परम्परा दृष्टिगत होती है। डॉ. टीकम सिंह तोमर ने इनको महाकाव्य माना है।[2] किन्तु डॉ. शम्भूनाथ सिंह ने इन ग्रन्थों को महाकाव्य स्वीकार नहीं किया है।[3] इनका मत युक्तियुक्त प्रतीत नहीं होता, क्योंकि 'आल्हाखण्ड' जैसी रचना को महाकाव्य संज्ञा प्रदान करके भारतीय वीरत्व के प्रतिरूप यशस्वी नेताओं के भव्य चित्रण से सम्पन्न निबद्धकाव्यों को 'महाकाव्य' पद से वंचित करना उचित नहीं है। वीरता का अच्छा परिपाक, ओजस्वी वाणी में युद्ध आदि का वर्णन एवं आदर्शमय वीरचरित्र की अवतारणा के कारण 'छत्रप्रकाश' आदि वीररसात्मक काव्यों को महाकाव्य मान सकते हैं।

हिन्दी के कतिपय विद्वानों ने महाकाव्य की परिभाषा दी है। बाबू गुलाबराय के अनुसार—"महाकाव्य वह विषय-प्रधान काव्य है, जिसमें अपेक्षाकृत बड़े आकार में, जाति में प्रतिष्ठित और लोकप्रिय नायक के उदात्त कार्यों द्वारा जातीय भावनाओं, आदर्शों और आकांक्षाओं का उद्घाटन किया जाता है।[4]" यहाँ पर स्पष्ट है कि पाश्चात्य साहित्यशास्त्र के अध्ययन के उपरान्त भारतीय एवं पश्चिमी विचारधाराओं का समन्वय करके परिभाषा निश्चित की गयी है।

---

1. हिन्दी साहित्य कोश, प्रथम भाग, पृष्ठ 58
2. हिन्दी वीरकाव्य, पृष्ठ 37
3. हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप विकास, पृष्ठ 671-74
4. काव्य के रूप, पृष्ठ 95

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

डा. नगेन्द्र ने 'कामयनी' के विवेचन के सन्दर्भ में लिखा—"मैं महाकाव्य के उन्हीं मूल तत्वों को लेकर चलूँगा जो देशकाल सापेक्ष नहीं है, जिनके अभाव में किसी भी देश अथवा युग की कोई रचना महाकाव्य नहीं बन सकती और जिनके सद्भाव में परम्परागत शास्त्रीय लक्षणों की बाधा होने पर भी किसी कृति को महाकाव्य के गौरव से वंचित नहीं किया जा सकता। वे मूल तत्व हैं—(1) उदात्त कथानक, (2) उदात्त कार्य अथवा उद्देश्य, (3) उदात्त चरित्र, (4) उदात्त भाव, (5) उदात्त शैली अर्थात् औदात्य ही महाकाव्य का प्राण है।[1]" उदात्तता को महाकाव्य का प्राण स्वीकार करने में कोई मतभेद नहीं हो सकता। परन्तु यह सापेक्ष शब्द है, जिसकी व्याख्या भिन्न-भिन्न रूपों में व्याख्याकारों की चतुरता के अनुसार सम्भव है। इसमें स्पष्टता का अभाव है।

हिन्दी साहित्य में आरम्भ से लेकर मध्यकाल तक की अवधि में रचित प्रमुख महाकाव्यों के निजी लक्षणों तथा उनकी आन्तरिक प्रवृत्तियों के परिशीलन से रूप सम्बन्धी निम्नोक्त विशेषताएँ बताई जा सकती हैं। महाकाव्य पद्यमय काव्यरूप है, जिसका कथानक प्रकथन की सुविधा के लिए कांडों प्रकाशों, समयों अथवा अध्यायों के नाम से सर्गबद्ध होता है। कुछ महाकाव्यों में सर्गविभाजन की पद्धति दृष्टिगत नहीं होती। पुराण, इतिहास आदि धर्म या उपदेश प्रधान रचनाओं की भाँति इसका साहित्यिक स्तर गौण नहीं होता। आन्तरिक संवेदना एवं मूलचेतना की दृष्टि से धर्मोपदेश और दार्शनिक विवेचनवाले पक्ष की अपेक्षा इस काव्य-विधा का साहित्यिक पक्ष प्रबल होता है। कथानक तथा वर्णित प्रसंगों के अनुरूप सरस वर्णनों की योजना की जाती हैं। इन वर्णनों की संख्या नियत नहीं है। इस विधा में स्वीकृत इतिवृत्त अपने मूलरूप में पौराणिक ऐतिहासिक और लोककथात्मक स्रोतों में प्रख्यात होता है। कवि की प्रतिभा के कारण संग्रह, त्याग और मौलिक उद्भावना की प्रवृत्ति के अधीन होकर वस्तु को नया रूप प्राप्त होता है। महाकाव्य में चित्रित नायक काव्य के समूचे कलेवर में परिव्याप्त रहता है। यह नेता देशगौरव की रक्षा करनेवाला अथवा जनजीवन को उदात्तता की प्रेरणा देनेवाला महान व्यक्ति ही होता है। विविध रसों की योजना होने पर भी शान्त, श्रृंगार, वीर इनमें से कोई एक अंगीरूप में प्रतिष्ठित होता है। अभिव्यक्ति में उदात्तता का निर्वाह शिष्ट और अलंकृत भाषा के प्रयोग से किया जाता है। स्पष्ट है कि हिन्दी

1. आस्था के चरण, पृष्ठ 538

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

में महाकाव्य संस्कृत के आलंकारिकों के द्वारा निर्दिष्ट लक्षणों का पूर्णरूप से अनुगमन नहीं करता ।

तेलुगु महाकाव्य का स्वरूप :

तेलुगु के लक्षण ग्रन्थों में चौदहवीं शताब्दी के विन्नकोट पेद्दन प्रणीत 'काव्यालंकार-चूडामणि' मुख्य है । इस ग्रन्थ में कवि ने काव्य-भेदों की चर्चा करते हुए यह बताया कि गद्य पद्य और मिश्र के भेद से काव्य तीन प्रकार के होते हैं । इन प्रकारों में नगर-वर्णन आदि अष्टादश वर्णनों से युक्त काव्य को 'भव्यप्रबन्ध' कहा जाता है ।[1] यहाँ पर महाकाव्य के लिए ही इस 'भव्य-प्रबन्ध' शब्द का प्रयोग कवि ने किया है । इस लक्षणकार ने अष्टादश वर्णनों की सूची प्रस्तुत की और प्रत्येक वर्णन के लिए लक्षण और उदाहरण स्वरचित पद्यों के रूप में दिये । सोलहवीं शताब्दी के 'रामराजभूषण' के अनुसार भी महाकाव्य में अष्टादश वर्णनों की योजना आवश्यक है । इन अठारह में से कुछ वर्णनों के कम होने पर भी उस रचना को महाकाव्य माना जा सकता है ।[2] इन दोनों लक्षणग्रन्थों ने संस्कृत के प्रसिद्ध अलंकारग्रन्थ 'प्रतापरुद्रीयम्' का अनुगमन किया है । स्मरणीय है कि 'प्रतापरुद्रीयम्' तेलुगु प्रान्त में रचित अलंकारग्रन्थ है और उसका प्रभाव तेलुगु के लक्षणग्रन्थों पर पड़ना स्वाभाविक था । वस्तुसंगठन, सर्गबन्धत्व, छन्दयोजना, शिल्पविधान आदि अन्य विशेषताओं पर उपर्युक्त लक्षणग्रन्थों में प्रकाश डाला नहीं गया । जैसे पहले कहा जा चुका है, काव्यशास्त्रियों के एक वर्ग ने अन्य काव्य रूपों से महाकाव्य को पृथक् करने में वर्णनात्मकता को ही भेदक लक्षण के रूप में ग्रहण किया होगा । तेलुगु के रीतिग्रन्थों के अलावा सृजनात्मक साहित्य में भी इस मान्यता का आभास मिलता है । कम से कम चौदहवीं शताब्दी के बाद के तेलुगु साहित्य में आधुनिक काल के आरम्भ तक वर्णनात्मकता ही महाकाव्य का मुख्य लक्षण है । वर्णनों की संख्या अष्टादश कहने पर भी कुछ कम होने की छूट भी दी गयी है । अप्पकवि नामक एक लाक्षणिक ने महाकाव्य में वर्णनीय वस्तुओं की सूची देते हुए संख्या अठारह से बाईस तक बढ़ाई है ।[3] इससे यही स्पष्ट होता है कि वर्णनों पर अधिक बल दिया गया है और उन वर्णनों के अठारह, उससे कम या अधिक होना इतिवृत में सन्निविष्ट प्रसंगों के आधार पर है ।

---

1. काव्यालंकारचूडामणि, तृतीय उल्लास, पृष्ठ 91
2. काव्यालंकारसंग्रहमु, द्वितीय आश्वास— पृष्ठ 165, 166, 167
3. अप्पकवीयमु, प्रथम आश्वास, पद्य 28

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

तेलुगु साहित्य का इतिहास 11 वीं शताब्दी के नन्नय भट्ट के 'महाभारत' ग्रन्थ के प्रणयन से आरम्भ होता है और तदादि निबद्ध काव्यों की एक लम्बी परम्परा अद्यावधि दिखाई पड़ती है। प्रौढ़ साहित्यिक एवं परिनिष्ठित भाषा-शैली की यह निबद्ध काव्य-परम्परा, शतककाव्य, गीत आदि मुक्तक रचनाओं की अपेक्षा साहित्यिकों का आदर पा सकी। नन्नयभट्ट, तिक्कना, एर्राप्रेगड, श्रीनाथ, श्रीकृष्णदेवराय, अल्लसानि पेद्दनार्य, पिंगलि सूरनार्य, रामराजभूषण आदि प्रतिभाशाली कवियों ने निबद्ध काव्य परम्परा को समृद्ध बना दिया था। एक हजार वर्ष की अवधि में रचित इन काव्यों में युगानुरूप धार्मिक, राजनैतिक एवं साहित्यिक चेतना के फलस्वरूप वैविध्य एवं विकास का सुस्पष्ट क्रम भी दृष्टिगत होता है। कहने का यही अभिप्राय है कि पूर्ववर्ती कवियों के साहित्य से अनन्तरकालीन कवि प्रत्यक्ष रूप में प्रभावित हुए और यह प्रत्यक्ष प्रभाव पूर्वकवि स्तुतियों, वर्णनों की योजना, छन्दों का विन्यास आदि से स्पष्ट होता है। प्रत्यक्ष प्रभाव का मुख्य कारण यही मालूम पड़ता है कि काव्यों में प्रयुक्त भाषा का रूप प्राय: एक ही प्रकार का रहा है। कवियों की निजी प्रतिभा के कारण काव्य-भाषा में नवीन गुणों का समावेश स्वाभाविक रूप में होते रहने के बावजूद भाषा की संरचना एवं व्याकरण प्राय: एक ही प्रकार के रहे हैं। ठीक इसके विपरीत स्थिति हिन्दी में है। अर्थात् चन्दवरदाई के काव्य को जायसी ने, जायसी के महाकाव्य को तुलसी ने और तुलसी को केशव ने पढ़ा हो और पढ़कर अपनी रचनाओं को रूप प्रदान किया हो, इसके प्रमाण उपलब्ध नहीं होते हैं। इस स्थिति का कदाचित् यही कारण है कि हिन्दी भाषा क्षेत्र अपेक्षाकृत विस्तृत अधिक है और काव्यरचना विभिन्न उपभाषाओं में सम्पन्न होती रही। इतना ही नहीं, आदिकाल में ब्रजभाषा और अवधी के क्षेत्र में बसनेवाले कवि, किस प्रकार की रचना कर रहे थे, इस बात का कोई प्रामाणिक मूल हमारे पास नहीं है।[1] इसीलिए आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी को पूर्ववर्ती साहित्य के अध्ययन के लिए बहुत कुछ कल्पना का आश्रय लेना पड़ा।

तेलुगु साहित्येतिहास को कुछ विद्वानों ने पुराण युग, पूर्व प्रबन्धयुग, प्रबन्धयुग, दक्षिणांध्र युग, आधुनिक (गद्य) युग के नाम से विभिन्न युगों में विभाजित किया है। इस युग-विभाजन से प्राचुर्य एवं महत्व की दृष्टि से उन कालखण्डों में रचित काव्यों के स्वरूप का भी बोध होता है। प्रथम युग में

1. हिन्दी साहित्य का आदिकाल, पृष्ठ 10

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

महाभारत, रामायण, हरिवंश भागवत् आदि संस्कृत ग्रन्थों का अनुवाद सम्पन्न हुआ। इन ग्रन्थों के सम्बन्ध में आलोचकों का मत है कि ये काव्य मात्र अनुवाद नहीं हैं, बल्कि काव्यकलात्मक दृष्टिकोण से संग्रह, त्याग एवं नवीन कल्पनाओं के माध्यम से पुराणेतिवृत्त के पुनराख्यान के रूप में सृजित अमर कृतियाँ हैं।[1] नन्नय भट्ट ने अपनी कृति के अवतारिका भाग में कहा है कि महाभारत को धर्म के तत्वज्ञ धर्मशास्त्र कहते है, अध्यात्म के वेत्ता वेदान्त कहते हैं, नीतिनिपुण नीतिशास्त्र कहते हैं, कविवृषभ महाकाव्य कहते हैं, लाक्षणिक लोग सभी लक्ष्यों का संग्रह कहते हैं, इतिहासकार इतिहास कहते हैं और श्रेष्ठ पौराणिक कई पुराणों का समुच्चय बताते हैं।[2] यद्यपि वेदव्यासकृत महाभारत के लिए ही उपर्युक्त विशेषणों का प्रयोग हुआ है तथापि नन्नयभट्ट की कृति पर ये विशेषण पूर्णरूपेण घटित होते हैं। ध्यान देने योग्य बात है कि उपर्युक्त कथन में महाभारत के पुराण, इतिहास आदि अन्य पक्षों के साथ उसको महाकाव्य भी स्वीकार किया गया है।

13 वीं शताब्दी के तिक्कन ने स्वरचित पन्द्रह पर्व के महाभारत के अवतारिका भाग में अपने काव्य के लिए 'प्रबन्धमण्डली' शब्द का प्रयोग किया।[3] इस प्रबन्ध-मण्डली शब्द की व्याख्या करते हुए आचार्य लक्ष्मीकान्तम जी ने लिखा है कि तिक्कना का महाभारत प्रबन्ध-महाचक्र है और उस काव्य में प्रत्येक पर्व एक प्रबन्धकाव्य है। हर पर्व में रसपोषण, पात्र चित्रण, यथोचित वर्णन एवं अलंकारों की योजना की गयी है।[4]

काव्यकलात्मक स्थलों की योजना के बावजूद तेलुगु के 'महाभारत' 'हरिवंश' एवं 'भागवत्' की रचना में कवियों का दृष्टिकोण स्वतन्त्ररूप में महाकाव्य-प्रणयन का नहीं था, बल्कि तेलुगु भाषियों के कल्याण के लिए अथवा अपने आश्रयदाता नरेशों की इच्छा के अनुरूप संस्कृत 'महाभारत', 'भागवत्', आदि के प्रतिपाद्य को तेलुगु में स्पष्ट करने का रहा है। यही कारण है कि तेलुगु साहित्य के इतिहास-लेखकों ने महभारत, हरिवंशपुराण, एवं भागवत के रचनाकाल को पुराण युग और अनुवाद युग का अभिधान दिया है। 15 वीं शताब्दी के श्रीनाथ ने पुराणों के अनुवाद से भिन्न

1. गौतमव्यासमुलु, पृष्ठ 26
2. श्रीमदान्ध्रमहाभारतमु—आदिपर्व, 1-32
3. वही, विराटपर्व, 1-8
4. तेलुगु विज्ञानसर्वस्वम्—तीसरा भाग, पृष्ठ 608

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

काव्यानुवाद का श्रीगणेश करके तेलुगु साहित्यिकों की दृष्टि को महाकाव्य-रचना की ओर आकर्षित किया । श्रीनाथ ने श्रीहर्ष के 'नैषधीयचरित' का भाषान्तर 'शृंगारनैषधम्' के नाम से तेलुगु में प्रस्तुत किया । तब तक काव्यशास्त्र से अनुमोदित लक्षणों का पालन करनेवाले प्रबन्धकाव्य का तेलुगु में अभाव था । अतः श्रीनाथ विरचित 'शृंगारनैषध' को इस दृष्टि से महत्व दिया जाता है । यद्यपि श्रीनाथ ने नैषधकाव्य का भाषान्तरीकरण ही किया था, प्रतिभाशाली कवि होने के कारण उन्होंने हृदयंगम रीति से मूल रचना के अभिप्राय को पहचान कर, भाव एवं रस का पोषण करते हुए, औचित्य का आदर एवं अनौचित्य का परिहार करके अलंकारों का रमणीय विधान करते हुए इस अनुवाद का निर्वाह किया ।[1] परवर्ती काव्य-रचयिताओं के सम्मुख शैली, अलंकार, छन्द, वस्तुयोजना एवं रस की दृष्टि से श्रीनाथ का ही आदर्श रहा है । अर्थात् 'प्रबन्ध' नामक काव्य-विधा के सुष्ठु सुन्दर रूप में अवतीर्ण होने के लिए श्रीनाथ युग पूर्व पीठिका के रूप में रहा है ।

तेलुगु साहित्य में 'प्रबन्ध' शब्द का प्रयोग आजकल एक विशिष्ट काव्य-विधा को लक्ष्य करके किया जाता है । जिस युग में विपुलता एवं गुण की दृष्टि से इस प्रकार के काव्यों की रचना उत्कर्ष को प्राप्त हुई थी, उसका व्यवहार 'प्रबन्धयुग' के नाम से इतिहास-लेखकों ने किया है । आचार्य लक्ष्मीकांतम जी के अनुसार संस्कृत में दण्डी के द्वारा सर्गबन्ध अथवा महाकाव्य के लिए निरूपित लक्षणों को ही तेलुगु के लक्षणकारों ने 'प्रबन्ध' के लक्षणों के रूप में स्वीकार किया ।[2] दूसरे शब्दों में एक अन्य स्थान पर इस अलोचक ने इसी तथ्य को स्वीकार करते हुए कहा कि दण्डी के द्वारा निरूपित महाकाव्य को ही तेलुगु में 'प्रबन्ध' कहा जाता है ।[3] श्री वंतरां रामकृष्णराव के अनुसार भी संस्कृत महाकाव्य के लक्षण ही किंचित् भिन्नता के साथ तेलुगु के 'प्रबन्धों' पर घटित होते हैं ।[4] इससे स्पष्ट होता है कि तेलुगु का 'प्रबन्धकाव्य' संस्कृत के महाकाव्य से अधिकांश में साम्य रखते हुए उससे कुछ अंशों में भिन्न भी है ।

श्रीकृष्णदेवराय के युग में विरचित निबद्धकाव्यों को और उस रचना-विधान को आधार बनाकर रचित परवर्ती काव्यों को आजकल 'प्रबन्ध' के

---

1. शृंगार नैषधमु—8–202
2. तेलुगु विज्ञानसर्वस्वमु, तृतीय भाग, पृष्ठ 667
3. साहित्यशिल्प समीक्षा, पृष्ठ 188
4. 'भारती', मासिक पत्रिका, जुलाई, 1997 ''इतिवृत्तनिर्वहण' नामक लेख ।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

नाम से व्यवहृत किया जाता है। स्वर्गीय काटूरि वेंकटेश्वरराव जी के अनुसार वस्तु में एकता, रसविधान में अंगांगिभाव, संवादचातुर्य, रमणीय अर्थों की योजना, उपक्रम एवं उपसंहार से शोभित इस काव्य-विधा के लिए 'प्रबन्ध' नामक एक नूतन संकेत चल पड़ा।[1] उपर्युक्त परिभाषा से इस काव्य-रूप की कुछ विशेषताओं पर प्रकाश पड़ता है।

तेलुगु साहित्य में प्रसिद्ध 'प्रबन्ध' काव्यों की निजी विशेषताओं और आन्तरिक प्रवृत्तियों के आधार पर आचार्य लक्ष्मीकांतम जी ने निम्नोक्त लक्षण बताये हैं[2]—

(1) 'प्रबन्ध' के लिए 'एकनायकाश्रयत्व' और वस्तु सम्बन्धी एकता प्रधान गुण हैं।

(2) यह काव्य-रूप अष्टादश वर्णनों से युक्त होता है।

(3) इसमें शृंगार प्रधान रस है। आवश्यकता के अनुसार अन्य रसों का विधान गौणरूप में हो सकता है।

(4) आलंकारिक भाषा-शैली प्रबन्ध का प्राणतत्व है।

(5) भाषान्तरीकृत रचना 'प्रबन्ध' नहीं हो सकती। स्वतन्त्र कृति ही 'प्रबन्ध' हो सकती है।

तेलुगु में श्रीकृष्ण देवराय के युग से पूर्व रचित काव्यों में रचना विधान की दृष्टि से कुछ को पुराण और इतिहास कहना अधिक समीचीन है, यद्यपि उनकी काव्यकला उच्च कोटि की है। इनमें इतिवृत्त अत्यन्त विस्तृत होता है, अवान्तर कथाओं की भरमार होती है और वस्तु सम्बन्धी एकता पर कवियों ने ध्यान नहीं दिया है। किन्तु नन्नेचोड विरचित 'कुमारसम्भव', श्रीनाथ का 'शृंगारनैषध', तिक्कन का 'निर्वचनोत्तर रामायण' आदि अन्य रचनाएँ भी दृष्टिगत होती हैं, जो महाकाव्य कोटि में स्थान पाने योग्य हैं। अतः महाकाव्य और 'प्रबन्ध' के बीच की विभाजक-रेखा अत्यन्त क्षीण हैं। साथ ही अनुवाद के कारण रचना के काव्यरूप में अन्तर मानना भी युक्तियुक्त प्रतीत नहीं होता। यही समीचीन होगा कि तथाकथित प्रबन्धों को अनन्तर-कालीन महाकाव्य कहा जाय। श्री साल्व कृष्णमूर्ति जी ने एक लेख में इस तथ्य की ओर साहित्यिकों का ध्यान आकर्षित किया है।[3]

---

1. 'तेलुगुकाव्यमाला' की भूमिका, पृष्ठ 7
2. तेलुगु विज्ञानसर्वस्वम्, तृतीय भाग, पृष्ठ 608
3. तेलुगुवाणी, पृष्ठ 166

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि संस्कृत के महाकाव्य से पर्याप्त साम्य रखते हुए भी तेलुगु के तथाकथित 'प्रबन्ध' कुछ अंशों में उससे भिन्न होते हैं। इस भिन्नता को द्योतित करने के लिए ही नवीन आलोचकों ने 'प्रबन्ध' नामक विशिष्ट काव्य-विधा की परिकल्पना की है। वास्तव में महाकाव्य का स्वरूप परिस्थितिसापेक्ष्य होकर विकसित होता रहा है। संस्कृत भाषा में भी महाकाव्य का स्वरूप समय की गति के अनुसार नवीन विशेषताओं को आत्मसात् करके विकासशील रहा है। देशी भाषाओं में आकर इस विधा का नवीन रूप और अधिक स्पष्ट हुआ है। अत: आचार्य लक्ष्मीकान्त जी ने यह स्वीकार किया है कि महाकाव्य को ही तेलुगु में 'प्रबन्ध' कहा जाता है।

आचार्य लक्ष्मीकांतम जी के विश्लेषण में तेलुगु महाकाव्य के आन्तरिक लक्षणों का निरूपण हुआ है। सर्गबन्धत्व, छन्दविधान, मंगलाचरण, गद्यपद्य की मिश्रित चम्पू शैली आदि बाह्य लक्षणों का विवेचन नहीं हुआ। तेलुगु के महाकाव्यों को सर्गों में नहीं प्राय: आश्वासों में विभाजित किया गया है। आचार्य विश्वनाथ के अनुसार महाकाव्य संस्कृत में सर्गबद्ध, प्राकृत में आश्वास बद्ध और अपभ्रंश में कुडवकबद्ध होते हैं।[1] इस विषय में तेलुगु महाकाव्य प्राकृत महाकाव्यों का अनुगमन करते हैं। तेलुगु महाकाव्यों में प्राय: आठ से अधिक आश्वासों का विधान नहीं है। नन्नेचोड कृत 'कुमारसम्भव' में द्वादश आश्वास हैं और तिक्कन के निर्वचनोत्तररामायण में दश आश्वास हैं। इन दोनों को अपवाद माना जा सकता है। 'मनुचरित्र' 'वसुचरित्र' और 'आमुक्त-माल्यदा' में छ:, 'कलापूर्णोदय' में आठ 'पारिजातापहरण' में चार तथा 'पांडुरंगमाहात्म्य' में पाँच आश्वासों की योजना है। इसके विपरीत संस्कृत के महाकाव्यों में आठ और आठ से अधिक सर्गों का विधान दृष्टिगत होता है। कालिदास के 'कुमारसम्भव' में सत्रह, 'रघुवंश' में उन्नीस, 'किरातार्जुनीय' में अठारह, 'शिशुपालवध' में बीस और 'नैषधीयचरित' में बाईस सर्गों की योजना है। आचार्य विश्वनाथ का लक्षण ही यह प्रतिपादित करता है कि महाकाव्य में आठ से अधिक सर्ग होते हैं।[2] इससे स्पष्ट है कि तेलुगु के महाकाव्य प्राय: विस्तृति में संस्कृत के महाकाव्यों से भिन्न हैं।

संस्कृत के महाकाव्यों में एक सर्ग में एक ही प्रकार के छन्द का प्रयोग और सर्गान्त में छन्द-परिवर्तन का विधान दृष्टिगत होता है। इस विषय में

1. साहित्यदर्पण, 6/326
2. सर्गाअष्टाधिका इह—साहित्यदर्पण, 6/320

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

तेलुगु के महाकाव्य संस्कृत महाकाव्यों से भिन्नता रखते हैं। क्योंकि एक आश्वास में एक ही प्रकार के छन्द का प्रयोग नहीं, बल्कि एक से अनेक छन्दों का प्रयोग प्रत्येक आश्वास में किया गया है। जहाँ एक ही प्रकार का छन्द 'द्विपद' में पूरे महाकाव्य का निर्वाह किया गया है, वहाँ छन्द-परिवर्तन का प्रश्न नहीं उठता। हिन्दी के महाकाव्यों में 'पृथ्वीराजरासो' 'रामचन्द्रिका' आदि छन्दों की विविधता के लिए विख्यात हैं। आचार्य हजारीप्रसाद के अनुसार अनेक शब्दों में कथा कहने की प्रथा केशवदास की अपनी चलाई हुई नहीं है। 'करकंडुचरिउ' 'णयकुमारचरिउ' आदि में छन्द बदलने की प्रवृत्ति मिलती है।[1] अतः स्पष्ट है कि हिन्दी, तेलुगु और अपभ्रंश के कुछ महाकाव्यों में छन्दवैविध्य की पद्धति भी दृष्टिगत होती है। कहने का यही अभिप्राय है कि देश और काल के अनुसार महाकाव्य के स्वरूप में विकास होता गया है और यह विकास छन्दोयोजना में भी दृष्टिगत होता है।

गद्य-पद्य-मिश्रित चम्पूशैली तेलुगु के अधिकांश महाकाव्यों की विशेषता है। संस्कृत महाकाव्यों में पद्य ही पद्य हैं, गद्य का बिलकुल अभाव है। हिन्दी के सभी महाकाव्यों में यद्यपि गद्य का विधान दृष्टिगत नहीं होता तथापि प्रकारान्तर से 'वचनिका' के नाम से 'पृथ्वीराजरासो' और 'हम्मीररासो' में कहीं-कहीं गद्य के दर्शन होते हैं। अपभ्रंश भाषा में रचित विद्यापति की कीर्तिलता में पद्यों के बीच-बीच में अलंकृत गद्य दिखाई पड़ता है। तेलुगु के महाकाव्यों में भी प्राचुर्य की दृष्टि से पद्यों की मात्रा ही अधिक है, परन्तु बीच में यत्र-तत्र अलंकृत गद्यखण्डों का भी विधान किया गया है। वास्तव में तेलुगु साहित्य के आरम्भ से ही गद्य-पद्य की मिश्रित शैली प्रचलित हो गयी। तेलुगु के पूर्व साहित्यारूढ़ कन्नड़ भाषा के ग्रन्थों में इस मिश्रित शैली का प्रयोग हुआ था।[2] कन्नड के प्रभाव से तेलुगु के काव्यग्रन्थों में यह शैली परम्परा रूप में अनुस्यूत हुई। तिक्कनामत्य के द्वारा विरचित 'निर्वचनोत्तर रामायण' आदि कृतियाँ इस प्रवृत्ति के अपवाद हैं। 'निर्वचन' शब्द का अर्थ है गद्यविहीन। साहित्य में प्रचलित सामान्य प्रवृत्ति से भिन्न अपनी कृति की विशिष्टता का द्योतन करने के लिए ही कवि ने 'निर्वचन' शब्द का प्रयोग किया, अन्यथा इस शब्द के प्रयोग की आवश्यकता ही नहीं थी। इस चम्पू-शैली की दृष्टि से भी तेलुगु के महाकाव्य संस्कृत महाकाव्यों से भिन्न हैं। विकास की इस प्रक्रिया में

---

1. हिन्दी साहित्य का आदिकाल, पृष्ठ 103
2. 'हिन्दी साहित्यकोश', पहला भाग, पृष्ठ 189

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

एक सीढ़ी आगे बढ़कर पाश्चात्य समीक्षकों ने यह बताया कि महाकाव्य की रचना गद्य में भी सम्भव है ।[1]

तेलुगु के महाकाव्यों में मंगलाचरण की काव्यरूढ़ि मिलती है । इसमें 'आशीर्नमस्क्रिया वस्तु निर्देशोवापितन्मुखम्' वाले दण्डी के लक्षण का पालन किया गया है । मध्यकाल तक के भारतीय महाकाव्यों में मंगलाचरण की रूढ़ि प्राय: सभी भाषाओं में दिखायी पड़ती है । इसके अतिरिक्त तेलुगु के महाकाव्यों में विस्तृत 'अवतारिका' (भूमिका भाग) का विधान भी एक उल्लेखनीय विशेषता है । अवतारिका में निम्नांकित अंशों की योजना की गयी है—(1) इष्टदेवता की वन्दना, (2) गुरु की वन्दना, (3) पूर्व कवियों की स्तुति, (4) सुकवि स्तुति, (5) कुकवि निन्दा, (6) सत्कविता के आवश्यक गुणों का कथन, (7) प्रस्तुत काव्य में कवि का दृष्टिकोण एवं काव्य की विशिष्टता का कथन, (8) कवि का वंश परिचय, (9) काव्यरचना का प्रेरक स्वप्नवृत्तान्त अथवा आश्रयदाता नरेश या मन्त्री की अभ्यर्थना, (10) अभ्यर्थना के प्रसंग में कवि का सम्मान, (11) आश्रयदाता का वंश परिचय, उसकी वितरणशीलता, पराक्रम, साहित्यानुराग आदि का कथन, (12) षष्ठ्यन्त,[2] (13) मानवों को काव्य समर्पित करने की पद्धति की निन्दा आदि अन्य विषय । तेलुगु के महाकाव्य-स्रष्टाओं ने एक स्वतन्त्र और अभिनव इकाई के रूप में अवतारिका भाग को विकसित किया है । संस्कृत के महाकाव्यों में इतने अंशों से समृद्ध अवतारिकाएँ नहीं मिलती ।

निष्कर्ष :

हिन्दी और तेलुगु में महाकाव्य के बाह्य लक्षण एवं काव्य-रूढ़ियाँ भिन्न-भिन्न परिवेश और परम्परा के अनुसार विकसित हुई हैं । वातावरणगत साम्य एवं भिन्नता के अनुरूप काव्य-रूढ़ियों के पालन में साम्य और अन्तर स्वाभाविक है । एक ही भाषा क्षेत्र में भी महाकाव्य के बाह्य लक्षणों में भेद हो सकता है, जैसे 'पद्मावत' में 'मुहम्मद साहब' की वन्दना और शाहेवक्त की प्रशंसा है, जिसका 'रामचरितमानस' में अभाव है । 'पृथ्वीराज रासो' में छन्द-वैविध्य है तो 'पद्मावत' में दोहा और चौपाई को छोड़कर तीसरे प्रकार

1. 'दि इंगलिश एपिक एण्ड इट्स बैकग्राउण्ड', पृष्ठ 182
2. षष्ठी विभक्ति से समाप्त होनेवाले छन्दों का विधान । इस अंश के अन्तर्गत काव्य के संरक्षक नरेश या भगवान के गुणों का वर्णन किया गया है ।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

के छन्द का प्रयोग नहीं हुआ है। आचार्य विश्वनाथ के लक्षण के अनुसार एक सर्ग में एक ही प्रकार के छन्द का प्रयोग होना चाहिए। किन्तु हिन्दो और तेलुगु के महाकाव्यों ने इस नियम का अतिक्रमण किया है। इस प्रकार महाकाव्य के बाह्य लक्षणों में स्थिरता नहीं होती। काव्य ग्रन्थों के महाकाव्यत्व के निर्णय में ये लक्षण उपयुक्त नहीं हैं। आन्तरिक स्वरूप का निरूपण करनेवाले शाश्वत लक्षणों का आधार ग्रहण करना ही समीचीन होगा।

वस्तु, नेता और रस से सम्बन्धित लक्षण महाकाव्य के आन्तरिक लक्षण हैं, जो शाश्वत हैं, अर्थात् देश-काल के अन्तर से इनके मूल रूप में परिवर्तन नहीं होता। भिन्न-भिन्न आकार-प्रकार के और शैली-शिल्प के काव्यों को 'महाकाव्य के अन्तर्गत समाविष्ट करने के आधार ये ही शाश्वत लक्षण हैं। साथ ही अभिव्यक्ति संबंधी उदात्तता और मुक्तकेतर रूप में प्रबंधत्व या निबद्धता भी महाकाव्य के अनिवार्य लक्षण हैं। अभिव्यक्ति में उदात्तता शिष्ट जनोचित सालंकार भाषा के प्रयोग से होती है। इन विशेषताओं का समाहार करते हुए कहा जा सकता है कि महाकाव्य ऐसा निबद्ध काव्य रूप है, जिसमें प्रख्यात या काल्पनिक आदर्शमय महान नेता से संबंधित विस्तृत इतिवृत को संगठित एवं रसात्मक भव्य रूप में शिष्ट जनोचित सालंकार शैली में वर्णित किया जाता है।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

द्वितीय अध्याय

महाकाव्य-सृजन की पृष्ठभूमि

हिन्दी और तेलुगु में महाकाव्य के सृजन के लिए उत्तरदायी एवं इस काव्य-विधा के स्वरूप को प्रभावित करनेवाली राजनैतिक, धार्मिक एवं साहित्यिक परिस्थितियों का अनुशीलन इस अध्याय में अभीष्ट है। इन परिस्थितियों की पृष्ठभूमि के आधार पर ही महाकाव्य का प्रणयन आलोच्य भाषाओं में सम्पन्न हुआ। इन दोनों भिन्न भाषा-क्षेत्रों में वातावरण की दृष्टि से जो साम्य और वैषम्य रहे हैं, उनको अवगत करना महाकाव्य के स्वरूप में लक्षित समानताओं एवं विषमताओं को समझने के लिए आवश्यक है। वास्तव में कोई भी साहित्य तत्कालीन सामाजिक चेतना एव परम्परा के रूप में प्राप्त वैचारिक, धार्मिक, कलात्मक मान्यताओं से असम्पृक्त नहीं रह सकता। साहित्यकार परम्परागत तत्वों को अपने रचनात्मक व्यक्तित्व एवं कलात्मक दृष्टिकोण के अनुरूप या तो आंशिक रूप में स्वीकार करता है अथवा सामयिक आवश्यकता के अनुसार विद्रोह प्रकट करके नई परम्पराओं का सूत्रपात करता है। इन दोनों स्थितियों में वातावरण का प्रभाव साहित्यिक-सृजन पर अनिवार्य रूप से पड़ता है।

राजनैतिक परिस्थितियाँ :

मध्यदेश का शासन करनेवाले हिन्दू राजाओं के समय में साहित्य एवं कला को राजकीय संरक्षण प्राप्त था। भारत में साहित्य को प्राप्त राजाश्रय की परम्परा बड़ी लम्बी है। कवि लोग चाटुकारितावश ही राजाओं की स्तुति करते रहे हों, यह मानना ठीक नहीं है। हमारे यहाँ राजाओं को भगवान के सदृश मानकर राजभक्ति को जनमानस में एक भव्य आदर्श के रूप में प्रतिष्ठित किया गया है। 'ना विष्णुः पृथिवीपतिः' वाली मान्यता से परिचालित होकर ही साहित्य में राजाओं का चरित्रांकन निष्ठापूर्वक किया जाता था। कविवर कालिदास ने 'रघुवंश' महाकाव्य में बड़े उदात्त रूप में रघुवंशी राजाओं को चित्रित किया है।[1] कालिदास के अनुसार राजा में सभी दिक्पालों के अंश विद्यमान रहते हैं। वैदिक विधिविधान से मूर्धाभिषिक्त, राजसूय एवं अश्वमेध जैसे क्रतुओं को सम्पन्न करनेवाले राजाओं के प्रति जनता के मन में श्रद्धा एवं विश्वास का रहना स्वाभाविक था।

हिन्दी के पहले प्रचलित संस्कृत, प्राकृत एवं अपभ्रंश भाषाओं के विशाल

---

1. त्यागाय संभृतार्थानां सत्याय मितभाषिणाम्
   यशसे विजिगीषूनां प्रजायैगृहमेधिनाम्। —रघुवंश 1-7

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

साहित्य के प्रणयन एवं प्रसार के लिए शासकों का विद्यानुराग ही उत्तरदायी रहा है। अश्वघोष को कनिष्क का, कालिदास को गुप्तवंशीय चन्द्रगुप्त का, बाणभट्ट को हर्षवर्द्धन का आश्रय प्राप्त था। 'नैषधीयचरित' के कवि भट्टहर्ष को कान्यकुब्जेश्वर की सभा में अतीव सम्मान प्राप्त था, जिसका उल्लेख कवि ने स्वयं किया है—

ताम्बूलद्वय मासनंच लभते यः कान्यकुब्जेश्वरा
द्यः साक्षात्कुरुते समाधिषु परंब्रह्म प्रमोदार्णवम्
यत्काव्यं मधुर्वाषित परास्तर्केषु यस्योक्तयः
श्री श्रीहर्ष कवेः कृतिः कृतिमुदे तस्याभ्युदीयादियम् ॥[1]

आठवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में कन्नौज के राजा यशोवर्मा विख्यात था, जिससे पूर्वदिशा में दिग्विजय करते हुए मगध को अपने अधीन में करके बंगाल की भी विजय की थी। इस विजय का वृत्तान्त कवि वाक्पतिराज ने प्राकृत भाषा के लब्धप्रतिष्ठ महाकाव्य 'गौडवहो' में विस्तारपूर्वक लिखा है। 'गौडवहो' के रचयिता वाक्पति राज यशोवर्मा के आश्रय में रहता था।[2] संस्कृत के प्रसिद्ध कवि भवभूति भी यशोवर्मा की राजसभा में रहता था।

सभी राजा लोग न केवल साहित्य के पोषक थे, परन्तु कुछ स्वयं काव्य-रचना भी किया करते थे। कान्यकुब्जेश्वर हर्षवर्द्धन के सम्बन्ध में प्रसिद्ध है कि वह राजकवि संस्कृत भाषा में 'रत्नावली'; 'प्रियदर्शिका' एवं 'नागानन्द' नामक दृश्यकाव्यों का प्रणेता है। कविवर बाणभट्ट ने 'हर्षचरित' के द्वारा साहित्यसंसार में हर्षवर्द्धन को अजर एवं अमर बना दिया है। इसी प्रकार उत्तर भारत एवं दक्षिणापथ को एक शासन में लानेवाले प्रतापी शातवाहन राजवंश का 'हाल' नामक राजा प्राकृत भाषा में अपनी कवित्व-शक्ति के लिए प्रख्यात है। हाल शातवाहन के द्वारा 'गाथा सप्तशती' का सम्पादन किया गया था। विद्वानों की यह भी धारणा है कि कुछ स्वरचित गाथाओं को भी हाल ने 'सप्तशती' में निबद्ध किया है। शासकों का प्रभाव साहित्य-सर्जना पर तीन रूपों में दृष्टिगोचर होता है। एक तो राजा लोग स्वयं कवि होने के कारण काव्य-ग्रन्थ लिखते थे। राजसी वातावरण एवं राजन्य वर्ग की मनोभावनाओं के अनुरूप ही उस साहित्य का रूपायित होना स्वभाविक था।

शासकों का प्रभाव कवियों को आश्रय देने में भी लक्षित होता है। गुण-

---

1. नैषधीयचरित—22-153
2. प्राकृत भाषा और साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृष्ठ 274

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

ग्रहण-पारीण राजाओं के संरक्षण में कवित्व का विकास सम्पन्न हुआ। इसके अलावा राजाओं के समकालीन तथा अनन्तरकालीन कवियों के द्वारा वीरता, पराक्रम, लोकसंग्रह, दुष्टशिक्षण आदि भव्य आदर्शों के मूर्तिमान् प्रतिरूप राजाओं के चरित्र की अवतारणा को ध्यान में रखकर ऐतिहासिक महाकाव्यों की रचना की गयी। किन्तु यहाँ पर स्मरणीय है कि प्राचीनकाल में इतिहास को आधुनिक अर्थ में कभी नहीं लिया गया। इतिहास के तथ्यों को चारुत्व सम्पादन के हेतु कला के परिधान से सज्जित करने में कवियों ने कल्पना का बहुत कुछ उपयोग किया। अतः "भारतीय कवियों ने ऐतिहासिक नाम भर लिया, शैली उनकी वही पुरानी रही, जिसमें ऐतिहासिक व्यक्ति को पौराणिक या काल्पनिक कथानक जैसा बना देने की प्रवृत्ति रही है, जिसमें काव्य-निर्माण की ओर अधिक ध्यान था, विवरण-संग्रह की ओर कम, कल्पना विलास का अधिक मान था, तथ्य निरूपण का कम, सम्भावनाओं की ओर अधिक रुचि थी, घटनाओं की ओर कम, उल्लसित आनन्द की ओर अधिक झुकाव था, विलसित तथ्यावली की ओर कम।[1]"

ईसा की सातवीं शताब्दी से बारहवीं शताब्दी के अन्त तक के समय को इतिहासविद् राजपूतकाल मानते हैं और इस अवधि में हमारे देश पर प्रायः राजपूत जाति का आधिपत्य था। इसके उपरान्त तेरहवीं शताब्दी से तुर्कों के आगमन के फलस्वरूप भारत में इस्लाम का प्रवेश हुआ। यद्यपि ग्यारहवीं शताब्दी में महमूद गजनवी ने सौराष्ट्र पर आक्रमण करके प्रसिद्ध सोमनाथ मन्दिर को नष्ट करके अपार धन-सम्पत्ति को लूट लिया था तो भी उसने भारत में रहकर शासन नहीं किया था। गजनी में उसने विद्याओं का पोषण किया। फारसी के प्रसिद्ध महाकाव्य 'शाहनामा' के रचयिता फिरदौसी महमूद गजनवी की राजसभा में रहता था। फिरदौसी के अतिरिक्त अलबेरूनी, फरूकी आदि विद्वान् भी गजनवी की सभा को सुशोभित करते थे। कहा जाता है कि अलबेरूनी संस्कृत का प्रकाण्ड पण्डित था।

इसी मुस्लिम राज्यकाल में हिन्दी भाषा साहित्यारूढ़ हुई। हिन्दी साहित्य के आरंभ के विषय में विद्वानों में मतभेद है। डा. धीरेन्द्र वर्मा के अनुसार हिन्दी साहित्य का आरंभ अधिक से अधिक नाथ पंथी साहित्य से माना जाता है और यह सिद्ध साहित्य सं. 750 से 1200 तक व्याप्त है।[2] आचार्य

---

1. आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी : 'हिन्दी साहित्य', पृष्ठ 68
2. हिन्दी साहित्य, द्वितीय खण्ड-प्रस्तावना, पृष्ठ 4

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार "वस्तुतः छन्द, काव्यरूप, काव्यगत रूढ़ियों और वक्तव्य वस्तु की दृष्टि से दसवीं से चौदहवीं शताब्दी तक का लोकभाषा का साहित्य परिनिष्ठित अपभ्रंश में प्राप्त साहित्य का ही बढ़ाव है, यद्यपि उसकी भाषा उक्त अपभ्रंश से थोड़ी भिन्न है।"[1] एक मान्यता यह भी दिखाई पड़ती है कि बारहवीं शती के अन्तिम चरण से हिन्दी साहित्य का आविर्भाव मानना तर्कसंगत है। क्योंकि इसके पूर्व का समय हिन्दी की प्रामाणिक रचनाओं की दृष्टि से शून्य है और उसे हिन्दी साहित्य की काल सीमाओं के बाहर समझना चाहिए।[2] इतना ही नहीं भाषा की दृष्टि से हिन्दी धीरे-धीरे 1500 ई. तक आते-आते अपने पैरों पर खड़ी हो गई।[3] हिन्दी साहित्य का आरंभ चाहे सातवीं शताब्दी से माना जाय तो भी निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि उसका उत्कर्षकाल तो मुस्लिम राज्यकाल के अन्तर्गत है।

मुस्लिम शासकों के राजत्व काल में भारतीय विद्याओं को भी राजकीय संरक्षण प्राप्त था। जहाँगीर और शाहजहाँ के कला तथा साहित्य प्रेमी होने के उल्लेख इतिहास ग्रन्थों में मिलते है। अबुल फजल आदि मुसलमान विद्वानों के साथ-साथ तानसेन और पंडितराज जगन्नाथ को दिल्लीश्वरों का सम्मान मिला था। अरबी, फारसी आदि विदेशी भाषाओं के अलावा गीर्वाण वाणी भी समादृत रही है। फारसी भाषा की विदेशी शैली के अलावा भारतीय शब्दों के अच्छे खासे प्रयोग से फारसी की एक भारतीय शैली का भी विकास हुआ। केवल भाषा तक सीमित नहीं होकर आदान-प्रदान साहित्य, शिल्प संगीत, वास्तु आदि कलाओं में भी सम्पन्न होता रहा। अमीर खुसरो की फारसी की मसनवी शैली में रचित देवल रानी 'खिज्रखां' नामक ऐतिहासिक काव्य, शैली और विषय वस्तु दोनों में ही मुल्ला दाउद, कुतुबन, मंझन और जायसी के लिए पथप्रदर्शक बना। इस ऐतिहासिक काव्य की कथावस्तु सुलतान अलाउद्दीन और उसके पुत्र खिज्रखां से सम्बन्धित है। भारतीय वेदान्त और इस्लाम के सिद्धान्तों के समन्वय से निर्मित सूफी साधनापरक रहस्यवाद और उसके प्रचार के लिए स्वीकृत सूफी प्रेमाख्यानों के प्रणयन का श्रेय भारत में मुसलमानों की राजसत्ता की सुस्थिरता को ही दिया जा सकता है।

मध्यदेश में राजसत्ता मुसलमानों के अधीन रही और हिन्दू धर्म

1. हिन्दी साहित्य, पृष्ठ 29
2. हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास, पृष्ठ 110
3. हिन्दी साहित्य का इतिहास, (सं. डा. नगेन्द्र), पृष्ठ 32

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

शासितों का धर्म रह गया, जिसकी ओर उपेक्षात्मक ही नहीं, बल्कि विध्वंसात्मक दृष्टिकोण राजाओं का रहा है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने जनता की इस पराजित मन:स्थिति का सम्बन्ध भक्तिकाव्य की मूल चेतना से जोड़ा है।[1]

मुसलमानों के शासन से असन्तुष्ट होकर हिन्दुत्व की रक्षा के लिए शिवाजी, छत्रसाल, हम्मीरदेव, राजसिंह आदि प्रतापी राजाओं ने विरोध किया। भूषण, गोरेलाल, मान आदि के द्वारा प्रणीत वीरकाव्य धारा में महान लोकरक्षक हिन्दू-नरेशों के वीर चरित्र की अवतारणा के रूप में काव्य रचना सम्पन्न हुई थी।

यद्यपि तेलुगु भाषी क्षेत्र पर विभिन्न राजवंशों ने शासन किया था, तथापि तेलुगु साहित्य का अभ्युदय चालुक्य-नरेशों के राज्यकाल में ही सम्पन्न हुआ। 'कुमारसम्भव' महाकाव्य के स्रष्टा नन्निचोड ने तेलुगु साहित्य के संरक्षक के रूप में चालुक्य-नरेश का उल्लेख किया है।[2] राजराज नरेन्द्र नामक चालुक्य वंशीय राजा के संरक्षण में ही तेलुगु के आदिकवि नन्नय भट्ट ने महाभारत की रचना आरम्भ की।

चालुक्य नरेशों के उपरांत संस्कृत एवं तेलुगु साहित्य, धर्म एवं ललित कलाओं के संवर्धन में योग देनेवाले प्रमुख राजा काकतीय एवं रेड्डी वंशों के थे। काकतियों के राजत्वकाल में अर्थात् चौदहवीं शताब्दी तक के समय में शैव धर्म एवं शैव साहित्य का उत्कर्ष हुआ था। पंडिताराध्य, पालकुरिकि सोम, नन्निचोड नामक कवियों ने शिवसम्बन्धी इतिवृत्त को ग्रहण करके तेलुगु साहित्य में काव्य रचे थे। इसके अलावा महाभारत के पन्द्रह पर्वों के प्रणेता, प्रख्यात कवित्रय में कालक्रम की दृष्टि से द्वितीय होने पर भी महत्व की दृष्टि से अद्वितीय तिक्कन सोमयाजी का भी यही समय रहा है। काकतीय वंश के प्रतापी राजा गणपति देव के द्वारा महाकवि तिक्कना को प्रदत्त समादार का वर्णन कासे सर्वप्पा नामक कवि ने किया।[3] काकतीयों के समय में ही संस्कृत भाषा में विद्यानाथ नामक आचार्य ने 'प्रतापरुद्र यशोभूषण' नामक अलंकार ग्रन्थ का प्रणयन किया था। विद्यानाथ ने काव्य लक्षणों के उदाहरण काकतीय प्रतापरुद्र से सम्बद्ध करके स्वकीय छन्दों में प्रस्तुत किये।

---

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ 56
2. नन्नेचोड का कुमारसम्भव—1-23
3. सिद्धेश्वर चरित्र, पृष्ठ 114

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

लक्षण ग्रन्थों की इस शैली से काव्यशास्त्रीय सिद्धान्तों के प्रतिपादन के साथ आश्रयदाता नरेश की प्रशस्ति का भी निर्वाह हुआ है।

काकतीयों के राज्य के पतन के उपरान्त मध्यान्ध्रदेश में लगभग एक शताब्दी तक रेड्डीवंश के नरेशों का प्रभुत्व रहा। इन रेड्डी राजाओं में कला एवं साहित्य के पोषण की दृष्टि से प्रोलय वेमारेड्डी, मल्लारेड्डी, अनवेमारेड्डी, कुमारगिरिरेड्डी, पेदकोमटि वेमारेड्डी, वीरभद्रारेड्डी प्रमुख हैं। रेड्डीवंश के इन राजाओं ने 'आन्ध्रदेशाधीश्वर' नामक उपाधि को धारण किया था। उस समय के राजाओं की 'सर्वज्ञ' उपाधि उनकी विद्वता की ओर संकेत करती है। राजाओं के विद्यानुराग के ही कारण तत्कालीन विद्यालयों में वेद, तर्क, व्याकरण, ज्योतिष, वैद्यक षट्दर्शन आदि का पठन एवं पाठन के रूप में प्रचार था। रेड्डी नरेशों के संरक्षण में महादेव, बाल सरस्वती, त्रिलोचनाचार्य, वामन भट्टबाण आदि कवि संस्कृत में रचना किया करते थे। कुमारगिरि रेड्डी ने 'वसन्तराजीय' के नाम से उत्तम नाट्यशास्त्रीय ग्रन्थ का प्रणयन किया था। काटय वेमारेड्डी ने कालिदास के नाटकों की व्याख्या 'कुमारराजीय' नाम से प्रस्तुत की। पेद कोमटि वेमारेड्डी ने 'संगीत चिन्तामणि', 'साहित्य चिन्तामणि', 'वीरनारायणचरित', 'सप्तशतीसारटीका', 'शृंगारदीपिका' आदि ग्रन्थ रचे थे। रेड्डी नरेशों के युग में 'श्रीनाथ' एवं 'एर्राप्रेगड' नामक तेलुगु कवि आन्ध्र साहित्य की अनुपम विभूति हैं।

दक्षिण भारत में ईस्वी 1337 से 1676 तक लगभग साढ़े तीन शताब्दी का एक वैभवपूर्ण युग दिखाई पड़ता है, जो धर्म, साहित्य और अन्य विभिन्न ललित कलाओं के इतिहास में महत्वपूर्ण स्थान का अधिकारी है। यह युग विजयनगर साम्राज्य का युग है। आचार्य लक्ष्मीकांतम् जी ने इस युग की तुलना अंग्रेज़ी साहित्य के 'एलिजबेत' युग से की है।[1] राजनैतिक दृष्टि से सुस्थिर शासन के जिस युग में उत्तर के मुसलमान शासकों के उदद्रव से देशी संस्कृति निर्भय रूप में रही और जनता उत्साही, वीर एवं कार्यशूर होकर धन-वैभव से अत्यन्त सुखमय जीवन बिता रही थी, उस युग में साहित्य का उत्कर्ष स्वाभाविक था। तेलुगु साहित्य के अभ्युदय की दृष्टि से ही नहीं, प्रत्युत महाकाव्य-रूप के उत्कर्ष एवं वैविध्य की दृष्टि से भी विजयनगर साम्राज्य का युग महत्वपूर्ण है।

विजयनगर साम्राज्य के अनन्तर काल में तेलुगु की साहित्यसरस्वती की

1. तेलुगु विज्ञानसर्वस्वमु, तृतीय भाग, पृष्ठ 609

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

आराधना तेलुगु भाषी प्रान्त से बाहर तमिलभाषी प्रान्त में गुणग्राहक राजाओं ने की थी। सत्रहवीं शताब्दी के प्रथम चरण से लेकर 150 वर्ष तक के समय में तेलुगु साहित्य एवं उसकी विभिन्न काव्य-विधाओं का प्रणयन मुख्य रूप से राजकीय संरक्षण में तमिल प्रान्त में सम्पन्न हुआ था।[1] तेलुगु भाषी प्रान्त के दक्षिण में इन केन्द्रों की भौगलिक स्थिति के कारण तेलुगु के साहित्येतिहास में इस युग को दक्षिणान्ध्रयुग कहा जाता है। इस युग में तेलुगु साहित्य को प्रोत्साहन तेलुगु भाषी राजाओं ने ही नहीं दिया, प्रत्युत महाराष्ट्र राजाओं ने भी दिया। तंजावूर के शासकों में रघुनाथ भूपाल और विजयराघव नायक अपने काव्यप्रेम तथा संगीतप्रेम के लिए विख्यात रहे हैं। रघुनाथभूपाल के कवि होने के कारण तेलुगु भाषा में 'वाल्मीकिचरित्र', 'शृंगार-सावित्री', एवम् 'रघुनाथ-रामायण' नामक काव्यग्रन्थ लिखे। इन ग्रन्थों के अतिरिक्त 'पारिजातापहरण', 'अच्युताभ्युदय', 'रुक्मिणी श्रीकृष्ण विवाह यज्ञगान', 'गजेन्द्रमोक्ष' एवम् 'जानकीपरिणय' नामक काव्यों के रचयिता के रूप में भी रघुनाथ नायक का उल्लेख किया जाता हैं, यद्यपि उपर्युक्त रचनाएँ इस समय उपलब्ध नहीं होती हैं।[2] रघुनाथ नायक की सभा में विलसित रामभद्रांबा एवम् मधुरवाणी नामक कवयित्रियों ने साहित्य-सर्जना करके तत्कालीन परिस्थियों में नारियों के साहित्यिक कृतित्व का परिचय दिया है। राजभद्रांबा के द्वारा विरचित 'रघुनाथाभ्युदय' नामक बारह सर्गों का ऐतिहासिक महाकाव्य संस्कृत भाषा में प्रसिद्ध है, जिसके विषय में आचार्य बलदेव उपाध्याय ने लिखा है कि रघुनाथ-भूपाल का जीवनचरित्र, वंश, सभा, सभा-कवि तथा राजसी वैभव का बड़ा ही सच्चा चित्र चित्रित किया गया है—'...इसे हम चरितकाव्यों की श्रेणी में रख सकते हैं।[3] इसके अतिरिक्त मधुरवाणी नामक कवयित्री के द्वारा तेलुगु के 'रघुनाथ रामायण' के संस्कृतीकरण का उल्लेख मिलता है और जो अधूरा ग्रन्थ प्राप्त हो सका है, उसमें 14 सर्ग तथा 1500 श्लोक हैं। आचार्य बलदेव उपाध्याय के अनुसार काव्यकला की दृष्टि से यह ग्रन्थ अतीव उत्तम है।[4] कहा जाता है कि रघुनाथ नायक ने राजसभा में मधुरवाणी को 'कनकाभिषेक' से समादृत किया था।[5] इसके अलावा रघुनाथ के राजदरबार में कृष्णाध्वरी

1. तेलुगु विज्ञानसर्वस्वमु—तृतीय भाग, पृष्ठ 617
2. तेलुगुवाणी, पृष्ठ 148
3. संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृष्ठ 282
4. वही, पृष्ठ 282
5. तेलुगु वाणी, पृष्ठ 184

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

एवं चेमकूर वेंकटकवि नामक तेलुगु के सिद्धहस्त् कवि भी वर्तमान थे। रघुनाथ-नायक के उपरान्त उस नायक वंश में विजयराघव नायक एवम् मन्नारूदास ने भी साहित्य एवम् कला को प्रश्रय दिया था। नायक वंश के राजाओं के उपरांत तंजावूर का शासन अठारहवीं एवं उन्नीसवीं शताब्दियों में महाराष्ट्र राजाओं ने किया था। महाराष्ट्र प्रान्त के मूलनिवासी होते हुए भी शाह जी, तुलजा जी, एकोजो, प्रतापसिंह, शरभोजी नामक राजाओं ने तेलुगु साहित्य की जो सेवा की थी और काव्य-रचना को जो आदर प्रदान किया था, वह अतुलनीय है।

साम्राज्य के अधिनेता राजाओं में कुछ ने स्वयं काव्य रचना करके साहित्य की श्रीवृद्धि की थी। राजाओं के इस काव्यगीत प्रियत्व को नायक के आवश्यक गुणों में एक माना गया है।[1] कीर्ति प्राप्ति के अतिरिक्त अपने वंश के पूर्वपुरुषों की यशोमय गाथाओं को काव्यबद्ध रूप में सुनने तथा धार्मिक दृष्टिकोण से भी प्रेरित होकर राजाओं ने साहित्यकारों को प्रोत्साहन दिया था। ग्यारहवीं शताब्दी का चालुक्यवंशीय राजराज नरेन्द्र तेलुगु भाषा में महाभारत का श्रवणाभिलाषी था। राजराज ने नन्नयभट्ट से यह निवेदन किया था—'ब्राह्मणों की आराधना करना, पार्वती पति शिव के चरण कमलों की पूजा, महाभारत श्रवणासक्ति, साधुसांगत्य, सन्तत दानशीलता ये पाँचों मेरे लिए अत्यन्त प्रिय विषय हैं। मैंने परिशुद्ध मति से अनेकों पुराणों का श्रवण किया, धर्मशास्त्र का विधान हृदयंगम कर लिया, उदात्त एवं रसान्वित काव्य तथा नाटकों के क्रम भी मैंने अनेक देखे हैं। भक्तिपूर्वक अपना हृदय शैवागमों में स्थिर किया परन्तु मेरे हृदय में 'महाभारत' के प्रतिपाद्य को सुनने की अभिलाषा अनवरत रूप से है।[2] इस अभिलाषा का एक अन्य कारण महाभारत के रूप में राजराजनरेन्द्र के पूर्व पुरुषों के इतिहास का वर्णित होना भी है, क्योंकि राजराजनरेन्द्र चन्द्रवंश का राजा था।[3] और महाभारत के चरित-नायक पाण्डव एवं कौरवों का वंश भी चन्द्रवंश है। अतः अपने कुलब्राह्मण नन्नयभट्ट से राजराजनरेन्द्र ने विनय की—'हिमकर (चन्द्रमा) से लेकर पूरू, भरत, कुरू एवं पाण्डु भूपति तक अनुस्यूत हमारे पवित्र वंश में प्रसिद्ध

---

1. प्रतापरुद्रयशोभूषण—नायक प्रकरण 21 तथा
   काव्यालंकारचूड़ामणि, तृतीयोल्लास—3
2. श्रीमदान्ध्रमहाभारमु—आदिपर्व, प्रथमाश्वास, 10-12
3. वही पद्य, 3

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

तथा विमल गुणों से संशोभित पांडवों का चरित निरन्तर रूप से सुनना मेरे लिए अभीष्ट है। मेरा चित्त भी भारत कथाश्रवण-प्रवण है। अतएव कृष्ण-द्वैपायन द्वारा महाभारत में निरूपित विषय को तेलुगु भाषा में अपने धीचातुर्य से सुस्पष्ट ढंग से रचना कीजिए।[1] इस प्रकार की अभ्यर्थनाओं में आश्रय-दाता नरेशों की कीर्तिकामना, धार्मिक अनुरक्ति तथा साहित्यानुराग मुखरित हुआ है।

सोलहवीं शताब्दी में एक मान्यता यह भी प्रचलित थी कि पृथ्वी पर शाश्वत रूप से यश प्रतिष्ठित होने के लिए सात साधनों का आश्रय लेना चाहिए। इन सात साधनों में काव्य को श्रेष्ठ माना गया और इन साधनों को 'सप्त संतान' के नाम से अभिहित किया जाता था। अप्पकवि नामक लाक्षणिक एवं नन्नेचोड कवि के अनुसार तटाक (तालाब), धन, अग्रहार'[2] मंदिर, उद्यानवन, पुत्र तथा काव्य ये सातों सप्तसंतान है।[3], राजा श्रीकृष्ण देवराय ने अल्लसानि पेद्दनार्य से यों निवेदन किया था—'सप्त संतानों में प्रसिद्धि पाकर अन्य साधनों की तुलना में शाश्वत रूप से पृथ्वी पर रहनेवाला काव्य ही है। अतः मेरे लिए शिरीष कुसुम के समान पेशल एवं सुधा की भांति मधुर उक्तियों से काव्य-रचना करें। आप हमारे हितैषी हैं, चतुर वचोनिधि हैं, पुराण आगम एवं इतिहास की कथाओं के अद्वितीय ज्ञाता हैं। आन्ध्र-कविता-पितामह हैं और कविमूर्धन्य हैं।[4] राजाश्रय में रचित होने पर भी तेलुगु के महाकाव्य नरेशों की मात्र प्रशस्तियाँ अथवा चाटुकारितापूर्ण रचनाएँ नहीं हैं। कवियों के विशिष्ट काव्यकलात्मक दृष्टिकोण के परिचायक हैं। काव्यों के अवतारिका-भाग में संयोजित आश्रयदाता की वंश-परम्परा, स्वभाव आदि का वर्णन, प्रत्येक आश्वास के आदि में कृतिपति का सम्बोधन और आश्वास के अन्त में विभिन्न छन्दों में कृतिपति का गुणाभिवर्णन युक्त संम्बोधन—इन रूपों में राजाश्रय का प्रभाव तेलुगु के काव्य-ग्रन्थों पर लक्षित होता है।

हिन्दी के प्रेमाख्यानक काव्यों के आरम्भ में भी तत्कालीन राजा की

1. वही पद्य, 14-16
2. अग्रहार—राजाओं के द्वारा यज्ञ, अध्ययन एवं अध्ययनपन की निर्विघ्न रूप में चलाने के लिए ब्राह्मणों को प्रदत्त गाँव अग्रहार कहे जाते हैं।
3. अप्पकवीयमु—1—15 और कुमारसम्भव 1—46
4. स्वारोचिष-मनुसंभवमु—1—14, 15

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

प्रशंसा की गयी हैं। परन्तु वहाँ पर यह निश्चितरूप से नहीं कह सकते कि सूफी कवियों के राजाश्रय के फलस्वरूप ही शाहेवक्त की प्रशंसा की गयी। फारसी के द्वारा परम्परागत रूप में हिन्दी कवियों को प्राप्त मसनवी शैली की वर्णन रूढ़ि के रूप में इसे समझा जा सकता है। फिर भी मूलभाषा फारसी में इस वर्णन रूढ़ि के उद्गम स्रोत के रूप में राजप्रशंसात्मक दृष्टिकोण सहज सम्भाव्य है। केशवदास जी ओरछा दरबार के आश्रित कवि थे। परन्तु उनकी 'रामचन्द्रिका' में आश्रयदाता की प्रशंसा दिखाई नहीं पड़ती। केशव की राजप्रशंसात्मक रचनाएँ और हैं, जैसे वीरसिंह देवचरित, रतनबावनी, और 'जहंगीरजस चन्द्रिका।' फिर भी 'रामचन्द्रिका' के स्वरूप निर्धारक प्रवृत्तियों में केशव की अलंकार प्रियता, श्रोताओं को मन्त्रमुग्ध करने वाला शब्द-चमत्कार तथा पाण्डित्य प्रदर्शन का कुतूहल प्रमुख हैं और इन प्रवृत्तियों के मूल में राजसी वातावरण एवं सभा-रंजन का दृष्टिकोण स्पष्ट है। राजाश्रम में ही पल्लवित हिन्दी के चारण काव्य तथा वीरकाव्य में नरेशों के गुणगान के अतिरिक्त ऐतिहासिक सामग्री भी उपलब्ध होती है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि मध्य देश और आन्ध्रप्रदेश के पालक विभिन्न राजवंशों ने हिन्दी और तेलुगु के साहित्य—सम्पन्न होने से पूर्व ही काव्य तथा अन्य कलाओं को संरक्षण प्रदान किया था और वही परम्परा आलोच्य भाषाओं में भी अनुस्यूत रही और इस राजाश्रय का प्रभाव तत्कालीन महा-काव्यों के आन्तरिक स्वर एवं बाहरी रूपविधान पर पड़ा। हिन्दी के चारण-काव्य एवं वीरकाव्य पर तथा तेलुगु के अधिकांश महाकाव्यों पर यह प्रभाव स्पष्टरूप से लक्षित होता है। यथेष्ठ कल्पना का आश्रय लेने पर भी ऐतिहासिक महाकाव्यों में तत्कालीन राजनैतिक परिस्थितियों की अभिव्यक्ति स्वाभाविक-रूप से हुई है। हिन्दू नरेशों के शासनकाल में उनके वीर कृत्यों का वर्णन वीरपूजा की सामाजिक भावना के फलस्वरूप तथा मुसलमानों के राजतत्वकाल में हिन्दू धर्म की क्षति के प्रतिक्रियास्वरूप लोकरक्षक क्षात्र धर्म एवं वीरचरित्रों की अवतारणा की गई है। कवियों के द्वारा आश्रयदाता नरेशों का वर्णन राजप्रशस्ति परक दृष्टिकोण के कारण ही नहीं प्रत्युत 'ना विष्णु: पृथिवी पति:' वाले भव्य आदर्श के पालन की मनोवृत्ति के कारण भी पूरी निष्ठा एवं मनोयोग के साथ किया गया है। एक तरफ राजाश्रय विमुख भक्त-कवियों का विशाल साहित्य दिखाई पड़ता है, जिसके मूल में प्राकृत-जन गुणगान को वाणी का दुरुपयोग मानने की भावना प्रधान है। यह भावना उस समय की राजनैतिक परिस्थितियों के प्रतिक्रिया-स्वरूप भी रही है। रामचन्द्र

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

जी के दरबार में विनयपत्रिका प्रस्तुत करने वाले गोस्वामी जी की दास्य भक्ति एवं उनके 'मानस' महाकाव्य के चरितनायक रामभूपाल की पात्र-कल्पना पर प्रभुभक्तिपरायणता के संस्कारों का प्रभाव स्पष्ट है। कविवर जायसी के काव्यरूप में स्वीकृत फारसी की मसनवी शैली में जो शाहेवक्त की प्रशंसा की गयी है चाहे वर्णन रूढ़ि के रूप में ही क्यों न हो तत्कालीन राजा शेरशाह की प्रशंसा उसमें द्रष्टव्य है।[1]

विदेशियों के आक्रमण एवं उसके फलस्वरूप धर्म, साहित्य, कला एवं शान्त जन-जीवन को क्षति पहले उत्तर भारत में पहुँची और उसके बहुत बाद में दिल्ली में विदेशियों की शासनसत्ता के सुस्थिर होने के उपरान्त ही विदेशियों का ध्यान दक्षिण की ओर गया। इसके अलावा भौगोलिक स्थिति की दृष्टि से विन्ध्य पर्वत और तीनों समुद्रों से परिवेष्टित होने के कारण भी विदेशी आक्रमणकारी सुगमतापूर्वक दक्षिण में प्रवेश नहीं कर सके। बाद में भी कुछ समयावधि के लिए ही दिल्ली के शासकों के प्रतिनिधि दक्षिण में जाकर वहाँ के राजाओं को अपने अधीनस्थ करते थे, परन्तु उन प्रतिनिधियों के लौट जाने के उपरान्त दक्षिण के राजाओं की स्वन्त्रता में कोई अन्तर नहीं पड़ता था। यही कारण है कि जब उत्तर भारत में जनता संत्रस्त थी, तब दाक्षिणात्यों को उसकी खबर तक नहीं थी और सम्राटों के सुस्थिर पालन में आन्ध्र प्रान्त के निवासी सुखमय जीवन बिता रहे थे; साहित्य, कला और विभिन्न विद्याओं के संवर्धन में लगे हुए थे। इसके अतिरिक्त मुसलमानों की भाषा, संगीत, साहित्य, शिल्प, धर्म आदि का समन्वय इस देश की अपनी भाषा, संगीत, साहित्य धर्म, शिल्प कला आदि से मध्यदेश में ही सम्पन्न हो सका। इस प्रकार का समन्वय, इस बड़े पैमाने पर दक्षिण में, विशेषकर आन्ध्र प्रान्त में दिखाई नहीं पड़ता। इसके लिए राजनैतिक परिस्थितियाँ ही उत्तरदायी रही हैं। अरबी, फारसी भाषाओं की शब्दावली एवं उन विदेशी साहित्यों की परम्पराओं को आत्मसात करते हुए कुरु जनपद की भाषिक संरचना का उपयोग करते हुए हिन्दी भाषा की एक नव्य शैली के रूप में जो उर्दू साहित्य मध्यदेश में प्रादुर्भुत हुआ, उसका श्रेय भारत में मुसलमानी राजसत्ता की सुस्थिरता को ही दिया जा सकता है। परन्तु तेलुगु साहित्य में फारसी, अरबी आदि की परम्पराएँ दिखाई नहीं पड़तीं। तेलुगु में सूफी सन्तों

---

1. सेर साहि दिल्ली सुलतानू।
   चारिउ तपइ जस भानू॥ पद्मावत, स्तुतिखण्ड 13-17

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

का विरचित कोई साहित्य नहीं मिलता। 'पद्मावत' की तरह का महाकाव्य, जिसमें सूफी दार्शनिक विचारधारा को कलात्मक अभिव्यक्ति मिली है, इस दार्शनिक पृष्ठभूमि के कारण जिसमें प्रतीकतत्व का समावेश हुआ है, जिसपर फारसी की मसनबियों का भी प्रभाव है, तेलुगु में रचा नहीं गया। तेलुगु भाषी प्रान्त में, हैदराबाद एवं उसके समीपवर्ती भूभाग पर बहमनी सुलतानों, कुतुबशाही नरेशों और निजाम नवाबों का आधिपत्य अवश्य रहा है और तत्कालीन राजकीय संरक्षण में साहित्य सर्जना भी हुई थी, विशेषकर तीन सौ वर्षों की अवधि में रचित दक्खिनी हिन्दी साहित्य। तेलुगु में उन परम्पराओं, सूफी अथवा इस्लाम दार्शनिक विचारों को पचाकर रचित कोई काव्य-ग्रन्थ अब तक देखने में नहीं आया है। कहने का यही तात्पर्य है कि मध्यदेश की भाषा में सूफी प्रेमाख्यानक काव्यों के सद्भाव एवं आन्ध्र-प्रान्त की भाषा में उस प्रकार के काव्यों के नितान्त अभाव के लिए इन भाषा-क्षेत्रों में विद्यमान भिन्न राजनैतिक परिस्थितियाँ ही उत्तरदायी हैं।

धार्मिक परिस्थितियाँ :

आदिकाल एवं मध्यकाल के भारतीय साहित्य के प्रेरणा-स्रोत के रूप में राजनीति की अपेक्षा धर्म का अत्यधिक महत्व रहा है। वास्तव में धर्म भारतीय जन-जीवन का प्राणतत्व एवं साहित्य का मेरुदण्ड रहा है।

हिन्दी एवं तेलुगु भाषा में काव्य-रचना करनेवाले कवियों के सामने इस देश में प्रचलित विभिन्न धार्मिक साधनाओं, साधना-मार्गों के आधारभूत सैद्धान्तिक ग्रन्थों एवं धार्मिक आचार्यों के विशिष्ट व्यक्तित्वों की लम्बी परम्पराएँ थीं। इन परम्परागत तत्वों के प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष प्रभाव से कवियों की चेतना असम्पृक्त नहीं हो सकती थी। इसके अलावा सामयिक आवश्यकता की पूर्ति के लिए, लोककल्याण के लिए, विभिन्न धर्मावलम्बियों के बीच के संघर्ष को दूर करके जनता की शक्ति को अपव्यय से बचाने के लिए कुछ प्रतिभाशालियों ने समन्वयात्मक दृष्टिकोण का प्रतिपादन अपने काव्य ग्रन्थों के माध्यम से किया था। ऐसी महान विभूतियों ने निश्चित रूप से जनता का उपकार, सभारंजक कवियों की अपेक्षा अधिक किया था। उन विभूतियों को केवल कवि नहीं मानकर लोकनायक भी मानना समीचीन है। जार्ज अब्राहम ग्रियर्सन के अनुसार बुद्ध भगवान के उपरान्त तुलसी ऐसे लोक-नायक हैं।[1] आचार्य लक्ष्मीकांतम जी के अनुसार तेलुगु प्रान्त के तिक्कना

1. हिन्दी साहित्य की भूमिका, पृष्ठ 103

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

ऐसे लोकनायक महाकवि रहे हैं।[1] तेरहवीं शताब्दी के तिक्कनामात्य ने अद्वैतमार्गी होने के कारण विभिन्न धार्मिक वाद-विवादों को समाप्त करने की दृष्टि से उपयुक्त महाभारत के इतिवृत्त को स्वीकार करके काव्य-रचना की थी। सोलहवीं शताब्दी के गोस्वामी तुलसीदास जी ने राम के अनन्य भक्त होने के कारण अपने विशिष्ट धार्मिक दृष्टिकोण के अनुरूप रामकथा का निर्वाह 'नानापुराण निगमागमों' का सारकथन एवं समन्वय के रूप में किया था।

भारत में धर्म का आदि ग्रन्थ वेद को माना जाता है और परम्परा के अनुसार वेदों को अपौरुषेय माना गया है। शंकर, रामानुज, मध्व, वल्लभ आदि आचार्यों ने वेद प्रतिपादित धर्म की ही व्याख्या भिन्न-भिन्न रूपों में की थी। वेदों की अपौरुषेयता में विश्वास नहीं करना नास्तिकता का ही पर्यायवाची माना जाता था। आधुनिककाल में यह मान्यता बदल गयी है। तुलसी के 'मानस' महाकाव्य में वेदों का उल्लेख बहुत अधिक स्थलों पर अपने कथन को पुष्ट करने के लिए कवि के द्वारा ही नहीं, अपितु काव्यगत पात्रों के द्वारा भी, इसी वेदविहित धर्म में विश्वास के कारण किया गया है। तेलुगु साहित्य में भी 'महाभारत', 'हरिवंश', 'भागवत' आदि काव्यों में इसी वेदविहित धर्म के प्रतिपादन का प्रयास कवियों ने किया है। श्रीकृष्ण देवराय के महाकाव्य में विष्णुचित्त नामक एक पात्र के द्वारा शास्त्रार्थ राजसभा में कराकर यह सिद्ध करवाया गया है कि वैष्णवधर्म ही वेदप्रतिपादित धर्म है।[2] इस प्रकार भारतीय साहित्य में वेदों की प्रामाणिकता एवं वेदविहित धर्म का प्रतिपादन अविकल रूप से पाया जाता है और इसी आधार पर वेदधर्म को प्राचीनता की दृष्टि से प्रथम माना जाता है।

बौद्धधर्म की कतिपय बातों को ग्रहण करके समन्वय एवं सम्मिश्रण की प्रक्रिया से पौराणिक वैदिक धर्म की प्रतिष्ठा हुई और इस पौराणिक धर्म में बुद्ध को भगवान विष्णु का ही एक अवतार माना गया। इस रूप में बुद्ध भगवान वैष्णव धर्मावलम्बियों के लिए भी पूज्य बन गये। सोलहवीं शताब्दी के श्रीकृष्ण देवराय, अल्लसानि पेद्दनार्य, तेनालि रामकृष्ण आदि तेलुगु कवियों के द्वारा अपने काव्यों में कथाप्रसंग के बीच में दशावतार वर्णन संयोजित है और इन दशावतारों में भगवान बुद्ध भी हैं।[3] तेलुगु एवं हिन्दी भाषाओं

---

1. गौतमव्यासमुलु, पृष्ठ 14, 15, 16
2. आमुक्तमाल्यदा, तृतीयाश्वास, पद्य 6
3. आमुक्तमाल्यदा 4-30

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

के साहित्य के उत्कर्षकाल के बहुत पहले ही हमारे देश में बौद्ध धर्म नष्टप्राय स्थिति में था। अतः साहित्य पर बौद्धधर्म का प्रत्यक्ष प्रभाव दिखाई नहीं पड़ता, फिर भी नाथपन्थी साहित्य और वैष्णव धर्मानुप्राणित साहित्य में बौद्ध धर्म एवं बौद्धों की तान्त्रिक साधना की परंपराओं को देखा जा सकता है। तेलुगु में नाथपन्थी साहित्य तो नहीं मिलता, परन्तु गोरखनाथ, मीननाथ आदि नवनाथों का जीवन-वृत्त 'नवनाथचरित्र' नामक काव्य में 'द्विपद' के देशी छन्द में गौरनामात्य नामक कवि से वर्णित है। गौरनामात्य का समय ईसा की 15 वीं शताब्दी माना जाता है। इतना ही नहीं, गौरनामात्य के काव्य में तथा परवर्ती शताब्दी के अल्लसानि पेद्दनार्य के महाकाव्य में योगियों की वेशभूषा का वर्णन प्राप्त होता है।[1] हिन्दी एवं अपभ्रंश के काव्यों में प्राप्त जोगियों के वर्णन से ये वर्णन मिलते-जुलते हैं। इस रूप में नाथपन्थ एवं सिद्धों के साधनामार्ग का प्रभाव तेलुगु साहित्य पर भी माना जा सकता है।

जैन धर्म का महत्त्व उसके द्वारा प्रभावित एवं संवर्धित प्राकृत, अपभ्रंश, हिन्दी एवं कन्नड भाषाओं के साहित्य की दृष्टि से है। आजकल भी हिन्दी की जो अलभ्य कृतियाँ हस्तलिखित ग्रन्थों के रूप में प्राप्त होती है, उनके सुरक्षित रहने का श्रेय जैनों की धार्मिक प्रवृत्ति को ही है। जैन ग्रन्थ भण्डारों से प्राप्त अमूल्य सामग्री हिन्दी शोधार्थियों के लिए नई दिशा प्रदान करके साहित्येतिहास की गुत्थियों को सुलझाने में सहायक हुई है। वास्तव में जैन धर्म का उद्‌भव पूर्वी प्रदेश में हुआ था, परन्तु उसका विस्तार गुजरात, राजस्थान, मालव प्रान्त, महाराष्ट्र, कर्नाटक एवं आन्ध्र प्रान्त तक है। जैनधर्म को राजकीय संरक्षण भी प्राप्त था। "मगध के शिशुनाग, नंद तथा अशोक के पूर्व मौर्यवंश के शासकों की आस्था जैन सिद्धान्तों पर विशेष थी।"[2] इतिहासकारों का कथन है कि मौर्यवंशीय सम्राटों के समय में तेलुगु प्रान्त में जैन धर्म का प्रचलन असंदिग्ध है।[3] राष्ट्रकूट वंशीय नरेशों एवं चालुक्य वंशीय राजाओं के शासनकाल में तेलुगु प्रान्त के वेंगी, वेमुलवाडा, विजयवाडा आदि स्थान जैन धर्म के प्रमुख केन्द्र रहे हैं। आन्ध्र पर जैन धर्म का प्रभाव आजकल तेलुगु प्रान्त में प्राप्त विभिन्न जैन प्रतिमाओं के आधार

1. स्वारोचिषमनुसंभवमु—1-59
2. डा. धीरेन्द्र वर्मा : मध्यदेश, पृष्ठ 74
3. तेलुगु विज्ञान सर्वस्वमु : तृतीय भाग, पृष्ठ 545

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

पर भी समझा जा सकता है। काकतीय वंश के राजाओं एवं विजय-नगर राज्य के पालकों के समय में भी आन्ध्रप्रान्त में जैन धर्म के प्रचलन के उल्लेख मिलते हैं।[1]

हिन्दी साहित्य पर जैन धर्म का प्रभाव 'उपदेश रसायन रास', 'भारतेश्वर बाहुबलि रास', 'जंबूस्वामीरासा', 'रेवंतगिरिरासु' आदि गीत-नृत्यपरक ग्रन्थों, 'मंजुरास', 'बुद्धिरासो' आदि छन्द वैविध्यपरक रासो ग्रन्थों एवं 'प्रद्युम्नचरित', 'पंचपाण्डवचरित' आदि चरितकाव्यों तथा प्रेमाख्यानों के रूप में स्पष्ट है। अपभ्रंश भाषा में प्रसिद्ध कवि स्वयंभू, पुष्पदन्त, पद्मकीर्ति, हरिषेण, धनपाल आदि जैन धर्मावलम्बी थे और उनके महाकाव्यों का महत्व धार्मिक एवं साहित्यिक दोनों दृष्टियों से है। वर्णन शैली, छन्द-विधान, वस्तुयोजना, काव्य-रूढ़ियों की योजना आदि की दृष्टि से इन जैन अपभ्रंश काव्यों की परम्पराएँ हिन्दी साहित्य में गृहीत हुईं। इस प्रकार जैन धर्म का प्रभाव अप्रत्यक्ष रूप में हिन्दी साहित्य पर माना जा सकता है। तेलुगु साहित्य पर जैन धर्म का प्रत्यक्ष प्रभाव नगण्य है। नन्नय भट्ट के युग के अधर्वणाचार्य के जैनधर्मावलम्बी होने का अनुमान किया जाता है और उस अधर्वण की प्रबन्धात्मक कृति महा-भारत अनुपलब्ध ही है, यद्यपि उस ग्रन्थ के बहुत कम छन्द लक्षण ग्रन्थों में उद्धृत हैं। तेलुगु के आदि कवि नन्नय से पूर्व के कन्नड भाषा के प्रसिद्ध कवि पंप, रन्न एवं पोन्न तीनों जैन ही थे। विद्वानों का कथन है कि तेलुगु के आदि कवि नन्नय ने छन्द-विधान, गद्य पद्य मिश्रित चंपू शैली का प्रयोग आदि कतिपय अंशों में पंप महाकवि का अनुसरण किया।[2] इसलिए यह कहना अनुचित नहीं होगा कि जैन धर्म ने तेलुगु साहित्य को अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित किया है। आदिकाल एवं मध्यकाल में विभिन्न धर्मावलम्बियों के बीच के संघर्ष के उल्लेख प्राप्त होते हैं। सम्भव है कि जैनों के द्वारा रचित तेलुगु साहित्य धार्मिक संघर्षों के कारण नष्ट हो गया हो।[3]

हिन्दी साहित्य के विकास-युग में शैव धर्म का प्रचार तथा प्रसार बहुत कम था। परन्तु हिन्दी साहित्य के समकालीन तेलुगु साहित्य के प्रमुख काव्य-ग्रन्थों पर शैवधर्म का प्रभाव लक्षित होता है।

ईसा की प्रथम शताब्दी से तेलुगु प्रान्त में शैवधर्म के प्रचलन के प्रमाण

1. आन्ध्र का सामाजिक इतिहास, पृष्ठ 216, 217
2. तेलुगु वाणी, पृष्ठ 123
3. तेलुगु विज्ञान सर्वस्व, तृतीय जिल्द, पृष्ठ 582

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

उस समय के उत्कीर्ण प्राकृत भाषा के शिलालेखों में प्राप्त शिवदास, शिवस्कन्ध, शिव श्री आदि नामों में उपलब्ध होते हैं। प्राकृत भाषा के प्रमुख महाकाव्य 'लीलावत्ती' में प्राप्त वर्णनों में गोदावरी प्रान्त में भीमेश्वर भगवान से सम्बद्ध शैवतीर्थ, सुवर्ण मन्दिर तथा पाशुपत् मठ के उल्लेख मिलते हैं। 'इस बात के प्रमाण भी मिलते हैं कि सातवाहनों के समय शिव तथा कृष्ण की पूजा का काफी प्रचार था।'[1] हाल शातवाहन की 'गाथा सप्तशती' में भी पशुपति एवं गौरी की स्तुतियाँ उपलब्ध हैं। तेलुगु भाषी प्रान्त पर शैवधर्म का अकाट्य प्रमाण 'त्रिलिंग' शब्द है और इसी 'त्रिलिंग' से तेलंग, तेलुगु' आदि की व्युत्पत्ति मानी जाती हैं। 'त्रिलिंग' का तात्पर्य दाक्षाराम, श्रीशैल तथा कालेश्वर नामक तीन प्राचीन शिव मन्दिरों से है। चौदहवीं शताब्दी के विद्यानाथ ने स्पष्ट लिखा है कि प्रतापरुद्र देव त्रिलिंग देश परमेश्वर हैं और इस देश में उक्त तीनों शैव क्षेत्रों की अवस्थिति है।[2]

चालुक्यवंशीय राजराजनरेन्द्र ने नन्नय भट्ट से की गयी अभ्यर्थना में अपने अभीष्ट विषयों में 'पार्वतीपति पदाब्जध्यान पूजामहोत्सव' को भी स्थान दिया है और ईश्वरागमों में अपने मन को सुस्थिर करने का उल्लेख भी किया है।[3] 'ईश्वरागम' से राजराज का अभिप्राय शैवागम यह स्पष्ट है। नवम शताब्दी के गुणग विजयादित्य के सेनानायक पंडरंग के द्वारा उत्कीर्ण शिलालेख में पण्डरंग के लिए 'परम माहेश्वर' विशेषण का प्रयोग किया गया है[4] और इसी प्रकार युद्धमल्ल के बेजवाड़ा शिलालेख से भी तत्कालीन शैवधर्म का प्रभाव स्पष्ट होता है।[5] कालक्रम की दृष्टि से ये दोनों शिलालेख नन्नय के महाभारत के समीपवर्ती हैं। शातवाहन नरेशों के बाद के इक्ष्वाकु, शालंकायन, विष्णुकुण्डिन, चालुक्य काकतीय और रेड्डि वंश के राजाओं के द्वारा आन्ध्र प्रान्त में शैवधर्म को संरक्षण प्राप्त था। प्रसिद्ध शैव क्षेत्र श्रीशैल के लिए सोपान-निर्माण रेड्डिवंशीय वेमय ने करवाया था, जिसका उल्लेख विभिन्न शिलालेखों एवं काव्यों में किया गया है।[6]

---

1. डा. धीरेन्द्र वर्मा : मध्यदेश, पृष्ठ 136
2. प्रतापरुद्रयशोभूषण, नायक प्रकरणम्, श्लोक 22, पृष्ठ 140
3. श्रीमदान्ध्रमहाभारतमु प्रथम आश्वास, पद्य 10, 12
4. पण्डरंग का शिलालेख, शासनपद्यमंजरी, पृष्ठ 1
5. युद्धमल्ल का बेजवाड़ा शिलालेख, शासनपद्यमंजरी, पृष्ठ 2, 3
6. हरिवंश की भूमिका, वेलूरिशिवरामशास्त्री, पृष्ठ 9

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

काकतीय वंश के गणपति देव, रुद्रदेव, प्रतापरुद्र, रुद्रमदेवी आदि नामों से ही उनकी शैवधर्मानुरक्ति स्पष्ट हैं। काकतीय नरेशों के समय में पाशुपत शैवधर्म को राजादर मिला था। सम्राट गणपति देव ने विश्वेश्वर शिवाचार्य से शैवधर्म की दीक्षा ग्रहण की थी। पाशुपत शैवमार्गी आचार्यों ने पुष्पगिरि, त्रिपुरांतकम् आदि स्थानों पर मठों की स्थापना की थी। एकशिलानगर (वरंगल) प्रान्त के विभिन्न मन्दिरों से तत्कालीन कलाओं पर शैव धर्म के प्रभाव का परिचय मिलता है। काकतीय नरेशों के प्रोत्साहन के अतिरिक्त कर्नाटक प्रान्त के बसवन्ना के द्वारा प्रवर्तित 'वीरशैव' नामक शैव धर्म का एक प्रभेद एक आन्दोलन के रूप में भक्ति तत्व का प्रचार एवं प्रसार करके आन्ध्र-प्रान्त में भी विशेष आदर प्राप्त करने लगा। इस धार्मिक आन्दोलन का प्रतिफलन तेलुगु के साहित्य में बारहवीं एवं तेरहवीं शताब्दी में रचित काव्यों के रूप में द्रष्टव्य है। तेलुगु के साहित्येतिहास में 'शिवकवियुग' नामक एक युग विद्वानों के द्वारा मान्य है। अन्य कवियों की अपेक्षा शिवकवियों ने काव्य-रचना में नवीन पद्धतियों का अवलम्बन लेने के ही कारण उस विशिष्टता के आधार पर पृथक् रूप से उस साहित्य का विवेचन विद्वानों ने किया है।

पाशुपत शैव के अलावा तेलुगु साहित्य पर कालामुखशैव शाखा का भी प्रभाव स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है। इस मत में वेदों की प्रामाणिकता शिरोधार्य है। इसलिए वीरशैव की भाँति ब्राह्मणों की निन्दा नहीं, बल्कि ब्राह्मण-प्रशंसा इसमें दिखाई पड़ती है। शिव एवं शक्ति का अविनाभाव सम्बन्ध इस मत में प्रतिपादित है। परन्तु वीरशैव में शक्ति आदि अन्य देवताओं की वन्दना निषिद्ध है। कालामुख मत के शिवाचार्य यावज्जीवन ब्रह्मचर्य दीक्षा का पालन करते हैं। इनको 'महाव्रत' के नाम से व्यवहृत किया जाता है, क्योंकि कालामुख का पर्यायवाची महाव्रत है।[1] इन आचार्यों के नामों के अन्त में मुनि, राशि एवं पण्डित शब्दों का प्रयोग किया जाता है। तेलुगु साहित्य में 'कुमारसम्भव' महाकाव्य के प्रणेता नन्नेचोड ने अपने गुरु मल्लिकार्जुन योगी के प्रति अतीव श्रद्धा एवं भक्ति का परिचय अपने काव्य के अन्तर्गत दिया है। उसके अनुसार मल्लिकार्जुन शिवयोगी भूसुर, प्राणायामादि षडंगोपांग सकल योगि जनाराधित, न्यायवैशेषिकादि षट् तर्ककर्कश एवं वेदषडंगशास्त्रपुराणेतिहासागमादिसकलास्वरूपापारवाणीधर था।[2] इन विशेषणों से भी प्रकट होता है कि नन्नेचोड कवि उस शैवशाखा का अनुयायी

1. नन्नेचोडुनि वस्तुकविता, पृष्ठ 17 2. कुमारसम्भव 1-57

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

था, जिसमें वेदों एवं ब्राह्मणों के महत्व को अंगीकार किया गया। इसके अतिरिक्त शिव एवं शक्ति के अविनाभाव सम्बन्ध के लिए ज्ञान-ज्ञेय एवं शब्द अर्थ के उपमानों का प्रयोग इस 'कुमारसम्भव' महाकाव्य में किया गया है।[1] शिव के दक्षिण भाग से ब्रह्म एवं विष्णु की उत्पत्ति का वर्णन शिव की सर्वोत्कृष्टता के प्रतिपादन के रूप में ग्रहणीय है।[2] आलोचकों का मत है कि कालामुख शैव के दार्शनिक पक्ष को कलात्मक अभिव्यक्ति देने के लक्ष्य से ही तेलुगु 'कुमारसम्भव' महाकाव्य की रचना हुई थी।

हिन्दी साहित्य के विकास-काल में शैवधर्म का प्रचार एवं प्रसार बहुत कम था। फिर भी परम्परागत तत्व के रूप में रामचरितमानस में शिव-पार्वती विवाह का वर्णन दिखाई देता है।[3] इस पर अध्यात्मरामायण की कथा-योजना के अतिरिक्त कदाचित् शिव-पुराण का भी प्रभाव है। गोस्वामी जी नाना पुराणों के ज्ञाता थे और अपने समन्वयात्मक दृष्टिकोण के कारण ही शिव सम्बन्धी इतिवृत्त का भी संयोजन अपने महाकाव्य में किया है। शैवधर्म की अवान्तर शाखाओं में श्रुति-प्रामाण्य को नहीं माननेवाले कापालिक, अघोरि, रसेश्वर एवं नाथसम्प्रदाय भी हैं।[4] इन सम्प्रदायों का समाहार गोस्वामी जी की समन्वयात्मक दृष्टि में नहीं हो सकता था, क्योंकि तुलसी वेदमत के प्रतिपादक हैं।

तेलुगु साहित्य पर रामानुज प्रवर्तित वैष्णव धर्म का प्रभाव विशेष रूप से विजयनगर साम्राज्य के काल में दिखाई पड़ता है। उस काल के सालुव नरसिंह राय, श्रीकृष्ण देवराय अलिय रामराय आदि नरेशों ने वैष्णव-दीक्षा स्वीकार की थी और उनके संरक्षण में पल्लवित संगीत, साहित्य, शिल्प, वास्तु आदि कलाओं पर इस धर्म का महान प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था। राजा श्रीकृष्ण देवराय के महाकाव्य 'आमुक्त माल्यदा' का कथानक भक्तिन गोदादेवी एवम् उनके पिता विष्णुचित्त नामक आलवार से सम्बन्धित है। श्रीकृष्ण देवराय ने तिरुपति के वेंकटेश भगवान के परम भक्त होने के कारण अपने इष्टदेव को ही काव्य समर्पित किया। अल्लसानि पेद्दनार्य नामक कवि ने अपने को शठकोपयति नामक वैष्णव स्वामी का शिष्य कहा है।[5] तिरुपति में बाला जी के मन्दिर के परिसर में भगवान के सामने मुकुलित करकमल की मुद्रा में

1. कुमारसम्भव 7-53
2. वही—1-4, 5
3. रामचरितमानस, बालकाण्ड
4. नन्निचोडुनि वस्तुकविता, पृष्ठ 15
5. स्वारोचिष मनुसंभवमु, 1-6

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

श्रीकृष्ण देवराय एवम् उनकी तिरुमल देवी, चिन्ना देवी नामक रानियों की प्रतिमाएँ आज भी दर्शनीय हैं। तिरुपति के उसी विष्णु मन्दिर में ताम्रपत्रों पर उत्कीर्ण, विभिन्न राग-रागिनियों में बद्ध, संगीत की अमूल्य निधि के रूप में महत्त्वपूर्ण हजारों भक्तिपद प्राप्त हैं, जो ताल्लपाक अन्नमाचार्य एवम् उनके पुत्र पेदतिरुमलाचार्य के द्वारा रचित हैं। इन पदों के अवलोकन से स्पष्ट हो जाता है कि तेलुगु प्रान्त की संगीतकला पर वैष्णव धर्म का कैसा प्रभाव रहा रहा था। श्रीकृष्ण देवराय के महाकाव्य में प्रत्येक आश्वास के आदि में एवम् अन्त में वेंकटेश भगवान को सम्बोधित करनेवाले पद्य हैं। इसी काव्य में विष्णु-चित्त एवम् यामुनाचार्य नामक विष्णु भक्तों के द्वारा राजसभा में शास्त्रार्थ करवाकर शैव धर्म पर वैष्णव धर्म की विजय दिखायी गयी है।[1] 'पांडुरंग माहात्म्य' के कवि तेनालि रामकृष्ण पर वैष्णव प्रभाव असंदिग्ध है।

हिन्दी के भक्तिकाव्य को प्रभावित करनेवाले विभिन्न वैष्णव सम्प्रदायों में रामानन्दी सम्प्रदाय, पुष्टि सम्प्रदाय, रसिक सम्प्रदाय, निम्बार्क सम्प्रदाय, चैतन्य सम्प्रदाय प्रमुख हैं। अन्य सम्प्रदायों की अपेक्षा महाकाव्य विधा को रामानन्दी सम्प्रदाय एवम् रामानुज के विशिष्टाद्वैत दर्शन ने विशेष प्रभावित किया है। साथ ही यह मानना उचित है कि श्रेष्ठ प्रतिभा के कलाकार एवम् प्रकाण्ड पण्डित होने के कारण अपने विशिष्ट व्यक्तित्व के अनुसार ही तुलसी ने अपने पूर्ववर्ती आध्यात्मिक सिद्धान्तों को नवीन रूप प्रदान किया और इस तरह का उनका योगदान अप्रतिम है। तुलसी के सामने एक समग्र सांस्कृतिक दृष्टिकोण उपस्थित था, जिसकी काव्यात्मक अभिव्यक्ति 'मानस' के रूप में हुई है। डॉ. माताप्रसाद गुप्त के अनुसार तुलसीदास न निरे अद्वैतवादी थे और न निरे विशिष्टाद्वैतवादी, और न उन्होंने उपयुक्त विषय के संग्रह और अनुपयुक्त विषय के त्याग का कोई असामान्य प्रयास ही अपनी आध्यात्मक मान्यताओं के विषय में किया है।[2]"

शैव धर्म एवम् वैष्णवधर्म के पारस्परिक संघर्ष को दूर करने के लिए तेलुगु साहित्य के तिक्कनामात्य ने अद्वैत दर्शन के आधार पर ही एक समन्वयात्मक आराधनापद्धति अथवा उपासना-विधि को प्रवर्तित किया, जिसे हरिहर समन्वय कहा जा सकता है। यह हरिहर समन्वय सैद्धान्तिक रूप से तिक्कन के पूर्व ही अद्वैतवाद में निहित है। परन्तु व्यावहारिक साधनापरक धरातल पर हरिहरनाथ नामक एक सगुण भगवान की कल्पना एवम् काव्य

---

1. आमुक्तमाल्यदा 4-39 से 75 तक 2. तुलसीदास, पृष्ठ 386

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

में उस मूर्ति के वर्णन का श्रेय तिक्कनामात्य को ही है। स्वरचित महाभारत के भूमिका भाग में मंगलाचरण के रूप में उसी हरिहरनाथ भगवान की वन्दना की है।[1] उसी अवतारिका भाग में निक्षिप्त एक श्लोक है, जिसमें कवि भगवान से प्रार्थना करता है कि भगवान को अस्थिमाला, कौस्तुभ दोनों में से कौन-सा इष्ट है, कालकूट विष अथवा यशोदा का दूध इनमें कौन स्वादिष्ट है, क्योंकि कवि के भगवान हड्डियों की माला के साथ, कौस्तुभ भी धारण किए हैं और विषपान के अलावा यशोदा माता का दुग्धपान भी किया।[2]

हरिहरनाथ भगवान के रूपवर्णन में यह दिखाया गया है कि भगवान शिर पर शशिरेखा (खण्ड चन्द्रमा) नाभि में धवल पंकज, उर पर कौस्तुभ रत्न एवम् गंगा यमुना के संगम के सदृश गौर वर्ण एवं श्याम वर्ण के सम्मिलन की शरीर-छवि से युक्त है।[3] महाकवि, महामंत्री एवं आध्यात्मिक साधक की त्रिवेणी तिक्कन के व्यक्तित्व में है। अतः उस समय के उनके अनुयायी कवियों एवं उनके पश्चात् के कतिपय कवियों द्वारा उनकी परम्परा स्वीकृत रही। नाचन सोमनाथ नामक कवि ने अपने 'उत्तर-हरिवंश' काव्य का समर्पण हरिहरनाथ भगवान् को ही किया।

'उत्तरहरिवंश' काव्य के कथानक के बीच में एक ऐसे प्रसंग का विधान है जिसमें भगवान कृष्ण शिव को लक्षित करके तपस्या करते हैं और शिव उनके सामने प्रत्यक्ष हो जाते हैं। उस स्थान पर रहनेवाले महर्षियों को रजतगिरि पर दोनों भगवानों का दर्शन लाभ एवं 'हरिहराराधन' का सुअवसर प्राप्त हो जाते हैं। देवता लोग यह कहते हैं कि सबके लिए भगवान एक हैं और वह हरिहरात्मक है।[4] तेलुगु महाकाव्य के विकास में तिक्कनामात्य एवं नाचन सोमनाथ के योगदान का समर्थन आचार्य लक्ष्मी-कान्तम् प्रभृति विद्वानों ने भी किया है। इस दृष्टि से तिक्कन के 'हरिहराद्वैतवाद' का महत्त्व है।

'रामचरितमानस' में भी शिव एवं केशव का समन्वय काव्यात्मक ढंग से कवि की प्रत्यक्ष उक्तियों एवं काव्यगत पात्रों के द्वारा स्पष्ट शब्दों में किया गया है। तुलसी श्रीरामचन्द्र के अनन्य भक्त होते हुए भी और देवी देवताओं

---

1. श्रीमदान्ध्रमहाभारतमु—विराटपर्व, प्रथम आश्वास, पद्य 1
2. श्रीमदान्ध्र महाभारतमु, विराट पर्व, प्रथम आश्वास, पद्य 11
3. वही, पद्य 12
4. उत्तरहरिवंशमु, द्वितीय आश्वास, पद्य 181

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

की वन्दना भी करते हैं। इसका मुख्य कारण यही है कि तुलसी ने जड़चेतन सबको राममय माना है और 'सर्वदेव नमस्कार: केशवं प्रतिगच्छति' उनकी समन्वय दृष्टि का मूलाधार है।

जड़ चेतन जग जीव जत सकल राममय जानि।
बंदउ सब के पद कमल सदा जोरि जुग पानि ॥[1]

रामचरित मानस की वक्ता-श्रोता योजना में शिव-पार्वती का प्रमुख स्थान है। रामतत्व को भली-भाँति समझनेवाले एवं सर्वदा रामनाम का जप करनेवाले के रूप में गोस्वामी जी ने शंकर भगवान का चित्रण किया है। प्रायः प्रत्येक सोपान के आदि में मंगलाचरण के रूप में निबद्ध संस्कृत श्लोकों में एवं हिन्दी के छन्दों में तुलसी ने शंकर भगवान की वन्दना की है।[2] शंकर के लिए अन्य विशेषणों के प्रयोग के साथ 'श्रीराम-भूपप्रियम' का प्रयोग इस संदर्भ में ध्यान देने योग्य है। समुद्र पर सेतु निर्माण के अवसर पर श्रीरामचन्द्र ने शिवलिंग की प्रतिष्ठा विधिवत् करके यह घोषित किया कि शिवजी के समान उनको दूसरा कोई प्रिय नहीं है और जो शिव से द्रोह रखता है और राम का भक्त कहलाता है, वह मनुष्य स्वप्न में भी राम को नहीं पा सकता।

पौराणिक परम्परा में लगभग प्रत्येक देवता के साथ एक शक्ति की कल्पना की गई। कालान्तर में तन्त्र एवं शैव धर्म के सम्मिश्रण से शाक्तमत का प्रादुर्भाव हुआ। शाक्तमत के प्रमुख केन्द्र बंगाल, आसाम आदि पूर्वी प्रदेश रहे हैं। मध्यप्रदेश पर वैष्णवमत का ही प्रभाव अधिक है। उधर दक्षिण में शाक्तमत का साधनापरक रूप जो शंकर आदि आचार्यों द्वारा दक्षिणाचार के रूप में मान्य है, वह श्रुत्यनुमोदित होने के कारण है। शंकराचार्य की 'सौन्दर्यलहरी' में भगवती त्रिपुर-सुन्दरी की छटा विशदता से प्रस्फुटित हुई है और इस स्तोत्र में शाक्त तन्त्र के अनेक रहस्यों का संयोजन अभिज्ञ लोग मानते हैं। तेलुगु काव्यों में 'श्रीकालहस्ति माहात्म्य में मंगलाचरण के प्रथम छन्द में शंकर की वन्दना करते हुए कविवर धूर्जटी ने 'श्रीविद्यानिधि' शब्द का प्रयोग शंकर के लिए किया है।[3] 'श्रीविद्या' शब्द पारिभाषिक है। श्रीचक्र की अर्चना एवं तत्सम्बन्धी तंत्र मंत्र युक्त साधना ही 'श्रीविद्या' के

---

1. मानस-बालकाण्ड—7 (ग)
2. मानस बालकाण्ड 2, 3, अयोध्याकाण्ड 1, अरण्यकाण्ड 1, किष्किन्धाकांड 3, लंकाकाण्ड 2-3, 4, 5
3. श्रीकालहस्तिमाहात्म्यमु 1—1।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

नाम से अभिहित है। हिन्दी के 'पृथ्वीराजरासो' में कवि चन्द के द्वारा देवीपूजन एवं वाणी, गौरी तथा लक्ष्मी के रूप में भवानी की स्तुति प्राप्त है।[1] शाक्तमत का प्रभाव राजपूतों की वीर भावना, हिंसात्मक प्रवृत्ति तथा रक्तपात एवं भोग की विलासमयी प्रवृत्तियों में देखा जा सकता है। शिवाजी के 'भवानी' के भक्त होने के उल्लेख मिलते हैं। फिर भी हिन्दी साहित्य पर शाक्तमत का प्रभाव अन्य मतों की तुलना में अति स्वल्प है।

इन धार्मिक सम्प्रदायों के अतिरिक्त विदेशी मुसलमान राजसत्ता के सुस्थिर होने के कारण इस्लाम एवं उसपर आधारित सूफी दार्शनिक मान्यताओं एवं साधना मार्ग का सम्पर्क हिन्दी क्षेत्र से सम्पन्न हुआ। लोककथात्मक स्रोतों से जनप्रिय इतिवृत्त को ग्रहण करके सूफी सन्तों ने अवधी भाषा में अपनी साधना-पद्धति को काव्यात्मक अभिव्यक्ति प्रदान की थी। यह अभिव्यक्ति प्रेमाख्यानक काव्यों के रूप में द्रष्टव्य है। जायसी का पद्मावत' कथोपयुक्त सांगोपांग वर्णन, गम्भीर भावों की सुन्दर अभिव्यक्ति, उदात्त चरित्रों का विशद चित्रण तथा एक आदर्श रचना की सोद्देश्यता के कारण एक उत्कृष्ट महाकाव्य माना जाता है। पद्मावत के कथाशरीर में रूपक तत्व का समावेश सूफी दार्शनिक मान्यताओं के परिणामस्वरूप ही हुआ है, यद्यपि इसका निर्वाह पूरे इतिवृत्त में नहीं हो पाया है। जायसी ने काव्य के अन्त में अपने द्वारा उद्दिष्ट रूपक तत्व को स्पष्ट भी किया है। सूफी साधना में ईश्वर की भावना प्रियतम के रूप में की जाने के कारण 'पद्मावत' नायिका प्रधान बन गया है और कवि ने विभिन्न स्थानों पर पद्मावती के रूप-वर्णन के सन्दर्भ में अलौकिक ईश्वर की भी व्यंजना की है। तेलुगु साहित्य पर सूफी दार्शनिक विचारों के प्रभाव के अभाव के कारण 'पद्मावत' जैसा महाकाव्य उपलब्ध नहीं होता।

साहित्यिक परिस्थितियाँ :

संस्कृत में आदिकवि की रामायण, कालिदास, भारवि, माघ एवं श्रीहर्ष आदि के महाकाव्य लब्धप्रतिष्ठ हो चुके थे। विद्वज्जनों एवं काव्य-रसिकों की मण्डलियों में उन काव्यों का अनुशीलन-परिशीलन होता था। भाषा काव्यों में चन्दवरदाई, तुलसी, केशव, गोरेलाल, नन्नय, तिक्कना, नन्निचोड, श्रीनाथ, श्रीकृष्ण देवराय, पेद्दनार्य, रामराज भूषण आदि से पूर्वकविस्तुति के प्रसंग में वाल्मीकि, वेदव्यास, मुरारि, बाणभट्ट, उद्भट, कालिदास, भट्ट हर्ष आदि की

---

1. पृथ्वीराजरासो—आदिपर्व (उदयपुर संस्करण)

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

वन्दना की गयी है । केशव के सम्बन्ध में लाला भगवानदीन की यह उक्ति है कि 'बाण, माघ, भवभूति, कालिदास तथा भास तक के सुन्दर प्रयोग अद्‌भुत विचार, गम्भीर और विशिष्ट अलंकार ज्यों-के-त्यों अनुवाद किए हुए इस ग्रन्थ में रक्खें हैं ।[1] अपनी वंश परम्परा में समादृत एवं प्रतिष्ठित संस्कृत विद्या का अतिशयोक्तिपूर्ण चमत्कारिक वर्णन केशव की ही शब्दावली में इस प्रकार द्रष्टव्य है ।

भाषा बोलि न जानहीं, जिनके कुल के दास ।
भाषा कवि भो मंदमति, तेहि कुल केशवदास ॥

केशव की कवित्व शक्ति एवं सहृदयता के कटु आलोचकों ने भी उनके संस्कृत पाण्डित्य को स्वीकार किया है, यथा अपनी रचनाओं में उन्होंने अनेक संस्कृत काव्यों की उक्तियाँ लेकर भरी हैं ।[2] कवि के अतिरिक्त काव्याचार्य भी होने के कारण केशव ने लक्षण ग्रन्थों का निर्माण किया साहित्यदर्पणकार आदि के द्वारा प्रतिपादित महाकाव्य के स्वरूप के निकट तुलसी एवं जायसी की अपेक्षा केशव अधिक हैं ।

गोस्वामी तुलसीदास जी की कवित्व-शक्ति का परिचय मानस में मंगलाचरण के रूप में संयोजित संस्कृत श्लोकों से भी मिलता है । संस्कृत साहित्य में अपने समय तक सुलभ निगम, आगम, पुराण आदि रामकथा के विभिन्न सूत्रों का समाहार गोस्वामी जी के महाकाव्य में उनकी समन्वयात्मक दृष्टि के कारण हो सका है । तुलसी के प्रगाढ़ संस्कृत पाण्डित्य का अनुमोदन हिन्दी के प्रमुख विद्वानों ने किया है । उदाहरण के तौर पर पं. रामनरेश त्रिपाठी के विचार द्रष्टव्य हैं ।

'खोजने से संस्कृत ग्रन्थों में रामचरितमानस के बहुत से दोहों, सोरठों, छन्दों और चौपाइयों के मूल मिल जायेंगें । यह देखकर महान आश्चर्य होता है कि तुलसीदास ने संस्कृत ग्रन्थों का कैसा सूक्ष्म अध्ययन किया था.........
कहीं एक चौपाई के भाव किसी दूसरे पुराण के हैं । उससे भी आगे की चौपाई में किसी नाटक या नीति ग्रन्थ के भाव हैं । ऐसे स्थानों पर तुलसी के मस्तिष्क की महिमा देखते बनती है । मानो संस्कृत के दो ढाई सौ ग्रन्थों के लाखों श्लोकों पर उनका एक सम्राट की तरह अधिकार था और वे जिसे जहाँ चाहते थे, उसे वहीं बुला लेते थे ।[3]

---

1. केशव कौमुदी (दूसरा भाग) वक्तय, पृ. 2
2. हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ. 193 3. तुलसी और उनका काव्य, पृ. 142

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

तेलुगु क्षेत्र पर संस्कृत साहित्य का प्रभाव कम नहीं है। नन्नय, तिक्कना, पोतना, श्रीनाथ आदि कवि संस्कृत साहित्य के प्रकाण्ड पण्डित भी थे। उनका संस्कृत पाण्डित्य उनके काव्यों में प्रयुक्त समासबहुला तत्सम शब्द प्रधान भाषा शैली, संस्कृत के वर्णवृत्तों का संयोजन, काव्यादि में निबद्ध संस्कृत श्लोक, अवतारिका भाग में आश्रयदाता नरेशों के द्वारा कवियों की प्रतिभा एवं वैदुष्य की प्रशंसा आदि से प्रमाणित है। कुछ कवियों के द्वारा संस्कृत काव्य-रचना के उल्लेख एवं कुछ के संस्कृत काव्य भी उपलब्ध होते हैं। इसके अतिरिक्त तत्कालीन वातावरण में संस्कृत के काव्यशास्त्रीय ग्रन्थों एवं संस्कृत के काव्यों का प्रणयन भी होता था। तेलुगु प्रान्त की विभूतियों में रसगंगाधरकार पण्डितराज जगन्नाथ, घण्टापथ व्याख्याकार मल्लिनाथ सूरि एवं उसके पुत्र तथा प्रतापरुद्रयशोभूषण के रत्नापण व्याख्याकार कुमारस्वामी, प्रतापरुद्रीय के प्रणेता विद्यानाथ, नृत्तरत्नावलीकार जायप सेनानी और रसार्णव सुधाकर' के प्रणेता सर्वज्ञ सिंगभूपाल प्रमुख हैं। काव्यों में श्रीकृष्णदेवराय विरचित 'जांबवती परिणय', रामभद्रांबाकृत 'रघुनाथाभ्युदय' गंगादेवीकृत 'मधुराविजय', मधुरवाणी प्रणीत 'रामायणसार काव्य' मुख्य हैं। काव्यग्रन्थों के अतिरिक्त न्याय, व्याकरण, वेदान्त आदि शास्त्र ग्रन्थ भी तेलुगु प्रान्त में रचे गये थे। तेलुगु साहित्य के संरक्षक नरेशों में श्रीकृष्णदेवराय, रघुनाथ भूपाल, सर्वज्ञ सिंगभूपाल, विजय-राघव नायक आदि काव्य-रसिक होने के साथ कवि भी थे और आन्ध्र-कवियों के साथ संस्कृत कवियों को भी प्रश्रय दिया था और संस्कृत के श्रीकृष्णदेवराय एवं सिंगभूपाल का कृतित्व उनके ग्रन्थों से प्रमाणित है। नन्नय भट्ट ने राजराज-नरेन्द्र को परिवेष्टित करनेवाले विद्वज्जनों में पौराणिक, तार्किक, वैयाकरण, अध्यात्मविद सबका उल्लेख किया है और राजराज के लिए 'राजमहेन्द्र-कवीन्द्रसुरक्ष्माज' शब्द का प्रयोग भी किया है।[1] इस प्रकार संस्कृत विद्या के विपुल प्रचार-प्रसार के अलावा गीर्वाण गिरा में साहित्य-सृजन के भी उस भव्य वातावरण में तेलुगु महाकाव्य का उद्भव, विकास एवं उत्कर्ष सम्पन्न हुआ। अतः तेलुगु महाकाव्य विधा पर संस्कृत का अत्यधिक प्रभाव है।

संस्कृत साहित्य की ही भाँति प्राकृत साहित्य का भी प्रचलन पूरे भारत-वर्ष में रहा है। प्राकृत की विभिन्न शाखाओं में शुद्ध साहित्य की समृद्धि की दृष्टि से महाराष्ट्री प्राकृत मुख्य है। साहित्य के सन्दर्भ में प्राकृत कहने से साधारणतया महाराष्ट्री प्राकृत का ही बोध होताहै। इसमें शालिवाहन की

---

1. श्रीमदान्ध्रमहाभारतमु, आदिपर्व, द्वितीय आश्वास, पृ. 239।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

'गाथासप्तशती', वाक्पतिराज का 'गउडवहो', प्रवरसेन का 'सेतुबन्ध', हेमचन्द्र का 'कुमारपालचरित', कौतूहल की 'लीलावती' अत्यन्त मुख्य काव्य-ग्रन्थ हैं, जिनका प्रचार एवं प्रसार भारत के विभिन्न भूमिभागों में, विशेषकर तेलुगु एवं हिन्दी प्रान्तों में भी रहा है। वास्तव में भारतीय आर्य भाषा के पूर्ववर्ती रूप संस्कृत, प्राकृत एवं अपभ्रंश हैं और आधुनिक रूप हिन्दी है। अपभ्रंश प्राकृत की अन्तिम दशा का नाम है। प्रारम्भिक काल की हिन्दी भाषा और साहित्य पर प्राकृत का गहरा प्रभाव माना जाता है।

तेलुगु के प्राचीनकालीन कवियों के प्राकृत भाषा पांडित्य एवं सृजनात्मक प्रतिभा के प्रमाण उपलब्ध होते हैं। ग्यारहवीं शताब्दी के आन्ध्रमहाभारतकार नन्नय भट्ट के सहाध्यायी नारायण भट्ट के संबंध में नंदमपूडि शिलालेख कहता है कि नारायण भट्ट 'संस्कृतप्राकृतकर्णाटपैशाचिकान्ध्र भाषा-कविराजशेखर था।[1] 'पन्द्रहवीं शताब्दी के श्रीनाथ कवि के पाण्डित्य के सम्बन्ध में दुग्गन नामक कवि ने यह कहा है कि श्रीनाथ 'संस्कृत, प्राकृत, शौरसेनी भाषा-परिज्ञान पटु थे।[2] स्वयं श्रीनाथ ने तेलुगु में 'शालिवाहनगाथासप्तशती' को अपने द्वारा अनूदित करने का उल्लेख किया है, यद्यपि वह ग्रन्थ आज अनुपलब्ध है।[3] माघ, भारवि, बिल्हण, मल्हण, भट्टि, दण्डी के साथ प्राकृत के 'सेतुबन्ध' महाकाव्य कार प्रवरसेन की भी वन्दना की है और प्रवरसेन के लिए 'साहित्यपदवी महाराज्य भद्रासनासीन' विशेषण का प्रयोग किया है।[4] इतना ही नहीं, तेलुगु भाषा के साहित्यारूढ़ होने से पूर्व ही तेलुगु प्रान्त में प्राकृत भाषा का व्यवहार था जो तत्कालीन शिलालेखों से प्रमाणित होता है। ये शिलालेख संस्कृत के अतिरिक्त प्राकृत भाषा में भी उत्कीर्ण थे। अभिज्ञों का कथन है कि गाथासप्तशती में तेलुगु भाषा के शब्द प्राप्त होते हैं।[5] गाथा छन्द प्राकृत का प्रमुख छन्द है और कतिपय प्राकृत काव्य 'गाथा' छन्द में रचित हैं। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के अनुसार गाथाबन्ध से प्राकृत काव्य का बोध होता है।[6] चौदहवीं शताब्दी के एर्राप्रगड नामक कवि ने अपने पूर्ववर्ती नन्नयभट्ट एवं तिक्कना की वन्दना करते हुए यह कहा था—"महाभारत के उज्जवल प्रतिपाद्य विषय के रहस्य को नहीं समझ सकने के कारण गाथाओं का ही

---

1. तेलुगु विज्ञान सर्वस्वमु, तृतीय भाग, पृष्ठ 582
2. काशीखण्डमु, भूमिका, पृष्ठ 17
3. वही, 1-7
4. भीमेश्वरपुराणमु, 1-7
5. तेलुगुवाणी, पृष्ठ 125
6. हिन्दी साहित्य का आदिकाल- पृष्ठ 98

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

पुनराख्यान करनेवाले तेलुगु भाषियों के लिए व्यासमुनि प्रणीत परम विषय को सुस्पष्ट बनानेवाले अब्जासन सदृश आद्यकवि नन्नय एवं तिक्कन का मैं स्मरण करता हूँ।[1] इस कथन में 'गाथा' शब्द के प्रयोग से एर्राप्रेगड का अभिप्राय कदाचित् गाथाबन्ध अर्थात् प्राकृत काव्य से है। इस प्रकार स्पष्ट है कि तेलुगु साहित्य पर प्राकृत का प्रभाव है।

संस्कृत के महाकाव्यों में सर्गविभाजन है और इसलिए सर्गबन्ध को महाकाव्य का पर्यायवाची माना जाता है। इसके विपरीत प्राकृत के महाकाव्य आश्वासों में विभाजित होते हैं। साहित्यदर्पणकार विश्वनाथ कविराज के अनुसार महाकाव्य संस्कृत में सर्गबद्ध, प्राकृत में आश्वासबद्ध एवं अपभ्रंश में कुडवकबद्ध होता है। तेलुगु के प्रायः सभी महाकाव्य अश्वासबद्ध हैं। इसलिए कह सकते हैं कि आश्वास विभाजन तेलुगु एवं कन्नड पर प्राकृत प्रभाव के कारण आया हुआ है। संस्कृत भाषा में मात्रिक छन्दों की अपेक्षा वर्णिक छन्दों का अधिक महत्त्व है। किन्तु प्राकृत में गाने के लिए उपयुक्त मात्रिक छन्दों की प्रधानता है और अपभ्रंश काल तक आते-आते मात्रिक छन्दों की पर्याप्त संख्या हो गयी और इसीलिए अपभ्रंश को छन्दों की दृष्टि से एक समृद्ध भाषा माना गया है। तेलुगु साहित्य में सस्कृत के वर्णवृत्तों की परम्परा एवं प्राकृत के मात्रिक छन्दों की परम्परा दोनों समादृत हैं। तेलुगु साहित्य के कंदमु, सीसमु आटवेलदि, तेटगीति, द्विपद आदि जो वर्णवृत्तों से भिन्न देशी छन्द हैं, उनपर प्राकृत का प्रभाव माना जाता है।

विद्वानों का कथन है कि प्राचीन संस्कृत काव्यों में कुकवि-निन्दा नहीं है। पुराने कवियों के स्मरण के सिवा कुकवियों की निन्दा वैरी, विरोधी, कविताचोर आदि के रूप में ईसा की पाँचवी शताब्दी तक के संस्कृत काव्यों में नहीं है। इसको प्राकृत साहित्य की विशेषता एवं प्राकृत प्रभाव से अन्य भाषाओं के साहित्य में आगत तत्व माना जाता है। पाँचवीं शताब्दी के बाद में रचित प्राकृत के काव्य-ग्रन्थों में यह परम्परा दृष्टिगत होती है। सातवीं शताब्दी के 'गौडवहो' में कवि ने दुर्जनों की निन्दा की थी। आठवीं शताब्दी के 'वज्जालग्ग' में भी यह परम्परा दिखायी पड़ती है। तेलुगु के महाकाव्यों में अल्लसानि पेद्दनार्य विरचित 'स्वारोचिषमनुसंभव' में कुकवि पर चोर के लक्षणों का आरोप करके उसका निन्दात्मक वर्णन किया गया है।[2] नन्निचोड कवि के 'कुमारसम्भव' में सत्काव्य की तुलना मदगज से करके उस

---

1. नृसिंहपुराणमु 1-9 2. मनुचरित्र 1-9

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

मदमस्त हाथी के कार्यों में दुष्कवियों के हृदयरूपी कमलवनों का भंजन भी एक बताया गया है।[1] इसके अतिरिक्त नन्निचोड ने कुकवियों की निन्दा भी स्वतन्त्र रूप से की है।[2]। तेनालि रामकृष्ण कवि के 'पाडुरंगमाहात्म्य' काव्य में कहा गया है कि दोषात्मा दुष्कवियों के कारण ही श्रेष्ठ कवियों के महाकाव्य का महत्त्व स्पष्ट होता है, जैसे कृष्णपक्ष के अन्धकारमय होने के कारण ही चांदनी बहुत प्रिय लगती है।[3] रामराजभूषण ने अपने 'वसुचरित्र' में कुकवि प्रणीत काव्य को सामान्य कहकर नायिका भेद में 'सामान्या' का अर्थ 'वेश्या' होने के कारण श्लेषालंकार के माध्यम से वेश्या पक्ष एवं कुकविकृत काव्य पक्ष का निर्वाह एक ही छन्द में करके ऐसे काव्य को निकृष्ठ एवं धीरोत्तमों से उपेक्षणीय के रूप में वर्णित किया है।[4] इस प्रकार तेलुगु के महाकाव्यों में कुकवि-निन्दा की काव्यरूढ़ि का पालन हुआ है और इस रूढ़ि का मूलस्रोत प्राकृत साहित्य है।

रामचरितमानस में तुलसी ने सज्जनों की वन्दना के साथ खल वन्दना भी की है। यद्यपि यह वन्दना ही है, पर इस वन्दना से निन्दा ही व्यंजित होती है। जिस रूप में दुर्जनों के कार्यों का विवरण दिया है और उनके लिए जिन अप्रस्तुतों का विधान किया गया है, उससे खल-निन्दा का ही प्रयोजन सिद्ध होता है।[5]

अपभ्रंश भाषा के प्रमुख काव्यों में दुर्जनों की निन्दा की गयी है। स्वयंभू के 'पउमचरिउ' में दुर्जनों का स्मरण किया गया है।[6] इसी प्रकार विद्यापति की 'कीर्तिलता' में भी दुष्टों का स्मरण प्राप्त होता है।[7] स्पष्ट है कि तत्कालीन काव्यों में सज्जन-प्रशंसा के साथ दुर्जन-निन्दा भी प्रायः की गयी है। प्राकृत साहित्य की यह परम्परा अपभ्रंश में स्वीकृत होकर आधुनिक आर्यभाषा हिन्दी में भी आ गयी है।

छन्दविधान की दृष्टि से प्राकृत के कवियों ने विशेष रूप से मात्रिक छन्दों का प्रयोग किया है। अपभ्रंश एवम् हिन्दी में यही प्रवृत्ति प्राप्त होती है। वास्तव में मात्रावृत्त संगीत के लिए अधिक उपयुक्त होते हैं। अभिज्ञों का

---

1. कुमारसम्भव 1-40
2. वही, 1-29, 30
3. पांडुरंगमाहात्म्य 1—14, 15
4. वसुचरित, 1—11
5. मानस, बालकाण्ड 4—1, 2, 3, 4
6. 'प्राकृत और अपभ्रंश साहित्य तथा उनका हिन्दी साहित्य पर प्रभाव', पृ. 234
7. वही, पृष्ठ 203

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

कथन है कि प्राकृत छन्द अपने प्रारम्भ काल से ही मात्रावृत्त रहे हैं ।[1] वर्णवृत्तों की अपेक्षा मात्रिक छन्दों में कवियों की स्वेच्छा के लिए अधिक अवकाश मिलता है। गाथा प्राकृतकाल का सुप्रसिद्ध छन्द है। प्राकृत कालीन प्रभाव गाथा छन्द पर इस रूप में भी द्रष्टव्य है कि अपभ्रंश काव्यों में थोड़े अपभ्रंश शब्द रूपों के अतिरिक्त इन छन्दों की भाषा प्राकृतबहुला पायी जाती है ।[2] इसी गाहा छन्द का संस्कृत रूप आर्या है । तेलुगु भाषा में प्राप्त 'कन्दमु' गाथा छन्द का ही परिवर्तित रूप है। ग्यारहवीं शताब्दी के नन्नयभट्ट के पूर्व के तेलुगु के शिलालेखों में वर्णवृत्तों की अपेक्षा देशी छन्दों का ही प्रयोग अधिक है । उदाहरण के तौर पर युद्धमल्ल के बेजवाड़ा शिलालेख के 'मध्याक्कर' छन्द एवम् पंडरंग के अद्दंकि शिलालेख में प्रयुक्त 'तरुवोज' छन्द का उल्लेख किया जा सकता है । ये देशी छन्द गाने के लिए अधिक उपयुक्त हैं ।हिन्दी के महाकाव्यों में संस्कृत के वर्णवृत्त एवम् प्राकृत तथा अपभ्रंश के माध्यम से विकसित मात्रिक छन्द दोनों का प्रयोग लक्षित होता है। इस प्रकार तेलुगु एवम् हिन्दी में महाकाव्य-रचना के लिए पूर्वपीठिका के रूप में प्राकृत साहित्य के छन्द एवम् विषय की लोकोन्मुखी दृष्टि एवम् गेयगुण दृष्टिगत होते हैं। तुलसी ने संस्कृत के वर्णिक छन्दों का प्रयोग मानस में करते हुए भी हिन्दी भाषा में मात्रिक छन्द की प्रकृति के अनुसार उन्हें तुकान्तरूप दिया है ।

अप्रस्तुत-विधान की दृष्टि से प्राकृत काव्यों को लोकोन्मुखी माना जाता है । कवि-परम्परा में प्रसिद्ध अप्रस्तुतों के अलावा अपनी लोकनिरीक्षण-शक्ति के फलस्वरूप साधारण जीवन में प्राप्त उपमानों का ग्रहण 'गाथासप्तशती' जैसे काव्यों में पाया जाता है। अपभ्रंश एवम् हिन्दी की काव्यधारा में यह प्रवृत्ति दृष्टिगत होती है। तुलसी एवम् जायसी के महाकाव्यों में इस प्रवृत्ति के दर्शन होते हैं । केशव में शास्त्र-पक्ष या आचार्य पक्ष के प्रबल होने के कारण कविपरम्पराप्रसिद्ध अप्रस्तुतों का चयन ही अधिकांशतः दिखाई पड़ता है। तेलुगु के महाकाव्यों में श्रीकृष्णदेवराय के महाकाव्य में कवि की निरीक्षण शक्ति के फलस्वरूप पशुओं, पक्षियों, नदियों, खेतों आदि से सम्बन्धित नवीन उपमानों का भी संयोजन प्राप्त होता है ।

प्राकृत साहित्य में द्वयाश्रय काव्य हेमचन्द्र विरचित 'कुमारपालचरित' के रूप में प्राप्त होता है। स्वरचित प्राकृत व्याकरण के नियमों को स्पष्ट करने

---

1. डा. विपिनविहारी त्रिवेदी : 'चन्दवरदाई और उनका काव्य', पृष्ठ 212
2. डा. विपिनविहारी त्रिवेदी: 'चन्दवरदाई और उनका काव्य', पृष्ठ 217

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

के लिए हेमचन्द्र ने इस महाकाव्य की रचना की थी। इस महाकाव्य में महाराष्ट्री प्राकृत, शौरसेनी, मागधी, पैशाची, चूलिका पैशाची और अपभ्रंश भाषा के नियम और उदाहरण वर्णित हैं। इसे शास्त्रीय महाकाव्य कह सकते हैं। विविध प्राकृतों के नियम-उदाहरण के साथ-साथ गुजरात के राजा कुमारपाल के पराक्रम का वर्णन भी समग्र काव्य में सम्पन्न हुआ है। संस्कृत में भट्टिकाव्य इस प्रकार का शास्त्रकाव्य है, जिसमें द्वयाश्रयत्व प्राप्त होता है। शास्त्रकाव्यों के अलावा दो भिन्न कथाओं के द्वयाश्रय काव्य 'राघवपाण्डवीय' आदि संस्कृत भाषा में मिलते हैं। द्वयाश्रय काव्य लिखने के लिए प्रगाढ़ पाण्डित्य के साथ पाण्डित्य-प्रदर्शन एवम् नवीन प्रयोग की प्रवृत्ति भी अपेक्षित है। प्राकृत साहित्य में कुमारपालचरित के रचयिता हेमचन्द्र के सफल वैयाकरण होने के कारण ही इस प्रकार की काव्य-रचना हो सकी। फिर भी ऐसे प्रयोग को विरल ही कहा जा सकता है। हिन्दी साहित्य में और अपभ्रंश में भी द्वयाश्रय काव्यों का प्राय: अभाव ही समझना चाहिए। किन्तु तेलुगु में पिंगलि सूरनार्य, रामराजभूषण आदि कवियों के द्वारा विरचित द्वयाश्रय महाकाव्यों की एक अलग कोटि दृष्टिगत होती है, जिसके लिए तत्कालीन कवियों का प्रगाढ़ संस्कृत पाण्डित्य, नवीन काव्य प्रयोग की भावना, चमत्कार प्रदर्शन, अन्य कवियों की तुलना में अपनी सामर्थ्य को प्रकट करना आदि प्रवृत्तियाँ उत्तरदायी हैं।

संस्कृत और प्राकृत की ही भाँति अपभ्रंश साहित्य का महत्त्व हिन्दी काव्यधारा की जननी के रूप में अक्षुण्ण है। अपभ्रंश हिन्दी की समीपवर्ती भाषा काल की दृष्टि से है अथवा हिन्दी को अपभ्रंश का आधुनिक रूप कह सकते हैं। अपभ्रंश साहित्य में हिन्दी के काव्यरूपों की विभिन्न धाराओं के पूर्वरूप मिल जाते हैं। शैली की दृष्टि से अपभ्रंश की ही कतिपय पद्धतियाँ हिन्दी काव्यों में प्राप्त होती है। अत: डॉ. रामसिंह तोमर के शब्दों में—अपभ्रंश का हिन्दी पर प्रभाव कहने की अपेक्षा यह कहना उचित होगा कि हिन्दी काव्य के विभिन्न रूपों की धाराओं के मूलस्रोत आठवीं शती विक्रम तक तो स्पष्ट मिलते हैं और तब से नाना प्रकार से परिवर्तित सम्वर्द्धित होते हुए वे अठारहवीं शती तक प्रवाहित होते रहे।[1]

हिन्दी के आदि महाकाव्य 'पृथ्वीराजरासो' के सम्बन्ध में एक धारणा यह भी दिखाई पड़ती है कि रासो का मूल ग्रन्थ अपभ्रंश भाषा में ही रचा गया जो कालान्तर में बढ़ते-बढ़ते अनेक भाषाओं के पुट के साथ

1. हिन्दी साहित्य (प्रथम खण्ड), भा. हिं. प. पृष्ठ 427

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

आधुनिक रूप में परिवर्तित हो गया ।[1] स्मरणीय तथ्य यह भी है कि मुनि जिनविजय जी को प्राप्त 'पुरातन-प्रबन्ध-संग्रह' के पृथ्वीराज विषयक छन्दों की भाषा परिनिष्ठित अपभ्रंश है जिसका किंचित् परिवर्तित रूप पृथ्वीराजरासो में मिलता है ।[2] इसके अतिरिक्त अद्दहमाण के संदेशरासक की कतिपय प्रवृत्तियों को 'पृथ्वीराजरासो' में लक्षित किया जाता है ।[3] तुलसी के रामचरित मानस में प्राप्त मानस रूपक का आदि स्रोत स्वयंभू के 'पउमचरिउ' में दिखाई पड़ता है । स्वयंभू ने राम कथारूपी सरिता को प्रवाहित करते हुए कहा कि इसमें अक्षर-समूह सुन्दर अलंकार और शब्द मत्स्य-गृह है, दीर्घ समास वक्र-प्रवाह है, संस्कृत और प्राकृत पुलिन है, देशी भाषा दोनों उज्जवल तट है, कवि द्वारा प्रयुक्त कठिन और सघन शब्द शिलातल के समान हैं, अर्थबहुलता उठती हुई तरंगें हैं ।[4] तुलसी ने अपने काव्य को सरिता नहीं कहकर सरोवर कहा है । भाषा और अलंकार के अतिरिक्त छन्दविधान में भी अपभ्रंश की परम्परा हिन्दी में आयी । तुलसी और जायसी की दोहाचौपाई शैली का मूल स्रोत अपभ्रंश काव्यों की कड़वक शैली में माना गया है । इस प्रकार हिन्दी की महाकाव्य-विधा की पृष्ठभूमि के रूप में अपभ्रंश साहित्य की कतिपय प्रवृत्तियाँ विद्यमान हैं । रासो, केशव आदि की छन्दवैविध्य की प्रवृत्ति भी अपभ्रंश में है ।[5]

तेलुगु साहित्य पर अपभ्रंश का उल्लेखनीय प्रभाव दिखायी नहीं पड़ता । इसका मुख्य कारण यही प्रतीत होता है कि अपभ्रंश साहित्य का रचनाकाल अर्थात् छठवीं से सत्रहवीं शताब्दी तक के काल में तेलुगु पर्याप्त साहित्य से सम्पन्न हो चुकी थी और अपभ्रश साहित्य का उत्कर्षकाल (स्वयंभू, पुष्पदन्त, धनपाल, नयनन्दि कनकमार, श्रीधर) तेलुगु साहित्य के विकास एवं उत्कर्षकाल के समानान्तर ही चल रहा था । दूसरा कारण भौगोलिक दूरी है । अपभ्रंश मुख्यतः गुजरात, राजस्थान एवं मालव प्रान्त को केन्द्र बनाकर पल्लवित साहित्य है । सुदूर दक्षिण से इन प्रान्तों का सम्पर्क नहीं था । तीसरा कारण धार्मिक परिस्थितियों के रूप में है । अपभ्रंश का अधिकांश साहित्य जैन धर्मावलम्बी ही अब तक उपलब्ध है । यद्यपि धार्मिक महत्त्व से पृथक् शुद्ध

---

1. प्रो. हरिवंश कोछड़, अपभ्रंश साहित्य, पृष्ठ 116
2. आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, संक्षिप्त पृथ्वीराज रासो, भूमिका, पृष्ठ 12
3. प्रो. हरिवंश कोछड़ अपभ्रंश साहित्य, पृष्ठ 116
4. डा. धीरेन्द्र बहादुर सिंह 'तुलसी की कलागत चेतना', पृ. 125
5. डा. रामसिंह तोमर : प्रा. अप. सा. हि. प्रभाव, पृ. 242

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

साहित्यिक रचनाओं का रचा जाना भी स्वाभाविक है, पर भी धार्मिक संस्थाओं का आश्रय प्राप्त होने के कारण जैन धर्म से सम्बन्धित अधिकांश साहित्य अब तक सुरक्षित रह सका है। अनुमान किया जाता है कि आन्ध्र प्रान्त में भी जैनों के द्वारा प्रणीत काव्य रहे होंगे जो धार्मिक विद्वेष के कारण नष्ट हुए होंगे। तेलुगु प्रान्त के समीपस्थ कर्णाट भाषा में जैन धार्मिक काव्य उपलब्ध होते हैं और ये जैन कवि संस्कृत, प्राकृत तथा अपभ्रंश भाषाओं के विद्वान थे।[1] हिन्दी साहित्य की भौगोलिक स्थिति एवं जैन धर्म का मध्यदेश में अधिक प्रचलन के अतिरिक्त भाषा एवं साहित्य दोनों दृष्टियों से हिन्दी का अपभ्रंश का ही परवर्ती रूप होना ऐसे कारण हैं जो अपभ्रंश की प्रवृत्तियों के हिन्दी में पालन के लिए उत्तरदायी हैं। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी की यह स्वीकारोक्ति है— हिन्दी में दसवीं से चौदहवीं शताब्दी तक के काल का साहित्य अपभ्रंश प्रधान साहित्य है।[2] चौदहवीं शताब्दी के बाद में भी हिन्दी कवि इतिवृत्त के लिए संस्कृत साहित्य तथा वर्णन विधान के लिए अपभ्रंश साहित्य की प्रेरणा ग्रहण करते थे। उपर्युक्त चर्चा के प्रकाश में डा. रामसिंह तोमर का कथन है—"हिन्दी साहित्य ने जितना सीधा सम्पर्क अपभ्रंश साहित्य से रखा है, उतना कदाचित् अन्य प्रान्तीय भाषा ने नहीं रखा।[3] यह तेलुगु साहित्य के विशेष संदर्भ में भी यथार्थ है।

तेलुगु प्रान्त भौगोलिक दृष्टि से तमिल एवं कन्नड भाषी प्रदेशों के समीपस्थ है। अतएव तेलुगु में साहित्य रचित होने के पूर्व ही साहित्य से सम्पन्न तमिल एवं कन्नड भाषाओं की कुछ परम्पराओं का प्रभाव तेलुगु साहित्य पर पड़ना स्वाभाविक था। भौगोलिक सामीप्य के अतिरिक्त कुछ राजवंशों का इन विभिन्न भाषा क्षेत्रों पर शासन करना दूसरा कारण है, जिसके फलस्वरूप तमिल, कन्नड एवं तेलुगु परस्पर निकट आ गईं। चालुक्य नरेशों का आधिपत्य तेलुगु तथा कन्नड प्रान्तों पर एक साथ था। इसके अतिरिक्त चालुक्य राजाओं के वैवाहिक सम्बन्ध तमिल प्रान्त के चोलवंशीय नरेशों से थे। विजय नगर साम्राज्य एवं चालुक्य राजाओं के शासन-काल में भिन्न भाषाओं के कवियों को राजकीय संरक्षण प्राप्त था अर्थात् राजसभाओं में इन अलग-अलग भाषाओं के कवि रहते थे। तत्कालीन कवि अपने बहुभाषा-पाण्डित्य के कारण

1. हिन्दी साहित्य कोश (प्रथम भाग), पृ. 189
2. हिन्दी साहित्य का आदिकाल पृ. 18
3. 'प्राकृत और अपभ्रंश साहित्य तथा उनका हिन्दी साहित्य पर प्रभाव', पृ. 283

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

अन्य समीपस्थ भाषाओं के साहित्य से पूर्णतः अभिज्ञ थे। इन राजनैतिक एवं भौगोलिक कारणों में भी प्रबल कारण धार्मिक हैं। आचार्य रामानुज एवं अलवार सन्तों और नायनारों की जन्मभूमि तमिल प्रान्त है और उनकी भक्ति-रचनाओं से तमिल का साहित्य सम्पन्न था। इसी प्रकार वीरशैव धर्म के प्रादुर्भाव तथा उस सम्प्रदाय के प्रवर्तक बसवन्ना की निवास-भूमि कर्णाट प्रान्त है। वैष्णव धर्मावलम्बियों के लिए द्रविड साहित्य एवं वीरशैव मतावलम्बियों के लिए कन्नड साहित्य विशेष आकर्षण के विषय रहे हैं। इन कारणों से तेलुगु महाकाव्यों पर कन्नड तथा तमिल भाषाओं का प्रभाव पड़ा।

महाकाव्यों को आश्वासों में निबद्ध करना, गद्यपद्य मिश्रित चम्पू शैली का अवलम्ब ग्रहण करना, वर्णवृत्तों को संस्कृत की तत्सम प्रधान भाषा शैली में प्रयुक्त करना मध्याक्कर, तरुवोज आदि देशी छन्दों का काव्यों में प्रयोग आदि अंश कन्नड साहित्य से ही तेलुगु में प्रवेश कर गए हैं। कर्णाट साहित्य में छः चरणों से युक्त छन्द भी प्राप्त होते हैं। तेलुगु में साधारणतः चार चरणों के पद्य ही प्राप्त होते हैं। तेनालि रामकृष्ण कवि ने अपने काव्य में राधा की तपस्या के प्रसंग में ग्रीष्म ऋतु का वर्णन करते हुए यह लिखा था—'ग्रीष्म काल में बेला पुष्प कन्नड कवित्व की भाँति षटपद्-वृत्त-विलास-भासुर हुए।[1] यहाँ षटपद शब्द के षटपदी छन्द एवं भ्रमर दो अर्थ हैं। नन्निचोड कवि ने वसन्त ऋतु के वर्णन में 'षटपद मन्जु गीति' शब्द का प्रयोग किया है।[2] इस प्रकार तेलुगु कवि कन्नड के 'भामिनी षट्पदी' छन्द के गेय गुण से पूर्णतः अभिज्ञ थे। नन्निचोड, पालकुरिकि सोमनाथ, धूर्जटी आदि के काव्यों में कन्नड भाषा के शब्द भी प्रयुक्त हुए हैं। वीरशैव साहित्य में इतिवृत्त के रूप में बसवन्ना, बेज्जमहादेवी आदि कन्नड प्रान्तीय शिव भक्तों के जीवन चरित ग्रहण किए गए हैं। इसी प्रकार तमिल प्रान्त की भक्तिन गोदादेवी (आँडाल), आलवार विष्णुचित्त और यामुनाचार्य के जीवन से सम्बन्धित इतिहास 'आमुक्त माल्यदा' नामक महाकाव्य में ग्रहण किया गया है। विप्रनारायण नामक एक अमायिक विष्णुभक्त की कथा 'विप्रनारायणचरित्र' एवं 'वैजयन्तीविलासमु' नामक काव्यों में वर्णित है। तमिल साहित्य के गुरुपरम्पराप्रभाव, द्राविड दिव्य प्रबन्ध, तिरुप्पावै आदि का प्रभाव श्रीकृष्णदेवराय विरचित महाकाव्य पर लक्षित होता है। पालकुरिकि सोमनाथ के 'बसवपुराण' एवं धूर्जटी के

1. पांडुरंगमाहात्म्यमु—4–16।
2. कुमारसम्भव–4—102।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

'कालहस्तिमाहात्म्य' में तमिल प्रान्त के शिवभक्तों के चरित वर्णित हैं। इन काव्यों में तमिल भाषा के शब्द भी प्राप्त होते हैं। श्रीकृष्णदेवराय ने तमिल स्त्रियों के वर्णन में उन स्त्रियों के लिए 'दिव्यप्रबन्धयुगास्यल्' शब्द का प्रयोग किया है। इस शब्द के प्रयोग में कवि का यही आशय था कि वे स्त्रियाँ दिव्य प्रबन्ध का पाठ करती थीं। आलवार सन्तों के भक्तिपूर्ण पदों के संग्रह को तमिल में 'दिव्य प्रबन्ध' या द्रविड प्रबन्ध कहा जाता है और उसका पाठ विष्णु मन्दिरों में दक्षिण में किया जाता है।[1] इस प्रकार तमिल एवं कन्नड का प्रभाव तेलुगु महाकाव्य पर दिखाई पड़ता है। हिन्दी साहित्य पर यह प्रभाव बिलकुल नहीं है।

तेलुगु एवं हिन्दी के भिन्न भाषा क्षेत्रों में विकसित महाकाव्य-विधा के स्वरूप में साम्य एवं भिन्नता के लिए इन क्षेत्रों की वातावरणगत समानता एवं विषमता ही मुख्य कारण रही हैं। इसके अतिरिक्त कवियों के विशिष्ट दृष्टि-कोण के कारण भी काव्य-रूप का स्वरूप निर्धारित होता रहा। हिन्दी का प्रमुख महाकाव्य 'रामचरितमानस' अपभ्रंश के कथाकाव्यों तथा संस्कृत के पुराणों से पर्याप्त प्रभावित है। तुलसी के सामने 'साहित्य-दर्पण' आदि लक्षण ग्रन्थों में निरूपित महाकाव्य का स्वरूप कदाचित् नहीं था।

तुलसी जैसे भक्त एवं समन्वयात्मक प्रतिभा के प्रखर व्यक्तित्व ने तेलुगु में रामकाव्य का प्रणयन नहीं किया था। तुलसी के सदृश रामभक्त एवं प्रथम कोटि के प्रतिभाशाली पोतनामात्य का व्यक्तित्व तेलुगु क्षेत्र में दृष्टिगत होता है। परन्तु पोतना आन्ध्र भागवतकार हैं और भागवत अपने मूल रूप में यानी संस्कृत में पुराण है और तेलुगु में भी पुराण है। तेलुगु साहित्य के क्षेत्र में भक्ति-तन्मयता, सर्वजन-रंजकता तथा उपादेयता की दृष्टि से तेलुगु भागवत का वही स्थान है, जो हिन्दी में 'रामचरितमानस' का है। भागवत में उत्कृट एवं अतीव मधुर भक्ति कवित्व की निधि है। तो भी उसका काव्यरूप सर्ग, प्रतिसर्ग, मन्वन्तर, वंशानुचरित के लक्षण से अनुशासित होने के कारण महा-काव्य के वर्ग में नहीं आता। 'रामचरितमानस' पर अपभ्रंश साहित्य की जिन रचना पद्धतियों का प्रभाव है, उनसे तेलुगु काव्य-ग्रन्थ पृथक रहे हैं, क्योंकि अपभ्रंश और उसकी परम्पराओं का प्रचलन तेलुगु क्षेत्र में प्राय: नहीं था। हिन्दी साहित्य के रामकाव्य में अध्यात्म रामायण की परम्परा विशेष रूप से गृहीत हुई है और तेलुगु साहित्य में वाल्मीकि रामायण की साहित्यिक परम्परा

---

1. आमुक्तमाल्यदा 1—56

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

का अधिक प्रशस्त प्रतिफलन हुआ है। मूलस्रोतों के इस वैभिन्य के कारण हिन्दी और तेलुगु का रामसाहित्य दो पृथक सरणियों पर चल पड़ा है। एक में भक्तितत्व की प्रधानता है और दूसरे में साहित्यिक एवं दार्शनिक तथ्य का अधिक गहरा प्रभाव है।[1]

आचार्य कवि केशवदास के सामने संस्कृत के महाकाव्य और लक्षण ग्रन्थों मे निरूपित महाकाव्य का स्वरूप विद्यमान था। इसीलिए तुलसी की अपेक्षा केशव संस्कृत महाकाव्य के अधिक निकट दिखाई पड़ते हैं। इसके अतिरिक्त केशव के व्यक्तित्व पर वैराग्य संपन्न त्यागवादी संस्कारों की अपेक्षा राजसी वातावरण एवं भोगवादी संस्कारों का अधिक प्रभाव है। राजाश्रय में केशव का रहना, उनकी रीतिप्रियता, तत्कालीन वैभव-विलासपूर्ण राजसी-पद्धति एवं अलंकार-प्रियता ने 'रामचन्द्रिका' के काव्य-रूप को निर्धारित किया। जहाँ तुलसी में भक्तिकाव्य की परम्परा प्रमुख है, केशव में शुद्ध साहित्यिक परम्परा के दर्शन होते हैं। तेलुगु के महाकाव्य प्रायः शुद्ध साहित्यिक परम्परा में ही विरचित हैं। अधिकांश महाकाव्यों के राजसी वातावरण एवं राजाश्रय में निर्मित होने के कारण अलंकरण-प्रियता, वर्णनप्रियता एवं रीतिबद्धता का अधिक आग्रह लक्षित होता है। तत्कालीन नरेशों की विलासप्रियता एवं युगधर्म के अनुरूप रसराज शृंगार को प्रमुख स्थान तेलुगु के महाकाव्यों में प्राप्त हुआ। संस्कृत साहित्य के विशेष प्रचार-प्रसार के अतिरिक्त संस्कृत भाषा में जिस प्रदेश में काव्यों का सृजन भी होता था, उस प्रान्त में समानन्तर रूप से रचित तेलुगु महाकाव्यों में संस्कृत महाकाव्यों की परम्पराओं का स्वीकृत होना सहज था। तेलुगु के कुछ महाकवियों के द्वारा संस्कृत में भी काव्य-रचना के कतिपय प्रमाण उपलब्ध होते हैं।

हिन्दी में जायसी के 'पद्मावत' पर अपभ्रंश के कथाकाव्यों, लोकगाथाओं एवं फारसी की मसनबी का समवेत प्रभाव पड़ा है। सूफी दार्शनिक विचार-धारा ने भी जायसी के काव्यरूप को पर्याप्त प्रभावित किया है। पद्मावती के रूप-वर्णन में स्थान-स्थान पर अलौकिक पारमार्थिक सत्ता की ओर स्पष्ट संकेत, सूर्यनाड़ी, चंद्रनाड़ी, सहस्रार इत्यादि साधनात्मक यौगिक पारिभाषिक शब्दावली का प्रयोग, रत्नसेन-पद्मावती के शृंगार-वर्णन में भी, समासोक्ति पद्धति के द्वारा प्रतीक तत्व का निर्वाह आदि विशेषताएँ कवि के सूफी सम्प्रदायी होने

---

1. आचार्य नन्ददुलारे बाजपेयी : 'हिन्दी और तेलुगु के राम साहित्यों का तुलनात्मक अनुशीलन' का प्रारम्भिक वक्तव्य, पृष्ठ 6

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

के कारण पद्मावत में प्राप्त होती हैं। आंध्र प्रान्त में सूफी सम्प्रदाय के विशेष प्रचलन के अभाव के कारण तेलुगु के महाकाव्यों में ऐसी विशेषताएँ दृष्टिगत नहीं होती हैं। मध्यदेश में शासकों का इस्लाम सम्प्रदाय, फारसी साहित्य आदि का सम्पर्क एवं समन्वय भारत के आर्यधर्म, दर्शन, जन-जीवन, कला आदि के साथ सम्पन्न हुआ था। सुदूर दक्षिण में स्थित होने के कारण तेलुगु क्षेत्र में ऐसा समन्वय उतने बड़े पैमाने पर सम्पन्न नहीं हुआ था। तेलुगु में द्वयाश्रय महाकाव्यों की एक कोटि मिलती है और अपभ्रंश तथा हिंदी में उस प्रकार के काव्यों के अभाव का एक कारण यह हो सकता है कि भिन्न अर्थों की प्रतीति के लिए सर्वाधिक समर्थ संस्कृत की तत्सम शब्दावली होती है, तेलुगु में संस्कृत के तत्सम शब्दों का प्रचुर प्रयोग है और अपभ्रंश तथा हिन्दी में संस्कृत शब्दों की विरलता ही अधिक है। काव्य भाषा की तत्सम-शब्द-प्रधानता हिन्दी की आधुनिक प्रवृत्ति है। हिन्दी कवियों में द्वयाश्रय काव्य लिखने की प्रवृत्ति का अभाव भी एक अन्य कारण हो सकता है। इसी प्रकार इतिवृत्त, छन्द प्रयोग, अप्रस्तुतविधान आदि में तमिल एवं कन्नड भाषाओं का प्रभाव तेलुगु पर है। हिन्दी के काव्यों पर ऐसा प्रभाव नहीं होने के कारण तमिल एवं कन्नड साहित्य की विशेषताएँ हिन्दी के महाकाव्यों में दिखायी नहीं पड़तीं।

हिन्दी एवं तेलुगु के महाकाव्यों में 'आशीर नमस्क्रिया वस्तुनिर्देश' वाला मंगलाचरण प्रायः प्राप्त होता है। इस मंगलाचरण में इष्टदेवता की वंदना, गुरु की वन्दना, अपने से पूर्व के संस्कृत, प्राकृत कवियों की वन्दना, दुर्जनों की निन्दा या दुष्कवियों की निन्दा, आश्रयदाता नरेश की प्रशसा, कवि का आत्म परिचय एवं काव्य-रचना का उद्देश्य, विनय-प्रदर्शन आदि का संयोजन रहता है। महाकाव्य का नायक देवांश सम्भूत क्षत्रियकुलोत्पन्न, सत्कुलीन राजा होता है जो धीरोदात्त गुणों से युक्त होता है या देवता होता है। इसके अतिरिक्त शृंगार, बीर, शान्त इन प्रधान रसों में से कोई एक अंगीरस होता है। केवल सूफी प्रेमाख्यानक काव्यों को छोड़कर हिन्दी एवं तेलुगु के महाकाव्यों में प्रायः अध्याय-विभाजन प्राप्त होता है। रासोकार ने समय कहा, मानसकार ने सोपान कहा, रामचन्द्रिका के रचयिता ने 'चन्द्रिका' नाम की सार्थकता को द्योतित करने के लिए प्रकाश का अभिधान दिया है। तेलुगु महाकाव्य प्राकृत की परम्परा के अनुसार आश्वासबद्ध हैं। हिन्दी महाकाव्य में छन्दविधान की दो परम्पराएँ प्राप्त होती हैं। जायसी एवं तुलसी में दोहा-चौपाई की शैली है तो रासो, रामचन्द्रिका, छत्रप्रकाश, राजविलास आदि में छन्दो-वैविध्य की परम्परा दृष्टिगत होती है। तेलुगु के अधिकांश महाकाव्यों में छन्दोवैविध्य की

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

परम्परा को ही स्वीकृत किया गया है। इसके अतिरिक्त कथानक को रामायण, महाभारत आदि पौराणिक स्रोतों से ग्रहण करने की पद्धति भी हिन्दी एवं तेलुगु में समान है। भुजंगप्रयात, शार्दूलविक्रीडित, स्रग्विणी, मालिनी आदि संस्कृत के वर्णवृत्तों एवं संस्कृत के श्लोकों का भी संयोजन दोनों भाषाओं के महाकाव्यों में समान है। संस्कृत एवं प्राकृत के रूढ़ अप्रस्तुतों का चयन एवं कवि-समयों का पालन भी इन भाषा-कवियों में समान रूप से प्राप्त होता है। इस प्रकार की समानताओं का मूल कारण तेलुगु एवं हिन्दी के भाषा-क्षेत्रों में मध्यकाल तक प्रचलित धार्मिक, दार्शनिक एवं पौराणिक मान्यताओं की समानता है। साहित्यिक पृष्ठभूमि के रूप में संस्कृत एवं प्राकृत महाकाव्यों के अतिरिक्त संस्कृत का काव्यशास्त्र भी हिन्दी एवं तेलुगु के महाकाव्यों के लिए समान है। अतः आलोच्य भाषाओं के महाकाव्य-साहित्य की मूलभूत एकता असंदिग्ध है।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

तृतीय अध्याय

वर्गीकरण और प्रमुख महाकाव्यों का परिचय

हिन्दी एवं तेलुगु के साहित्यों में विविध प्रकार के महाकाव्य लिखे गये। अध्ययन की सुविधा के लिए इन समस्त महाकाव्यों को कुछ निश्चित तत्वों के आधार पर वर्गीकृत करना और वर्गीकरण के अनुसार दोनों क्षेत्रों के प्रमुख महाकाव्यों का विवेचन करना इस काव्यरूप के विकास को स्पष्ट करने में अधिक उपादेय होगा। वर्गीकरण की दृष्टि से भी आलोच्य भाषाओं में प्राप्त महाकाव्यों की समानताओं एवं विषमताओं का अवलोकन सुगम होगा। गुण एवं राशि की दृष्टि से किसी एक क्षेत्र में प्राप्त विशिष्ट प्रकार का आधिक्य एवं दूसरे क्षेत्र में उसकी न्यूनता कवियों के दृष्टिकोण तथा तत्कालीन परिस्थितियों की ओर संकेत करती है।

विकसनशील एवं अलंकृत महाकाव्य

पाश्चात्य आलोचकों ने ऐतिहासिक अध्ययन के प्रयोजन से पूर्ववर्ती महाकाव्य अथवा आदिम महाकाव्य (Premitive epic) तथा परवर्ती महाकाव्य (Later epic) का विभेद माना है।[1] दूसरे शब्दों में इस वर्गीकरण को विकसनशील महाकाव्य (epic of growth) एवं कलात्मक अथवा अलंकृत महाकाव्य (epic of art) का वर्गीकरण कह सकते हैं। विकसनशील महाकाव्य सैकडों वर्षों में असंख्य व्यक्तियों के बीच मौखिक एवं लिखित परम्पराओं में विकसित होते हैं। विभिन्न कालों में गायकों, चारणों और लिपिकों के द्वारा इनका रूप-विकास होता है। परन्तु अलंकृत महाकाव्यों की रचना विशिष्ट कवियों के द्वारा विशिष्ट एवं निश्चित समय में की जाती है। यूनानी महाकाव्य 'इलियड' और 'ओडेसी' को विकसनशील महाकाव्य माना जाता है और तदनन्तर काल के वर्जिल, स्पेन्सर, मिल्टन आदि के महाकाव्यों को अलंकृत। संस्कृत के रामायण एवं महाभारत को कुछ विद्वान् विकसनशील महाकाव्य मानते हैं। परन्तु भारतीय परम्परा में विकसनशील महाकाव्य का भेद मान्य नहीं। प्राचीन परम्परा रामायण को तो काव्य कहती है और महाभारत को काव्य से पृथक् 'पंचमवेद', 'भारतसंहिता', 'इतिहास' आदि कहकर महाकाव्य से भिन्न कोटि में रखा गया है। डा. शंभूनाथ सिंह ने हिन्दी के 'पृथ्वीराजरासो' एवं 'आल्हाखण्ड' को विकसनशील महाकाव्य मानकर उनका विवेचन किया है। इधर पाठालोचन की वैज्ञानिक पद्धति के अनुसार डॉ. माताप्रसाद गुप्त ने 'पृथ्वीराजरासो' का सम्पादन किया है और 'आल्हाखण्ड'

---

1. An Introduction to the study of literature, P. 105

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

को कतिपय त्रुटियों एवं निम्न साहित्यिक स्तर के कारण महाकाव्य के पद पर प्रतिष्ठित करना समीचीन नहीं हैं। अतः हिन्दी के सन्दर्भ में विकसनशील एवं अलंकृत महाकाव्य का वर्गीकरण उपादेय नहीं है। तेलुगु साहित्य में 'पलनाटिवीरचरित्र' को विकसनशील कृति माना जाता हैं। किन्तु इसमें महा-काव्योचित गरिमा का अभाव है।

उत्पाद्य और अनुत्पाद्य महाकाव्य

इतिवृत्त की साहित्यिक अथवा साहित्येतर स्रोतों में प्रसिद्धि और केवल कविकल्पना-जन्यता के आधार पर प्रख्यात और उत्पाद्य के भेद से महाकाव्यों का वर्गीकरण किया जा सकता है। रुद्रट के शब्दों में—

"तात्रोत्पाद्या येषां" शरीर मुत्पादयेत्कविः सकलम्।
कल्पित युक्तोत्पत्ति नायक मणि कुत्र चित्त्कुर्यात्॥

तथा

पंजर मितिहासादि प्रसिद्धमखिलं तदेक देशंवा
परिपूरयेत्स्ववाचा यत्र कवि स्तेत्वनुत्पाद्याः।[1]

अर्थात् उत्पाद्य काव्य वे कहलाते हैं जिनके सम्पूर्ण शरीर को कवि बनाता है और कहीं नायक को भी अपनी कल्पना से बनाता है और अनुत्पाद्य (प्रख्यात) वे कहलाते हैं, जहाँ कवि इतिहास आदि में प्रसिद्ध सम्पूर्ण कथाशरीर को या उसके एक भाग को अपनी वाणी से पूर्ण करता है। भारतीय साहित्य में शुद्ध काल्पनिक इतिवृत्तों की अपेक्षा प्रख्यात कथाओं को ही कवियों एवं प्रमाताओं ने ग्रहण किया है। रसवादी साहित्यिक दृष्टि में साधारणीकरण के लिए प्रख्यात कथानक एवं परम्परा प्रसिद्ध भव्य नेता का चित्रण अधिक उपयुक्त समझा गया। फिर भी काल्पनिक कथाओं में काव्यात्मक अभिव्यक्ति का बिल्कुल अभाव नहीं है। कुछ प्रतिभाशाली कवियों ने अपने उद्देश्य के अनुरूप शुद्ध कल्पनाश्रित इतिवृत्त का संयोजन अपने महाकाव्यों में अवश्य किया है और ऐसे काब्यों को तत्कालीन साहित्याभिरुचि एवं आलंकारिक मान्यताओं की दृष्टि से नवीन प्रयोग कह सकते हैं। तेलुगु के रामराज भूषण कवि के अनुसार उनके आश्रयादाता नरेश ने उन से यह अभ्यर्थता की थी "शुद्ध कल्पनाश्रित कथायें कृत्रिम रत्न हैं और आद्य सत्कथाएँ खान से तत्काल निकाले हुए रत्न हैं और श्रेष्ठ कवि की प्रतिभा से विभूषित होकर प्राचीन कथाएँ निखारे हुए उत्तम-

---

1. रुद्रट : काव्यालंकार, षोडशोध्याय, श्लोक 3, 4

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

रत्नों की भांति समादरणीय होते हैं। अतएव कल्पना-चमत्कार एवं प्राचीन प्रख्यात इतिवृत्त के सम्मिश्रण से काव्य-रचना हमारे लिए करें।" इस मत में तत्कालीन अधिकांश साहित्यिकों की कथावस्तु सम्बन्धी मान्यता का प्रतिफलन है। हिन्दी के 'पृथ्वीराजरासो', 'रामचरितमानस', 'पद्मावत', रामचन्द्रिका', 'हम्मीर रासो', 'छत्रप्रकाश' आदि का इतिवृत्त अनुत्पाद्य है। अनुत्पाद्य कहने में हमारा यही अभिप्राय है कि उपर्युक्त काव्यों के रचना-काल से पूर्व ही उनमें गृहीत इतिवृत्त अपने मूलरूप में पुराण, इतिहास एवं लोककथा की परम्पराओं में प्रख्यात रहा है और इस प्रख्यात कथा का ही चयन कवियों ने करके अपने कल्पना-वैभव के पुट से नवीन उद्भावनाओं से मण्डित कर महाकाव्य का रूप प्रदान किया है। तेलुगु में मनुचरित्र, वसुचरित्र, आमुक्तमाल्यदा, कुमारसंभव, राघवपांडवीय आदि भी अनुत्पाद्य महाकाव्यों की कोटि में आते हैं। क्योंकि उनमें स्वीकृत इतिवृत्त पौराणिक एवं ऐतिहासिक स्रोतों में प्रसिद्ध है। तेलुगु साहित्य में उत्पाद्य या शुद्ध कल्पना-जन्य महाकाव्यों के वर्ग में 'कलापूर्णोदय' एव निरंकुशोपाख्यन' की गणना हो सकती है।

प्रख्यात अथवा अनुत्पाद्य महाकाव्यों का विभाजन फिर 1—पौराणिक महाकाव्य, 2—ऐतिहासिक महाकाव्य इन दोनों रूपों में कर सकते हैं। पौराणिक महाकाव्य वे हैं, जिनका इतिवृत्त महाभारत, रामायण, हरिवंशपुराण, शिवपुराण, मार्कण्डेयपुराण, वाराहपुराण आदि पौराणिक स्रोतों से ग्रहण किया गया है। ऐतिहासिक महाकाव्य उनको कह सकते हैं, जिनका कथानक पृथ्वीराज, हम्मीरदेव, छत्रसाल, श्रीकृष्णदेवराय, काकतीय प्रतापरुद्र, रघुनाथ भूपाल आदि इतिहास प्रसिद्ध वीर पुरुषों से सम्बन्धित है। यद्यपि भारतीय परम्परा में रामायण एवं महाभारत को इतिहास भी माना गया है, इस वर्गीकरण के सन्दर्भ में इतिहास शब्द का प्रयोग सर्वथा उसके नवीन अर्थ में ही किया गया है। इस विभाजन के अनुसार 'रामचरितमानस' एवं 'रामचन्द्रिका' पौराणिक महाकाव्य हैं और 'पद्मावत', 'रासो', 'हम्मीररासो', 'छत्रप्रकाश', 'सुजानचरित' तथा 'राजविलास' ऐतिहासिक महाकाव्य हैं। इसी प्रकार तेलुगु के 'स्वारोचिष मनुसम्भव', 'पारिजातापहरण', 'वसुचरित्र', 'राघव पांडवीय' एवं 'कुमारसम्भव' पौराणिक महाकाव्य हैं। कृष्णरायविजयमु, सिद्धेश्वरचरित्र, पलनाटिवीरचरित्र, रामराजीयमु आदि ऐतिहासिक महाकाव्य हैं। श्रीकृष्णदेवराय द्वारा विरचित 'आमुक्तमाल्यदा' में तमिल प्रदेश की प्रसिद्ध भक्तिन आण्डाल तथा आण्डाल के पिता विष्णुचित्त से सम्बन्धित कथानक के साथ 'वराहपुराण' से भी उपाख्यानों का चयन किया गया है। प्रधान इतिवृत्त के

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

आधार पर इस महाकाव्य को पौराणिक की अपेक्षा ऐतिहासिक वर्ग में स्थान देना अधिक उपयुक्त होगा।

पौराणिक वस्तु को आधार बनाकर रचित काव्य हिन्दी में बहुत हैं। धार्मिक भिन्नता के कारण पौराणिक वस्तु परम्परागत स्रोतों से पृथक रूप में कुछ काव्यों में संयोजित है। जैन धर्मावलम्बियों ने महाभारत, रामायण, हरिवंश पुराण आदि के आख्यानों में विशेष परिवर्तन करके अपने धार्मिक सिद्धान्तों के अनुरूप नवीन रूप दिया। हिन्दी से पूर्व अपभ्रंश के स्वयंभू, हरिषेण आदि कवियों की कृतियों में यह प्रवृत्ति देखी जा सकती है। हिन्दी में भी 'प्रद्युम्नचरित' आदि जैन काव्यों में वस्तु की योजना जैन धर्म की दृष्टि से की गई। यद्यपि 'रामचरितमानस' की छन्द-शैली अपभ्रंश काव्यों में प्रयुक्त कडवक शैली का विकसित रूप है, मानसरोवर की भाँति अपभ्रंश के 'पउमचरिउ' में कवित्व को नदी बताकर रूपक बाँधा गया, तो भी रामकथा का रूप तुलसी के धार्मिक सिद्धान्तों के अनुरूप वाल्मीकि रामायण, अध्यात्म-रामायण आदि में लक्षित रूप से बहुत भिन्न नहीं है। तुलसी ने आधार ग्रन्थों में प्राप्त अनुचित अंशों का परिहार करके मर्यादित रूप में वस्तु को विन्यस्त किया, रामकथा के उज्ज्वल रूप को और उज्ज्वल बना दिया। ठीक यही प्रवृत्ति तेलुगु क्षेत्र में दिखाई पड़ती है। तेलुगु से पूर्व साहित्यारूढ़ कन्नड भाषा के पंप, पोन्न, रन्न नामक जैन कवियों ने महाभारत के इतिवृत्त को लेकर काव्य रचना की थी। पुट्टपर्ति नारायणाचार्य, निडदवोलु वेंकटराव आदि विद्वानों का मत है कि तेलुगु के कवि छन्द विधान, भाषा-शैली आदि की दृष्टि से उन जैन कवियों से पर्याप्त प्रभावित हैं। किन्तु तेलुगु के कवि वस्तु-स्वीकृति में जैन धर्म से बिल्कुल प्रभावित नहीं हैं। हिन्दू पुराणों के अनुसार ही तेलुगु कवियों ने इतिवृत्त की योजना अपने काव्यों में की। तेलुगु में जैन धर्मावलम्बियों द्वारा विरचित काव्यों का प्रायः अभाव है।

हिन्दी के काव्य-ग्रन्थों ने विशेष रूप से राम और कृष्ण से सम्बन्धित पौराणिक कथावस्तु को ग्रहण किया है। रामकथात्मक वस्तु के स्रोत के रूप में वाल्मीकि रामायण, अध्यात्म रामायण, रघुवंश, अनर्घराघव, उत्तररामचरित आदि का आधार तुलसी और केशव ने ग्रहण किया। केशव को छोड़कर हिन्दी का राम-साहित्य प्रायः भक्तों का साहित्य है। इसलिए राम का दिव्यत्व एवं अवतार भाव काव्य में व्यंग्य रूप में नहीं रहकर वाच्य बन गये हैं। स्थान-स्थान पर कवि स्वयं और पात्रों के माध्यम से भी राम को भगवान घोषित करते गये। मानस में भक्तिपरक दृष्टिकोण के अनुरूप अध्यात्म रामायण की

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

कथा-प्रणाली अपनायी गयी। शिव-पार्वती की वक्ता-श्रोता रूप में योजना, कौसल्या के द्वारा राम की स्तुति आदि अंश वाल्मीकि रामायण में नहीं हैं। तेलुगु के प्रसिद्ध महाकाव्यों के इतिवृत्त रामायण, महाभारत, हरिवंश, विष्णु-पुराण, मार्कण्डेयपुराण, वराहपुराण, शिवपुराण आदि पौराणिक स्रोतों से गृहीत हुए हैं। संस्कृत के 'शिशुपालवध' आदि की भाँति पुराणों में वर्णित किसी स्वल्प कथांश को अपनी प्रतिभा के बल पर वर्णनों की योजना से महाकाव्य का रूप प्रदान किया गया।

हिन्दी साहित्य में ऐतिहासिक इतिवृत्त के आधार पर काव्य-रचना की प्रवृत्ति आदिकाल के वीरगाथा काव्यों एवं रीतिकाल के वीरकाव्यों के रूप में दिखायी देती है। वीरगाथा काव्यों में चन्दबरदाईकृत 'पृथ्वीराजरासो' को हिन्दी के प्रथम महाकाव्य होने का गौरव प्राप्त है। इस काव्य का चरित नायक पृथ्वीराज चौहान भारत के इतिहास में लब्धप्रतिष्ठ वीरपुरुष हैं। परमालरासो एवं बीसलदेवरासो का भी विवेचन आचार्य शुक्ल ने आदिकाल के वीरगाथा काव्यों के अन्तर्गत ही किया था। क्योंकि सबमें 'रासो' शब्द समान रूप से जुड़ा हुआ है। किन्तु 'बीसलदेवरासो' में वीररस की अपेक्षा श्रृंगार रस का महत्त्व अधिक है और यह काव्य प्रबन्ध न होकर गीतकाव्य बना हुआ है। डॉ. माताप्रसाद गुप्त ने रासो और रास का भेद स्पष्ट करते हुए छन्दोवैविध्यपरक रासो काव्य परम्परा एवं गीतनृत्यपरक रासकाव्य परम्परा के भेद की ओर ध्यान आकर्षित करके बीसलदेवरासो को गीतनृत्य-परक काव्यों के अन्तर्गत माना है। साधारण जनता में बहुप्रचलित 'आल्हाखण्ड' भी ऐतिहासिक इतिवृत्त का काव्य है, जिसको बीसवीं शती में स्वर्गीय इलियट साहब की प्रेरणा से संगृहीत किया गया। रीतिकाल में भूषण, पद्माकर, लाल, सूदन, मान, केशव, जोधराज, ग्वाल, चन्द्रशेखर वाजपेयी आदि ने ऐतिहासिक काव्यों की रचना वीररस की अंगी रूप में योजना करते हुए की है। इस प्रकार स्पष्ट है कि ऐतिहासिक काव्य-रचना की प्रवृत्ति आदिकाल से मध्यकाल तक अबाध गति से दृष्टिगत होती है और आधुनिककाल में भी हल्दीघाटी, नूरजहाँ आदि ऐतिहासिक काव्य इस प्रवृत्ति के उदाहरण हैं। 'पृथ्वीराजरासो' से लेकर 'हल्दीघाटी' तक प्रवाहित ऐतिहासिक काव्यों की धारा में युगानुरूप स्वरूप-विकास शिल्पविधान के विषय में नितान्त स्वाभाविक है। मध्यकाल तक के ऐतिहासिक काव्यों में कुछ को महाकाव्य, कुछ को खण्डकाव्य एवं कुछ को मुक्तक काव्य, आकार, विषय-विस्तार, शैली आदि की दृष्टि से माना जाता है। डॉ. टीकमसिंह तोमर ने वीरसिंह देवचरित, राजविलास, छत्रप्रकाश,

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

सुजानचरित एवं हम्मीररासो को महाकाव्य तथा गोराबादल की कथा, जंगनामा, रासा भगवन्त सिंह, करहिया को रायसौ और हिम्मत-बहादुर बिरुदावली को खण्डकाव्य माना है। रतनबावनी, ललितललाम, शिवराज-भूषण, शिवाबावनी, छत्रसालदशक, जगद्विनोद और प्रतापविरुदावली को कथासूत्र के अभाव के कारण मुक्तक काव्य माना जाता है। चन्दबरदाई, लाल, पद्माकर एवं भूषण का महत्त्व काव्यकला की दृष्टि से भी है। इस प्रकार हिन्दी में ऐतिहासिक काव्यों का प्राचुर्य पौराणिक काव्यों के समान ही है।

तेलुगु साहित्य में पौराणिक इतिवृत्त के आधार पर रचित काव्य ही प्राचुर्य एवं काव्यकला की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं और ऐतिहासिक काव्यों का स्थान सख्या एवं गुण दोनों दृष्टियों से गौण है। इससे यही निष्कर्ष निकलता है कि मध्यकाल तक के कवियों की दृष्टि में पौराणिक इतिवृत्त ही काव्य रचना के लिए अपेक्षाकृत अधिक उपयोगी समझे गये हैं। फिर भी ऐतिहासिक काव्यों का बिल्कुल अभाव नहीं है। स्वतन्त्र काव्यों के अलावा ऐतिहासिक घटनावाली का काव्यमय रूप अधिकांश कृतियों के अवतारिका भागों में निबद्ध आश्रयदाताओं की विजय यात्राओं, पराक्रम आदि के वर्णन के रूप में उपलब्ध होता है। स्वतन्त्र काव्यों के रूप में निम्नांकित कृतियाँ उल्लेखनीय हैं।

(1) पलनाटिवीर चरित (2) सिद्धेश्वर चरित

(3) रामराजीय (4) कृष्णराय विजय

शिल्पविधान के आधार पर भी महाकाव्यों के विविध प्रकार बनते हैं। शिल्पविधान से हमारा तात्पर्य कवि के द्वारा गृहीत इतिवृत्त के मूल स्रोत से नहीं, बल्कि उस इतिवृत्त को प्रदत्त रूपात्मक संगठन अथवा आन्तरिक योजना से है। शिल्पविधान के अन्तर्गत प्रतीक तत्व का निर्वाह, कथानक का द्वयाश्रयत्व, वक्ता-श्रोता योजना, विविध छन्दों का प्रयोग आदि समाविष्ट होते हैं। दोनों साहित्यों को दृष्टिपथ में रखते हुए महाकाव्यों के निम्नांकित भेद किए जा सकते है—

(1) पौराणिक आख्यान शैली के महाकाव्य।

(2) ऐतिहासिक शैली के महाकाव्य।

(3) प्रतीक शैली के महाकाव्य।

(4) शास्त्रीय शैली के महाकाव्य।

(5) क्षेत्रमहिमा प्रतिपादक महाकाव्य।

(6) बहुअर्थक महाकाव्य।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

(7) तद्भव देशज शैली के महाकाव्य।

क्रमश : उपर्युक्त सात वर्गों के महाकाव्यों की विशेषताओं का विवेचन प्रस्तुत किया जा रहा है।

पौराणिक आख्यान शैली के महाकाव्य

हिन्दी में इस वर्ग के महाकाव्यों में तन्त्र-विधान की दृष्टि से अपभ्रंश के चरितकाव्यों की कतिपय विशेषताओं एवं संस्कृत के पुराणों की धार्मिक शैली का अद्भुत समन्वय दिखाई पड़ता है। हिन्दी का 'रामचरितमानस' इस वर्ग का श्रेष्ठ प्रतिनिधि है। संस्कृत के शास्त्रीय महाकाव्यों के लक्षणों की अपेक्षा इसमें लोकोन्मुख तत्वों की योजना छन्द विधान, अलंकार, भाषा शैली, इतिवृत्त-निर्वहण आदि में स्पष्टतः लक्षित होती है। धर्मोपदेश-प्रधानता का जो लक्षण पुराणों का है, उसमें उत्कृष्ट साहित्यिक सौन्दर्य का अभाव है। यही कारण है कि पुराण और महाकाव्य को भिन्न विधाएँ माना गया है और उनका पार्थक्य सुनिश्चित आधार पर द्रष्टव्य है। पुराण महाकाव्यों के उपजीव्य ग्रन्थ हो सकते हैं। पौराणिक स्रोतों से कवि इतिवृत्त ग्रहण कर सकते हैं और पौराणिक मान्यताओं को अपनी रचना में स्थान देते हैं। इसके साथ ही अपनी काव्य-प्रतिभा के बल पर महाकाव्य को जो रूप प्रदान करते हैं, वह पुराणों से बिल्कुल भिन्न होता है। अतः रामचरितमानस को पुराण नहीं, बल्कि कुछ अंशों में पौराणिक शैली का महाकाव्य कहना तर्कसंगत है।

अपभ्रंश के चरित काव्यों में वक्ता-श्रोता योजना, कडवकबद्ध शैली, एवं वर्णनात्मकता की अपेक्षा चरित्रकथन पर अधिक आग्रह आदि विशेषताएँ मिलती हैं और तुलसी ने इन विशेषताओं का समावेश अपने काव्य के अन्तर्गत किया है। इसीलिए अपभ्रंश के चरितकाव्यों का जैसा रूप तुलसी के 'मानस' का है। तेलुगु के इस शैली के प्रबन्धकाव्यों में अपभ्रंश के चरित काव्यों जैसा बाह्य रूप तो दिखाई नहीं पड़ता। फिर भी अतिशय वर्णनात्मकता की अपेक्षा कथा-कथन पर विशेष आग्रह, सर्गबन्धत्व एवं छन्दवैविध्य का सुचारु निर्वाह दिखाई पडते हैं। इनमें हरिवंश, भागवतपुराण एवं महाभारत को इतिवृत्तसंविधान की दृष्टि से पुराण कह सकते हैं, यद्यपि उनमें उत्कृष्ट साहित्यिक सौन्दर्य का समावेश हुआ है। तिक्कनामात्य का 'निर्वचनोत्तररामायण' कंकंटि पापराज का 'उत्तररामायण' एवं 'रंगनाथ रामायण' इस कोटि के प्रख्यात महाकाव्य हैं। तिक्कनामात्य एवं कंकंटि पापराज ने अपने काव्यों को महाकाव्य स्वीकार भी किया है।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

इस वर्ग के महाकाव्यों की प्रधान प्रवृत्ति दृश्य जगत के विविध रूपों, प्रकृति के रमणीय दृश्यों एवम् राजसी वातावरण के विविध उपादानों के वर्णन की उतनी नहीं है, जितनी आख्यान कथन की है। इसका यह अभिप्राय नहीं है कि इन काव्यों में काव्योचित सुन्दर वर्णनों का समावेश नहीं हुआ है। कथाकथन एवम् वस्तु-वर्णन वास्तव में किसी भी प्रबन्धात्मक काव्य के अनिवार्य अंग हैं। कवियों की प्रवृत्ति एवम् दृष्टिकोण के अनुसार किसी महाकाव्य में कथाकथन पर विशेष आग्रह दिखाई पड़ता है तो किसी में वर्णनपक्ष प्रबल हो उठता है। तुलसी में कथा-कौशल की प्रधानता है, जिसका ज्वलन्त प्रमाण यही है कि रामचरितमानस का प्रचार और प्रसार कथा-निर्वाह की सरस पद्धति के कारण अपने मूलाधार ग्रन्थों से भी कई गुना अधिक है। रामचरितमानस की यह प्रवृत्ति पृष्ठभूमि के रूप में विद्यमान अभ्रंपश के 'पउमचरिउ' 'महापुराण' आदि चरितकाव्यों की भी मुख्य प्रवृत्ति है। तेलुगु के 'रंगनाथ रामायण' एवं 'निर्वचनोत्तर रामायण' में भी कवियों की दृष्टि आख्यानपरक रही है। पापराज के 'उत्तररामायण' में युगधर्म के अनुसार वर्णनों का आधिक्य है। फिर भी कथाकथन गौण नहीं है।

शास्त्रीय शैली के महाकाव्य

संस्कृत के कालिदास, अश्वघोष, भारवि, माघ, भट्ट हर्ष आदि के द्वारा विरचित काव्यग्रन्थों के आधार पर भामह, दण्डी, रुद्रट, विश्वनाथ कविराज, विद्यानाथ आदि आचार्यों ने 'महाकाव्य' का लक्षण-निरूपण अपने काव्य-शास्त्रीय ग्रन्थों में किया। परवर्ती कवियों ने उन लक्षणों एवम् लक्ष्यग्रन्थों से प्रभावित होकर महाकाव्य-रचना की। अपने युगानुरूप साहित्यिक वातावरण, अपनी पूर्ववर्ती परम्पराओं एवम् आश्रयदाता-नरेशों की मनोवृत्ति से परिचालित होने के कारण सर्वथा संस्कृत महाकाव्य जैसा रूप देशी भाषाओं में यद्यपि प्राप्त नहीं होता, तथापि मूल चेतना एवम् कवियों का संस्कृत पाण्डित्य तथा रीतिप्रियता के कारण कुछ महाकाव्यों में शास्त्रीय महाकाव्य की विशेषताओं का दृष्टिगत होना स्वाभाविक है। शिल्पविधि की दृष्टि से इन काव्यों के उपजीव्य अपभ्रंश के कथाकाव्य एवम् चरितकाव्य नहीं हैं, प्रत्युत संस्कृत के महाकाव्य हैं। आख्यान शैली के स्थान पर ऐसे महाकाव्यों में वर्णनात्मक शैली के दर्शन होते हैं। कवियों का ध्यान सांगोपांग रूप में कथा के निर्वाह पर केन्द्रित नहीं होता, बल्कि सुन्दर दृश्यों एवम् सुरम्य वस्तु वर्णनों के संयोजन पर लगा रहता है। इतिवृत्त का प्रख्यात या उत्पाद्य स्रोत से ग्रहण किये जाने पर भी कभी-कभी उसका सूत्र इतना क्षीण होता है कि रहीम

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

के शब्दों में उसे कमलनाल के सूत्र के सदृश एवम् प्रेम-पंथ के समान सूक्ष्म कह सकते हैं। कथावस्तु कभी किसी पुराण या इतिहास का एक ऐसा अंशमात्र होता है, जैसे 'शिशुपालवध' और 'पारिजातापहरण।' वर्णनात्मकता के अतिरिक्त अलंकृत प्रौढ़ गंभीर भाषाशैली शास्त्रीय महाकाव्यों की प्रमुख विशेषता है। कवियों के शास्त्र-पाण्डित्य से संबंधित बहुज्ञता की विवृति भी इन काव्यों में होती है। साधारण पाठक वर्ग को लक्षित करके इन काव्यों की रचना नहीं होती। प्रबुद्ध एवम् व्युत्पन्न पाठक गण ही इन महाकाव्यों का रसास्वादन करने के अधकारी हैं।

प्राकृत भाषा में गउडबहो, कुमारपाल चरित, सेतुबन्ध, लीलावती आदि महाकाव्यों को शास्त्रीय वर्ग के अन्तर्गत ही माना जाता है और 'सेतुबन्ध' को तो संस्कृत के धुरन्धर विद्वानों में अतीव प्रतिष्ठा रही है।[1] महाकवि बाण ने हर्षचरित में 'सेतुबन्ध' का नामोल्लेख किया है। तेलुगु में पन्द्रहवीं शताब्दी के श्रीनाथ ने 'सेतुबन्ध' महाकाव्य के प्रणेता के लिए 'साहित्य-पदवी-महाराज्य भद्रासनासीन' विशेषण का प्रयोग करके वन्दना की है।[2] तेलुगु के अधिकांश महाकाव्य शास्त्रीय शैली के हैं। 'स्वारोचिषमनुसंभव', 'रामाभ्युदय' 'वसुचरित्र' आमुक्तमाल्यदा', 'पारिजातापहरण' आदि शास्त्रीय शैली के उत्कृष्ट महा-काव्य हैं। इनमें आद्योपान्त प्रौढ़ गंभीर अलंकृत भाषा शैली का सुन्दर निर्वाह, पुरवर्णन, गजवर्णन, उद्यान वर्णन, सलिलक्रीडावर्णन, विवाह वर्णन, ऋतु वर्णन आदि प्रबन्धोचित वर्णनों का संयोजन, कविसमयों का पालन, काव्यनायिकाओं के द्वारा विरहावस्था में चन्द्रदूषण, मदन, मलयानिल एवम् वसन्त को उपालंभ आदि रूढ़ियों का पालन इन काव्यों को शास्त्रीय कोटि के बना देते हैं। साहित्य-संसार में इनके प्रचलन एवम् प्रसिद्धि का मुख्य कारण इतिवृत्त निर्वहण की अपेक्षा वर्णनात्मकता ही है। कवि कला-कुशलता से प्रत्येक छन्द को सुन्दर बनाने में सचेष्ट थे और इस प्रयत्न में विस्तृत कथाओं का निर्वाह सम्भव नहीं था। फिर भी सुन्दर वस्तु-वर्णनों के साथ कुछ सजीव पात्रों की परिकल्पना एवम् घटनाओं के उचित संविधान का एकान्त अभाव नहीं है।

तेलुगु के साहित्येतिहास में कविवर श्रीनाथ के नाम पर विद्वानों ने श्रीनाथयुग की कल्पना की है। इस युग एवम् युगनेता श्रीनाथ का महत्त्व

---

1. डॉ. नेमिचन्द्र शास्त्री : 'प्राकृत भाषा और साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ. 261-281
2. भीमेश्वरपुराणमु, प्रथम आश्वास, पद्य 7

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

तेलुगु में शास्त्रीय महाकाव्य के अवतरण के लिए उत्तरदायी के रूप में है। श्रीनाथ से पूर्व के तेलुगु काव्य प्राय: पुराणों की अनुसृष्टियाँ थीं। पन्द्रहवीं शताब्दी तक नन्नेचोड़ कविराज कृत 'कुमारसंभव' को छोड़कर 'महाभारत' 'रामायण' 'हरिवंश पुराण', 'मार्कण्डेय पुराण', 'भागवतपुराण' आदि के प्रणयन में कवि लोग तत्पर थे। श्रीनाथ ने 'नैषधीय चरित' का अनुवाद प्रस्तुत करके आगे के कवियों का ध्यान इस विधा की ओर आकर्षित किया और अनन्तर-काल के महाकाव्यों में श्रीनाथ की परम्परा गृहीत हुई है। वास्तव में संस्कृत के काव्यशास्त्र से अनुमोदित प्रथम तेलुगु महाकाव्य 'शृंगार-नैषध' ही है। महा-काव्य का स्वरूप इस कृति में अलंकृत सुन्दर वस्तुवर्णनों, 'धीरोदात्त' नायक के चित्रण एवम् संवाद—चातुर्य तथा प्रौढ़ भाषा-शैली में स्पष्टत: परिलक्षित होता है। फिर भी संस्कृत के नैषधीयचरित का अनुवाद होने के कारण 'शृंगारनैषध' को स्वतन्त्र महाकाव्य का श्रेय दिया नहीं जाता। अल्लसानि पेद्दनार्य, नंदि तिम्मनार्य, रामराजभूषण आदि के महाकाव्यों पर 'शृंगारनैषध' का अत्यन्त स्पष्ट प्रभाव है।

केशव की 'रामचन्द्रिका' शास्त्रीय महाकाव्य की कोटि में ही गणनीय है। "हिन्दी में विशुद्ध साहित्यिक महाकाव्य लिखने का प्रयास केशवदास की रामचन्द्रिका में मिलता है।[1] 'जायसी और तुलसी के विपरीत केशव के महा-काव्य में छन्दो-वैविध्य की यह परम्परा अपभ्रंश के 'सुदर्शन चरिउ' एवम् 'जिनदत्त चरिउ' में लक्षित की जाती है। डॉ. रामसिंह तोमर का अनुमान है कि रामचन्द्रिका के रचयिता के सापने अवश्य ही विविध तुकान्त अपभ्रंश के छन्दों के प्रयोग से युक्त कुछ इस प्रकार की कृतियाँ रही होंगी।[2] अपभ्रंश की कृतियों से केशव के महाकाव्य का साम्य एकमात्र छन्दोवैविध्य ही है। रचना-शैली, कथावस्तु की योजना एवम् अलंकृत वस्तुवर्णनों की दृष्टि से राम-चन्द्रिका पर कालिदास, माघ, बाण, आदि का ही प्रभाव है। तेलुगु के प्रमुख महाकाव्यों में छन्दोवैविध्य तो है, पर यह विशेषता केशवदास की 'राम-चन्द्रिका' में ही पराकाष्ठा तक पहुँच गई, क्योंकि केशव की यह प्रतिज्ञा ही थी 'रामचन्द्र की चन्द्रिका बर्णत हौं बहुछन्द।[3] केशव के द्वारा प्रयुक्त बहुछन्दों में मालिनी, वसन्ततिलका, भुजंगप्रयात आदि संस्कृत के वर्णवृत हैं और तेलुगु के कुछ महाकाव्यों में इन छन्दों का प्रयोग हुआ है। अपभ्रंश एवं हिन्दी

---

1. प्राकृत और अपभ्रंश साहित्य तथा उनका हिन्दी साहित्य पर प्रभाव, पृ. 235
2. वही, पृ. 235
3. रामचन्द्रिका—1—21

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

की प्रवृत्ति के अनुसार वर्णवृत्तों का प्रयोग हिन्दी भाषा में सतुकान्त रूप में किया गया है और तेलुगु के अपने देशी छन्दों के लिए भी सतुकान्तता (अन्त्यानुप्रास) अनिवार्य नहीं है। फिर भी संगीतात्मकता का समावेश तेलुगु के कवियों ने यतिनियम एवम् प्रासनियम के पालन के रूप में किया है। तेलुगु के यतिनियम एवम् प्रासनियम संस्कृत एवम् हिन्दी के छन्दों से पृथक् तथा विशिष्ट हैं, जिनका विवेचन यथास्थान किया जायगा।

ऐतिहासिक शैली के महाकाव्य

ऐतिहासिक इतिवृत्त को ग्रहण करके भी शास्त्रीय शैली में अलंकृत महाकाव्यों की रचना संस्कृत एवं देशी भाषाओं के कवियों ने की है। किन्तु मूलस्रोत के अलावा रचना-विधान के भी ऐतिहासिक होने पर ही किसी भी काव्य को ऐतिहासिक शैली का काव्य कहा जा सकता है। इस प्रकार के काव्यों में ऐतिहासिक घटनाओं एवं वंशपरम्परा का क्रमिक वर्णन और नायक के वीरतापूर्ण कार्यों का वर्णन मुख्यत: किये जाते हैं। कवि-कल्पना-प्रसूत घटनाओं एवं पात्रों का समावेश भी इस वर्ग के काव्यों में पाया जाता है। इन काव्यों का उद्देश्य आश्रयदाता नरेशों की प्रशस्ति करना है। चरितनायकों की प्रशस्ति के हेतु नायक वंश की परम्परा सूर्य, चन्द्र, अग्नि आदि से सम्बद्ध की जाती है और अतिशयोक्तिपूर्ण काल्पनिक एवं अतिप्राकृत घटनाओं का भी समावेश प्राय: रहता है। इस प्रकार इस वर्ग के महाकाव्यों का शिल्प विधान आख्यान शैली के पौराणिक महाकाव्यों एवं शास्त्रीय महाकाव्यों की शिल्प-विधि से भिन्न होता है। संस्कृत में कल्हण की 'राजतरंगिनी' ऐतिहासिक शैली का महाकाव्य है। 'राजतरंगिणी' के आठों तरंगों में काश्मीर का इतिहास प्राचीनकाल से बारहवीं शताब्दी तक काव्यात्मक माध्यम से प्रस्तुत किया गया। आचार्य बलदेव उपाध्याय के अनुसार 'राजतरंगिणी' काश्मीर के राजनैतिक ऐतिहासिक, भौगोलिक, विवरण, सामाजिक व्यवस्था, साहित्यिक समृद्धि तथा आर्थिक दशा को जानने के लिए सचमुच एक विश्वकोश है।[1] राजतरंगिणी के अतिरिक्त 'हम्मीर महाकाव्य' को भी ऐतिहासिक शैली का महाकाव्य माना जाता है।

हिन्दी के 'हम्मीर रासो', 'राजविलास', 'हम्मीर हठ', 'छत्रप्रकाश' और 'सुजान चरित्र' ऐतिहासिक शैली के महाकाव्य हैं। तेलुगु में सिद्धेश्वरचरित्र, कृष्णरायविजयमु, रघुनाथाभ्युदयमु इसी प्रकार के महाकाव्य हैं। इन काव्यों

---

1. संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ. 265

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

में कवियों की दृष्टि कथावस्तु का नाटकीय संविधान, विभाव अनुभाव एवं संचारीभावों से परिपुष्ट रस की योजना, आद्योपान्त नायक की विविध मनोदशाओं का चित्रण, सर्गों की अनुपातयुक्त सुस्थापना आदि की ओर उतनी नहीं, जितनी कतिपय ऐतिहासिक घटनाओं का वर्णन एवं अपने चरितनायक के अतिशयोक्तिपूर्ण कार्य-कलापों के प्रस्तुतीकरण में है। यही कारण है कि इन काव्यों का महत्त्व साहित्यिक एवं ऐतिहासिक दोनों दृष्टियों से है। इन काव्यों में कुछ के चरितनायक प्रणेता कवियों के समकालीन होने के कारण उनका ऐतिहासिक महत्त्व कम नहीं है। इसके अलावा ऐतिहासिक घटनाओं के साथ पौराणिक एवं काल्पनिक घटनाओं का समावेश कर देने से इन कवियों की प्रतिभा के प्रदर्शन के लिए यथेष्ठ अवकाश भी प्राप्त हो सका है। 'कृष्णराय विजयमु' नामक तेलुगु के महाकाव्य में स्वामी विद्यारण्य के सम्मुख भगवती लक्ष्मी के साक्षात्कार एवं 'सिद्धेश्वरचरित' में महादेवजी का कैलास पर्वत से निकलकर वरंगल के समीप हनुमाद्रि पर अवतरित होना ऐसे ही पौराणिक एवं काल्पनिक प्रसंग हैं, जिनमें कवियों की वृत्ति खूब रमी है। हिन्दी के 'हम्मीररासो' में सृष्टि और मानवों की उत्पत्ति चन्द्र तथा सूर्यवंश का वर्णन ऐसे ही प्रसंग हैं। इन काव्यों में नायकों के पूर्वपुरुषों के उल्लेखों पर अनुश्रुतियों एवं चारणपरम्पराओं का अधिक प्रभाव है। इन विशेषताओं से बढ़कर इन काव्यों का जो प्राणभूत तत्त्व है, वह वीरचरित की अवतारणा है। छत्रसाल, हम्मीरदेव, सुजानसिंह, प्रतापरुद्रदेव, कृष्णदेवराय, रघुनाथ भूपाल आदि महिमाशाली वीरपुरुषों के चरित का चित्रण बड़े ही उज्ज्वल रूप में इन काव्यों में सम्पन्न हुआ है। इसी आधार पर इन ऐतिहासिक काव्यों को साहित्यिक दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण तथा महाकाव्य की कोटि में गणनीय माना जा सकता है।

प्रतीकात्मक प्रेमाख्यान शैली के महाकाव्य

हिन्दी के सूफी प्रेमाख्यानक काव्य अपनी विशिष्ट रचना-शैली, आध्यात्मिक अभिव्यंजना, ठेठ अवधी का माधुर्य, सुन्दर भाव-व्यंजना आदि के कारण एक पृथक् वर्ग के अन्तर्गत ही विचारणीय हैं। इन काव्यों पर फारसी की मसनवियों, अपभ्रंश के कथाकाव्यों एवं भारत की लोकगाथाओं का समवेत प्रभाव पड़ा है। इन काव्यों की माला में जायसी का पद्मावत सुमेरु के रूप में लब्धप्रतिष्ठ है। मधुमालती, चित्रावती, मृगावती, इन्द्रावती, पुहुपावती आदि कुछ प्रेमाख्यानक काव्य हैं और अपने समय में प्रचलित कतिपय प्रेम-कथाओं का उल्लेख जायसी ने पद्मावत के अन्तर्गत किया है।[1] जायसी को छोड़कर

1. जायसी ग्रन्थावली की भूमिका, पृ. 3

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

अन्य प्राय: सभी कवियों के द्वारा गृहीत इतिवृत्त काल्पनिक हैं और शुक्लजी प्रभृति बहुत से विद्वानों ने पद्मावत के उत्तरार्ध को ऐतिहासिक स्वीकार भी किया है।[1] डॉ. सिद्धनाथ पाण्डेय अपने अप्रकाशित शोध-प्रबन्ध में जायसी के काव्य में संयोजित इतिहास के पुट को नगण्य मानकर पद्मावत के इतिवृत्त को लोककथा पर आधारित और इस रूप में काल्पनिक मानने के पक्ष में हैं—'पूर्वार्द्ध तो काल्पनिक है ही, किन्तु वह कल्पना भी साधार है। उस कल्पना का आधार जनसामान्य में प्रचलित पद्मावती एवं हीरामन सुआ की कहानी है। साथ ही उत्तरार्द्ध जिसमें जान-बूझकर ऐतिहासिक छींटे डाले गये हैं, वह भी काल्पनिक हैं। उसमें दो-एक ऐतिहासिक नामों के अतिरिक्त इतिहास का निशान तक पा सकना दु:साध्य है।'[2] यद्यपि बहुत से कवियों ने हिन्दी में भारतीय एवं सूफी पद्धति से विभिन्न प्रेमकथाओं को काव्यात्मक माध्यम से प्रस्तुत किया है, फिर भी काव्य सौष्ठव से रहित तथा जीवन के गम्भीर पक्ष एवं आध्यात्मिक अभिव्यंजनाविहीन साधारण काव्यों को महाकाव्य माना नहीं जा सकता। यद्यपि शिल्पविधान की दृष्टि से प्राय: सभी सूफी प्रेमकाव्यों का ढाँचा एक जैसा ही है, कवियों की प्रतिभा के अनुसार काव्यों के साहित्यिक स्तर में अन्तर दृष्टिगोचर होता है।

कवियों की दृष्टि एवम् परम्परागत तत्त्व के अनुसार इन काव्यों में वर्णनात्मक शैली को नहीं, बल्कि सर्वसाधारण के लिए बोधगम्य सरल स्वाभाविक भाषा एवम् आख्यान शैली को प्रश्रय दिया गया है। यह आख्यान शैली अपभ्रंश के कथाकाव्यों की शैली है। कथानक के बीच में पड़नेवाले नगर, उद्यान, सरोवर, समुद्र, बिवाह आदि के सुन्दर वर्णन इन काव्यों में अवश्य प्राप्त होते हैं। फिर भी कवियों का ध्यान कथानक पर ही विशेषरूप से केन्द्रित रहा है। कहने का यही आशय है कि समग्ररूप से देखा जाय तो इन काव्यों की प्रतिपादन शैली संस्कृत के माघ तथा श्रीहर्ष के काव्यों की भाँति अतिशय अलंकृत एवम् वर्णनात्मक नहीं, प्रत्युत प्रेम की सुन्दर व्यंजना के साथ आध्यात्मिक सन्देश का भी वहन करने में सक्षम आख्यान शैली है।

जायसी आदि सूफियों के प्रेमकाव्यों में प्रतीकतव का सुन्दर समावेश दृष्टिगत होता है। लौकिक प्रमगाथा के द्वारा आध्यात्मिक प्रेमव्यंजना की

---

1. जायसी ग्रन्थावली की भूमिका, पृ. 21—26
2. अपभ्रंश के आख्यानक काव्य और उनका हिन्दी के आख्यानक काव्यों पर प्रभाव, पृ. 79

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

दृष्टि से सूफी कवियों ने इस प्रतीकविधान का अवलम्ब ग्रहण किया है। कवि के द्वारा प्रतीकों का मात्र विवरण ही पर्याप्त नहीं, बल्कि काव्य के अन्तर्गत भी प्रतीकों का निर्वाह सम्पन्न होने पर ही प्रतीकविधान सार्थक हो जाता है। रूपक के द्वारा द्वयर्थक कथाविधान पद्मावत की प्रमुख विशेषता है। जायसी के पूर्व ऐसे प्रयोग कम थे। अपभ्रंश भाषा में सोमप्रभ नामक एक जैन कवि द्वारा रचित सन्दर्भों में इस प्रकार का प्रयास लक्षित किया जाता है। साथ ही यह भी माना जाता है कि इतने बड़े पैमाने पर जायसी से पूर्व ऐसी रचनाएँ उपलब्ध नहीं होतीं।[1] जायसी के बाद सूफी कवियों में इस प्रतीक-विधान की प्रवृत्ति को देखा जा सकता है। नूर मुहम्मद नामक कवि ने 'अनुराग बाँसुरी' काव्य में शरीर, जीवात्मा, मनोवृत्तियों आदि को आधार बनाकर काव्य में रूपकतत्त्व का समावेश किया है। प्रतीकविधान या रूपकतत्त्व के भी भिन्न प्रकार होते हैं। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से मानव की भिन्न वृत्तियों एवम् मनोविकारों की काव्यात्मक रूपकल्पना और उनका विभिन्न काव्य-विधाओं में निर्वाह आधुनिककालीन प्रवृत्ति है। प्रसाद की 'कामायनी' में प्रतीक शैली का सफल निर्वाह हुआ है। सूफी काव्यों में प्रतीकविधान एवं कामायनी के रूपकत्व में पर्याप्त अन्तर भी है और इस अन्तर का मूलकारण मध्यकालीन एवम् आधुनिक साहित्य-चेतना में अवस्थित पार्थक्य में है। अस्तु।

आचार्य शुक्ल के अनुसार 'पद्मावत' समासोक्ति की पद्धति का काव्य है।[2] शुक्लजी ने अन्योक्ति एवं समासोक्ति की व्याख्या की है। इस काव्य में सर्वत्र आध्यात्मिक अर्थ की प्रतीति नहीं होने के कारण और प्रबन्धकाव्य की दृष्टि से साधनापक्ष की व्यंजना अप्रस्तुत होने की दृष्टि से पद्मावत को समासोक्ति काव्य माना गया है। डॉ. गोविन्द त्रिगुणायत के शब्दों में—"जायसी ने अपनी कथा में स्थान-स्थान पर आध्यात्मिक, दार्शनिक एवं साधनात्मक संकेत प्रस्तुत करके सफल व सरस समासोक्तियों की योजना की है। ये समासोक्तियाँ कथा के व्यष्टि रूप में ही पाई जाती हैं। समष्टि रूप में तो सम्पूर्ण कथा अन्योक्ति ही है।"[3] पद्मावतकार ने काव्य के अन्त में इन प्रतीकों को स्पष्ट भी किया है।

---

1. डॉ. निर्मला जैन : आधुनिक हिन्दी काव्य में रूप-विधाएँ, पृ. 38
2. जायसी ग्रन्थावली की भूमिका, पृ. 55
3. जायसी का पद्मावत : काव्य और दर्शन, पृ. 73

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

तेलुगु के साहित्य में सूफी दार्शनिक विचार धारा के काव्य उपलब्ध नहीं होते हैं। प्रतीकात्मक प्रेमाख्यान शैली के महाकाव्यों का इस क्षेत्र में अभाव ही समझना चाहिए। पहले स्पष्ट किया जा चुका है कि इन भाषाक्षेत्रों में विद्यमान राजनैतिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियाँ ही एक भाषा में इस शैली के महाकाव्यों के सद्भाव एवं दूसरे क्षेत्र में उनके अभाव के लिए उत्तरदायी हैं। वास्तव में प्रतीकशैली के दर्शन हिन्दी से पूर्व संस्कृत साहित्य के प्रबोधचन्द्रोदय एवं उस परम्परा में रचित अन्य कृतियों में होते हैं। ये कृतियाँ महाकाव्य जैसे श्रव्यकाव्य नहीं, बल्कि दृश्यकाव्य के अन्तर्गत इनका स्थान है। संस्कृत में कृष्णमिश्र के 'प्रबोधचन्द्रोदय' के अतिरिक्त जैन कवि यशपाल का 'मोह-राजपराजय', दाक्षिणात्यों में वेदान्तदेशिक का 'संकल्प सूर्योदय' एवं आनन्दराय का 'विद्या परिणयन' तथा 'जीवानन्द' आदि नाटकों में प्रतीक शैली का विधान है। हिन्दी में आचार्य केशव ने 'विज्ञान गीता' के रूप में प्रबोधचन्द्रोदय का ही अनुवाद किया है। आचार्य बलदेव उपाध्याय के अनुसार तुलसी के अयोध्याकाण्ड में पंचवटी के वर्णन में निबद्ध आध्यात्मिक रूपक में 'प्रबोधचन्द्रोदय' के पात्रों को भी अपनाया गया है।[1] तेलुगु में 'प्रबोधचन्द्रोय' का अनुवाद श्रव्यकाव्य के रूप में हुआ है। इसके अतिरिक्त 'सीतारामाजनेयसंवाद' नामक दार्शनिक काव्य में राम को परमात्मा, सीता को माया एवं हनुमान को जीवात्मा के रूप में वर्णित किया गया है। परन्तु तेलुगु के 'प्रबोधचन्द्रोदय', 'सीतारामांजनेयसवाद' और केशव की 'विज्ञान गीता' में काव्यात्मक पक्ष सबल नहीं है और इन काव्यों के पात्र अमूर्त पदार्थों के प्रतीक मात्र होते हैं जिनकी भौतिक जगत में कोई स्वतन्त्र सत्ता नहीं होती। इसके विपरीत सूफी काव्यों के पात्र आध्यात्मिक पक्ष की व्यंजना करते हुए भी लौकिक जगत के सभी लक्षणों से सम्पन्न हैं और उनके कार्य-कलापों द्वारा विविध भावों की मार्मिक व्यजना कवियों ने की है। इस प्रकार संस्कृत के प्रबोधचन्द्रोदय एवं उसके प्रभाव से तेलुगु में रचित प्रतीक काव्यों तथा केशव की 'विज्ञानगीता' का साम्य हिन्दी के प्रेमाख्यान शैली के महाकाव्यों से साहित्यिक सौष्ठव एवं शिल्प-विधान की दृष्टि से बिल्कुल नहीं है। तेलुगु साहित्य में प्रयुक्त प्रतीक शैली के काव्यों की स्थिति को दर्शाने की दृष्टि से ही उनका विवेचव यहाँ पर किया गया है। स्पष्ट है कि प्रेमाख्यान शैली के प्रतीकात्मक महाकाव्य हिन्दी में ही उपलब्ध होते हैं और

1. संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ. 592

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

सूफी सन्तों के साधनात्मक दृष्टिकोण एवं लौकिक प्रेम-गाथाओं के माध्यम से आध्यात्मिक तथ्यों की व्यंजना के उद्देश्य का ही परिणाम यह काव्य-प्रकार है। तेलुगु साहित्य के क्षेत्र में सूफी दार्शनिक विचारधारा के अभाव के कारण इस काव्य-प्रकार का भी अभाव है।

क्षेत्रमहिमा सम्बन्धी महाकाव्य

तेलुगु साहित्य में कुछ ऐसे महाकाव्य उपलब्ध होते हैं जिनकी रचना प्रबन्धात्मक है, जिनमें अलंकृत रमणीय वस्तुवर्णनों का बाहुल्य है, जिनकी प्रौढ़ साहित्यिक भाषाशैली के कारण रचनाकाल से लेकर अद्यावधि साहित्य-जगत में प्रतिष्ठा रही है और जिनके कथाशरीर में सजीव पात्रों की परिकल्पना भी दृष्टिगत होती है, परन्तु जिनका लक्ष्य किसी क्षेत्र महिमा का प्रतिपादन रहा है। कवियों के भक्तिपरक दृष्टिकोण एवं मूल उद्देश्य के कारण इन काव्यों में विविध उपाख्यानों की योजना विशिष्ट देवता और उस देवता के आवास-स्थल के उत्कर्ष-प्रतिपादन के रूप में किया गया है। वक्ता-श्रोता-योजना के द्वारा इन भिन्न उपाख्यानों में एकसूत्रता का निर्वाह भी किया गया है। काव्यादि में इष्टदेवता की वन्दना एवं वस्तुनिर्देश के रूप में मंगलाचरण, गुरुवन्दना, सुकविजनों की वन्दना, कुकवियों की निन्दा, आश्रयदाता या भगवान की प्रशंसा, पुरवर्णन, ऋतुवर्णन, आश्वासों में इतिवृत्त का सर्गबन्धत्व आदि का बाह्य रूप अन्य वर्गों के महाकाव्यों के सदृश ही है। इन काव्यों में निबद्ध इतिवृत्त के नायक के रूप में उस स्थल-विशेष के देवता, जैसे 'पाण्डुरंग महात्म्य' में पाण्डुरंग भगवान और 'श्रीकालहस्ति माहात्म्य' में श्रीकालहस्तीश्वर को माना जा सकता है।

भक्ति-महिमा एवं क्षेत्र-महिमा के प्रतिपादन के अनुरूप इस वर्ग के महाकाव्यों में पौराणिक तत्त्वों का समावेश भी हो गया है। महर्षियों एवं भक्तों की तपस्या और प्रार्थना से भगवान का विशिष्ट स्थल में अवतरित होना, आकाशवाणी, देवताओं के द्वारा पुष्पवृष्टि, कुछ भक्तों के भवान्तरों के कथन, भगवान के प्रत्यक्ष होने पर भक्तों के द्वारा किए गए स्तोत्र आदि में पौराणिक तत्त्व दिखायी पड़ते हैं। वास्तव में पौराणिक तत्त्वों का न्यूनाधिक मात्रा में समावेश अधिकांश भारतीय काव्यों में दृष्टिगत होता है, क्योंकि मध्यकाल तक के साहित्य की प्रमुख प्रेरणा धार्मिक साधना रही है। रामचरित-मानस में भी विभिन्न अवसरों पर देवताओं के द्वारा पुष्प-वृष्टि, माहात्म्य और स्तोत्रों का संयोजन लक्षित होता है। इस प्रकार पौराणिक तत्त्वों के समावेश के बावजूद वर्णन-विधान, आलंकारिक भाषाशैली और प्रसंगानुसार निबद्ध

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

रमणीय वस्तुवर्णनों के आधार पर कह सकते हैं कि इन काव्यों का प्रणयन उत्कृष्ट प्रतिभासम्पन्न कवियों के द्वारा महाकाव्य-रचना की प्रवृत्ति के वशीभूत होकर हुआ है। इस आधार पर इस वर्ग के काव्यों को महाकाव्य मानना समीचीन है।

तेलुगु के साहित्य में क्षेत्रमहिमा प्रतिपादक महाकाव्यों का प्रणयन चौदहवीं शताब्दी से दिखायी पड़ता है। महाकवि एर्राप्रेगड को 'प्रबन्ध-परमेश्वर' की उपाधि प्राप्त थी और कतिपय विद्वानों के अभिमत में 'नृसिंहपुराण' नामक क्षेत्रमहिमा-प्रतिपादक महाकाव्य के प्रणयन से ही यह उपाधि इस कवि को प्राप्त थी। एर्राप्रेगड से पूर्व एवं समकालीन साहित्यिक कृतियों में रूपविधान की दृष्टि से 'नृसिंहपुराण' का महत्त्वपूर्ण स्थान है। तेलुगु की महाकाव्य-विधा के विकासक्रम में 'नृसिंहपुराण' एवं उसके कर्ता का योगदान स्वीकार किया जाता है। पुराणों के आख्यान-कथन की शैली से भिन्न वर्णनात्मक शैली के स्थापनाचार्य के रूप में आन्ध्र साहित्य में कविवर एर्राप्रेगड को आचार्य लक्ष्मीकान्तम्‌जी ने श्रेय दिया है।[1] वास्तव में एर्राप्रेगड की इस कृति में क्षीरसमुद्र, वैकुण्ठ, अप्सराओं के पुष्पापचय, संगीत आदि के सुन्दर वर्णन हैं। एर्राप्रेगड के उपरान्त पन्द्रहवीं शताब्दी के श्रीनाथ के द्वारा विरचित 'काशीखण्ड' एवं 'भीमेश्वरपुराण' में क्षेत्रमाहात्म्य प्रतिपादक काव्य-रचना के दर्शन होते हैं। 16वीं शताब्दी के श्रीकृष्ण देवराय के युग में रचित 'पाण्डुरंगमाहात्म्य' एवं 'श्रीकालहस्तिमाहात्म्य' में क्षेत्रमहिमा-प्रतिपादक महा-काव्य का सर्वाधिक परिणत रूप दृष्टिगत होता है। इन काव्यों में वस्तु सम्बन्धी एकता को विविध उपाख्यानों के गुम्फन से यद्यपि क्षति पहुँची है तथापि अलंकृत साहित्यिक शैली एवं हृदयावर्जक वर्णनविधान के कारण इनका स्थान महत्त्वपूर्ण है।

हिन्दी साहित्य में साहित्यिक सौष्ठव से युक्त क्षेत्रमाहात्म्यपरक महा-काव्यों की कोई धारा दिखायी नहीं पड़ती। इसका कदाचित् यही कारण हो सकता है कि हिन्दी के प्रतिभाशाली कवियों की दृष्टि शृंगारी मुक्तकों की रचना में, संस्कृत के काव्यशास्त्रीय ग्रन्थों को आधार बनाकर रसमय उक्तियों का विशाल भण्डार उपस्थित करने में, भक्ति की अलौकिक रसवाहिनी में तन्मय होकर हजारों की संख्या में विनयपद एवं लीलावर्णन के पद गाने में, स्वान्तः सुखाय रामकथा का भव्य चरित रचने में विशेष रूप से रमती थी।

1. गौतमव्यासमुलु, पृ. 20

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

फिर भी समग्ररूप से इस प्रकार की रचनाओं के अनुपलब्ध होने पर भी तुलसी के 'रामचरितमानस' में उनके भक्तिपरक व्यक्तित्व तथा पौराणिक स्रोतों से इतिवृत्त-ग्रहण के कारण इन काव्यग्रन्थों की कतिपय प्रवृत्तियाँ दिखायी पड़ती हैं। केशव, जायसी, गोरेलाल आदि के काव्यों में पौराणिक तत्व की न्यूनता के कारण इन विशेषताओं का समावेश नहीं है।

बहुअर्थक महाकाव्य

संस्कृत साहित्य में पाण्डित्य-प्रदर्शन एवं श्लेष अलंकार का संपूर्ण काव्य में निर्वाह करने की प्रवृत्ति के फलस्वरूप द्विसन्धान और बहुअर्थक महाकाव्यों का प्रणयन किया गया है। जायसी आदि के काव्यों में जहाँ-जहाँ प्रतीक-विधान का निर्वाह हुआ है, वहाँ प्रस्तुत पक्ष वाच्य एवं अप्रस्तुत पक्ष को व्यंग्य मान सकते हैं। इसके विपरीत श्लेष-काव्यों में वर्णित दोनों अथवा दो से अधिक अर्थ अभिधावृत्ति से ही प्रतीत होते हैं। 'भट्टि काव्य' में एक पक्ष में रामकथा का वर्णन तथा दूसरे पक्ष में व्याकरण के नियमों का प्रतिपादन किया गया है। जैनाचार्य हेमचन्द्र के 'कुमारपालचरित' में राजा कुमारपाल के जीवनवृत्त के साथ व्याकरणिक नियमों का भी निर्वाह हुआ है। व्याकरण के प्रखर आचार्यों की रचनाएँ होने के कारण इन काव्यों का शास्त्रपक्ष कवित्व पक्ष की अपेक्षा प्रबल है। इसीलिए इनको शास्त्रकाव्य कहा जाता है। काव्यशास्त्रीय मान्यता के अनुसार शास्त्रकवि का स्थान कवित्व-वैभव की दृष्टि से ऊँचा नहीं है। शास्त्रकाव्यों से भिन्न, फिर भी भिन्न इतिवृत्तों का एक साथ निर्वाह करनेवाले बहुअर्थक महाकाव्य संस्कृत में 'राघवपाण्डवीय', 'राधानैषधीय', 'पार्वतीरुक्मिणीय' आदि हैं। कुछ संस्कृत कवियों ने सात से अधिक अर्थों का निर्वाह अपने काव्यों में किया था। एक ही कथा के निर्वाह में कवि को काव्य-कला एवं भाव-व्यंजना के लिए जो अच्छा अवकाश रहता है, वह श्लेष के बल पर विभिन्न अर्थों का, समूचे काव्य में निर्वहण करने में रह नहीं सकता। क्योंकि कवि का ध्यान हमेशा विभिन्न अर्थों को प्रकट करने में समर्थ शब्दावली के चयन पर केन्द्रित रहता है। इस प्रवृत्ति का घातक प्रभाव कथानक के समुचित निर्वाह एवं मार्मिक प्रसंगों के चयन पर पड़ता है। इस दृष्टि से बहुअर्थक महाकाव्य अन्य वर्गों के महाकाव्यों की तुलना में कभी भी श्रेष्ठ नहीं हो सकते। महाकाव्य की एक शैली-विशेष के रूप में ही इनका महत्त्व है। किन्तु यहाँ पर यह स्मरणीय है कि दो भिन्न कथाओं का निर्वाह करते हुए भी दोनों कथाओं के लिए समान ऋतुवर्णन, सलिल-क्रीड़ावर्णन, विवाह-वर्णन आदि अष्टादश वर्णनों का समावेश कविगण अपने काव्यों के अन्तर्गत करते हैं और

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

इन वर्णनों में दो भिन्न अर्थों की अनिवार्य प्रतीति का बन्धन नहीं रहता। वास्तव में इन वर्णनों के माध्यम से ही कवियों की सरसता, भावुकता एवं काव्य प्रतिभा का परिचय इन महाकाव्यों में हमें प्राप्त होता है।

तेलुगु साहित्य में उपलब्ध बहुअर्थक महाकाव्यों में सबसे प्रथम, कालक्रम की दृष्टि से पिंगलि सूरनार्य का 'राघवपाण्डवीय' है। इससे पूर्व भीम कवि से विरचित 'राघवपाण्डवीय' का उल्लेख तो मिलता है, परन्तु वह कृति अनुपलब्ध है। अपने समय में (16 वीं शताब्दी) भी इस कृति के अनुपलब्ध होने का उल्लेख सूरनार्य ने किया है।[1] सूरनार्य को 'राघवपाण्डवीय' की रचना पर बड़ा गर्व रहा है, इस कृति का उल्लेख उन्होंने अपने अन्य काव्यों में किया है।[2] आश्रयदाता के मुंह से सूरनार्य की यह गर्वोक्ति है कि–"भाषाकाव्य में रामकथा एवं महाभारत कथा के निर्वाह में सूरनार्य के सिवा दक्ष कौन है?"[3] संस्कृत से भिन्न देश भाषा के लिए 'भाषा' शब्द का प्रयोग हिन्दी एवं तेलुगु के कवियों की समान प्रवृत्ति है। सूरनार्य की गर्वोक्ति उनके प्रगाढ़ आत्म-विश्वास एवं वास्तविकता पर आधारित है। संस्कृत भाषा में विभिन्न अर्थों के द्योतन की शक्ति सहज रूप से है, किन्तु देशी भाषाओं में वह शक्ति उस मात्रा में नहीं है। इसलिए संस्कृत भाषा में द्विसन्धान काव्य लिखने के कवि की अपेक्षा हिन्दी या तेलुगु में द्विअर्थक काव्य-प्रणेता को ही श्रेय देना समीचीन है। संस्कृत की तत्सम शब्दावली के अतिरिक्त तेलुगु शब्दों में भी दो विभिन्न अर्थों की विवृति सूरनार्य की समर्थता का ज्वलन्त प्रमाण है। तेलुगु साहित्य में इस प्रकार के काव्यों की परम्परा के लिए मूल पुरुष के रूप में सूरनार्य का महत्त्व अक्षुण्ण है। सूरनार्य के उपरान्त रामराजभूषण के द्वारा प्रणीत 'हरिश्चन्द्रनलोपाख्यान' की प्रशस्ति साहित्य-जगत में है।

हिन्दी में बहुअर्थक महाकाव्यों की धारा दिखायी नहीं पड़ती। सम्भवतः मध्यकालीन कवियों की दृष्टि इस ओर नहीं गई होगी। तुलसी सूर जैसे भक्ति तन्मय रीतिमुक्त कवियों की प्रवृत्ति इस चमत्कार-प्रधान काव्यरचना में मग्न नहीं हो सकती। रीतिप्रिय कवियों के द्वारा इस प्रकार की काव्यरचना सम्भव थी, परन्तु उनका ध्यान इस ओर गया नहीं था।

---

1. राघवपांडवीयमु, प्रथम आश्वास–11
2. कलापूर्णोदय 1–14, प्रभावती प्रद्युम्नमु 1–6
3. राघवपांडवीयमु–1–10

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

देशज–तद्भव शैली के महाकाव्य

तेलुगु के साहित्य में तत्सम शब्दावली का नितान्त बहिष्कार करके पूरे काव्य की रचना देशज एवम् तद्भव शब्दों में करने के कुछ प्रयास लक्षित होते हैं। तेलुगु के अधिकांश काव्य-ग्रन्थों की भाषा-शैली तत्सम शब्दबहुला है। तत्सम शब्दों का बाहुल्य इस मात्रा तक है कि काव्यग्रन्थों के सुष्ठु अध्ययन से कोई भी व्यक्ति, संस्कृत भाषा की शब्दराशि पर भी अधिकार प्राप्त कर सकता है। कवियों का प्रौढ़ संस्कृत पांडित्य, संस्कृत में भी काव्य-रचना की दक्षता और काव्यों के लिए स्वीकृत पौराणिक धार्मिक इतिवृत्त तेलुगु की संस्कृत गर्भित काव्यशैली के मुख्य कारण हैं। इस वातावरण में नवीनता-प्रदर्शन एवम् नयी दिशा में काव्य-रसिकों का ध्यान आकर्षित करने के रूप में देशज़ तद्भव शैली के निबद्ध काव्यों की रचना हुई। इन निबद्ध काव्यों में सर्गबन्धत्व, काव्य के आरम्भ में मंगलाचरण, सुकवि जनों की वन्दना, आश्रयदाता की प्रशंसा, रामायण, महाभारत आदि से स्वीकृत पौराणिक इतिवृत्त आदि का बाह्य रूप एवम् आन्तरिक स्वर अन्य वर्गों के महाकाव्यों के समान ही हैं। केवल भाषाशैली संस्कृत शब्दरहित होने के कारण भिन्न है। वास्तव में संस्कृत के तत्सम शब्द हमारे विचार, अभिव्यक्ति एवम् अनुभूति के अनिवार्य अंग बन गये हैं। उनके प्रयोग से विमुख काव्य में स्वाभाविकता का समावेश नहीं होता और इस हेतु भाषा-सौन्दर्य भी कृत्रिमता से नष्ट हो जाता है। आचार्य लक्ष्मीकान्यम् जी ने इस स्थिति को पहचाना हैं।[1]

16 वीं शताब्दी के पोन्नगंटि तेलगन्ना नामक कवि ने महाभारत के आधार पर 'ययातिचरित' की रचना इस शैली में की। तेलगन्ना के काव्य के उपरान्त कूचिमंचि तिम्मकवि विरचित 'अच्च तेलुगु रामायण' एवम् 'नीला सुन्दरी परिणय' इस शैली के प्रसिद्ध काव्य हैं। बीसवीं शताब्दी में इस शैली के काव्यों की धारा अजस्र रूप से प्रवाहित है। परन्तु आधुनिककाल में रचित व्रजभाषा काव्यों के समान उनको प्रसिद्धि प्राप्त नहीं है। हिन्दी के कवियों ने इस प्रकार की कृत्रिम शैली का प्रयोग पूरे काव्य में नहीं किया। चमत्कार प्रदर्शन एवम् रीतिप्रियता की उनकी प्रवृत्ति 'खटमल बाईसी' जैसी रचनाओं एवं शब्दनाद के अनावश्यक प्रयासों में द्रष्टव्य है।

पद्यबन्ध एवम् मिश्रबन्ध

काव्य-रचना के लिए प्रयुक्त गद्य, पद्य और दोनों के मिश्रण के आधार

1. गौतम व्यासमुलु, पृ, 47

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

पर गद्य-काव्य, पद्यकाव्य एवम् मिश्रकाव्य का वर्गीकरण हो सकता है। मध्यकाल तक की साहित्य-सर्जना में गद्य की अपेक्षा पद्य को ही सर्वाधिक श्रेय एवम् कवियों की प्रतिभा का वरद हस्त प्राप्त था। यद्यपि काव्य-जगत् में गद्य का नितान्त अभाव नहीं था, प्राधान्य एवम् प्राचुर्य की दृष्टि से मध्यकाल तक के साहित्य को तेलुगु-हिन्दी के विशिष्ट सन्दर्भ में भी पद्यप्रधान साहित्य कहा जा सकता है। आधुनिक युग को गद्यसाहित्य की अभूतपूर्व उन्नति के कारण गद्यकाल भी कहा गया है। मध्यकाल तक के जनजीवन एवम् तदनुसार साहित्य-सर्जना में काल्पनिक दृष्टि तथा आधुनिक काल में वास्तविक दृष्टि का प्राधान्य दिखायी पड़ता है। आधुनिक युग में काल्पनिक दृष्टि की अपेक्षा वैज्ञानिक दृष्टि की प्रमुखता इस युग की चेतना के फलस्वरूप है। साहित्यकार तथा पाठक दोनों कल्पना में उस हद तक आजकल लीन नहीं हो सकते, जैसे मध्यकाल में होते थे। साहित्य के विविध रूपों में इसका प्रतिफलन आजकल पात्रों के मनोवैज्ञानिक चित्रण में स्पष्ट है। मध्यकाल के काव्यों में वर्णनों एवम् शैली के विन्यास पर अपेक्षाकृत अधिक ध्यान कवि लोग देते थे और चरित्र-चित्रण पर उनका उतना ध्यान नहीं रहता था। आधुनिक युग में वर्णन-विधान एवम् शैली की अपेक्षा चरित्रचित्रण ही मुख्य है। महाकाव्य के रूप-शिल्प में यह अन्तर स्पष्ट दिखायी पड़ता है। पाश्चात्य आलोचकों के आधुनिक अभिमत में महाकाव्य की रचना केवल गद्य में भी संभव है।[1] किन्तु मध्यकाल तक के महाकाव्यों में केवल गद्य का प्रयोग दृष्टिगत नहीं होता। कुछ महाकाव्यों ने केवल पद्यात्मक शैली को ग्रहण किया तो और कुछ महाकाव्यों में गद्य-पद्य की मिश्रित शैली को अपनाया गया। तेलुगु के अधिकांश महाकाव्यों में गद्य-पद्य दोनों का प्रयोग सामान्य रूप से हुआ है। गद्य का प्रयोग जिनमें नहीं हुआ, वे अपवाद स्वरूप ही हैं। तिक्कन का 'निर्वचनोत्तर रामायण' पद्यमय काव्य है। इसमें प्रयुक्त 'निर्वचन' शब्द का अर्थ गद्यरहित हैं। हिन्दी के रामचरितमानस, रामचिन्द्रका आदि में गद्य का प्रयोग नहीं हैं। किन्तु 'पृथ्वीराजरासो' में प्रयुक्त वचनिकाओं को गद्य ही मान सकते हैं। विद्यापति की 'कीर्तिलता' में पद्यों के बीच-बीच में

---

1. The epic must be a heroic narrative (though not necessarily in verse) and it must be ample in scope— M. W, Tillyard. The English Epic and its background, page 182

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

अलंकृत गद्यखण्ड भी दिखाई पड़ते हैं। फिर भी अनन्तर-कालीन हिन्दी में मिश्रित शैली का व्यापक प्रयोग नहीं मिलता। तेलुगु के महाकाव्यों में प्रयुक्त गद्यपद्य मिश्रित शैली के कारण उनको चम्पूकाव्य मानकर उनके महाकाव्यत्व को नकारा भी नहीं जा सकता, क्योंकि 'केवल गद्य-पद्य के मिश्रण मात्र से किसी भी काव्य को चम्पू नहीं कहा जा सकता। चम्पू की शास्त्रीय परिभाषा यह है कि जिस काव्य में वस्तु और दृश्यों का रूप चित्रण गद्य में किया गया हो और उसकी पुष्टि के हेतु भावों या विभावादि का पद्य में निरूपण हो, वह चम्पू काव्य है।'[1] अतः हिन्दी एवम् तेलुगु में मध्यकाल तक प्रणीत महाकाव्यों को इस आधार पर (1) पद्यबन्ध, (2) मिश्रबन्ध-इन दो वर्गों में विभाजित कर सकते हैं।

रस की प्रधानता के आधार पर वर्गीकरण

रस की प्रधानता के आधार पर महाकाव्यों का वर्गीकरण (1) श्रृंगाररस प्रधान महाकाव्य, (2) शान्तरस प्रधान महाकाव्य एवम् (3) वीररस प्रधान महाकाव्य इन तीनों रूपों में किया जा सकता है। काव्यों में साधारणतया इन तीनों में से किसी एक का विधान मुख्य रूप से और अन्य रसों का गौण रूप से किया जाता है। विश्वनाथ कविराज का महाकाव्य लक्षण ही यह बताता है कि श्रृंगार, वीर, शान्त में से किसी एक की स्थिति प्रधान रूप में एवम् अन्य की गौण रूप में होती है।[2] रसों में मुख्य रस, रसों की संख्या, रस निष्पत्ति की प्रक्रिया आदि के विषय में संस्कृत के काव्याचार्यों में मतभेद है। भोज के अनुसार श्रृंगार ही मुख्य रस है तो भवभूति के के मत में 'एकोरसः करुण एव और आनन्दवर्धन, अभिनवगुप्त तथा भट्टतौत के अभिमत में शान्त ही मुख्य रस है, क्योंकि वह 'प्रकृति रस' है और शेष विकृतियाँ प्रकृति से उद्भूत होती हैं। किसी निमित्त से रत्यादि स्थायीभावों का प्रवर्तन रहता है और उस निमित्त के समाप्त होने पर शान्त ही परिपुष्ट होकर प्रकाशित होता है।[3] काव्यों के विशेष सन्दर्भ में कौन रस प्रधान है, कौन-सा गौण है, इसके निर्णय में भी मतभेद के लिए अवकाश है, जैसे आनन्दवर्धन के मतानुसार महाभारत में प्रधान रस शान्तरस है।[4] इसको

---

1. डॉ. नेमिचन्द्र शास्त्री : प्राकृत भाषा और साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास पृ. 360
2. श्रृंगार वीर शान्तानामेकोऽङ्गी रस इष्यते—साहित्यदर्पण
3. नन्निचोडुनिवस्तुकविता, पृ. 55
4. ध्वन्यावलोक, चतुर्थ उद्योत, कारिका 5

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

वीररस प्रधान माननेवाला मत भी दृष्टिगत होता है।[1] इसके अतिरिक्त अधिकांश काव्यशास्त्रियों के मत में नौ रस हैं। प्रेयस, भक्ति एवम् वात्सल्य को भी रस माननेवाले आचार्य हैं। भक्ति का शान्तरस में अन्तर्भाव माननेवाले काव्यशास्त्री अधिक हैं। इसलिए भक्तिरस प्रधान महाकाव्यों का वर्ग मानने के बजाय शान्तरस प्रधान मानना ही उपयुक्त है। कवि का दृष्टिकोण, काव्य का प्रतिपाद्य विषय तथा तदनुसार घटनाओं के विन्यास के आधार पर किसी भी काव्य में मुख्य रस का निर्णय करना समीचीन होगा। इस दृष्टि से अवलोकन करने पर स्वारोचिष मनुसम्भव, वसुचरित्र, पारिजातपहरण, कलापूर्णोदय आदि में शृंगाररस का, आमुक्तमाल्यदा, कुमारसम्भव, पांडुरंगमाहात्म्य, कालहस्तिमाहात्म्य में शान्तरस का तथा कृष्णराय विजयमु, और पलनाटि वीरचरित्र में वीररस का प्राधान्य मान सकते हैं। इसी प्रकार हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में रामचरितमानस एवम् पद्मावत को शान्तरस-प्रधान, पृथ्वीराजरासो, हम्मीररासो, छत्रप्रकाश, राज-विलास, सुजानचरित एवम् हम्मीरहठ को वीररस-प्रधान महाकाव्य माना जा सकता है।

छन्द-विधान के आधार पर वर्गीकरण

छन्दों के प्रयोग-विधान की दृष्टि से हिन्दी के महाकाव्यों में दो भिन्न शैलियाँ लक्षित होती हैं—एक तो विविध छन्दों के प्रयोग की शैली है और दूसरी दोहा-चौपाईवाली शैली है। जायसी आदि के प्रेमाख्यान शैली के महा-काव्यों में दोहा-चौपाई पद्धति का प्रयोग निरपवाद रूप से मिलता है और चन्द, केशव, जोधराज, मान, सूदन एवं चन्द्रशेखर के काव्यों में छन्दोवैविध्यपरक शैली का प्रयोग मिलता है। छत्रप्रकाशकार गोरेलाल ने दोहा-चौपाई वाली शैली का ही प्रयोग किया है। तुलसीदास के महाकाव्य में यद्यपि संस्कृत के अनुष्टुप, इन्द्रवज्रा, त्रोटक, भुजंगप्रयात, मालिनी, रथोद्धता, वसन्ततिलका, वंशस्थ, शार्दूलविक्रीडित, स्रग्धरा, नगस्वरूपिणी आदि वर्णवृत्तों सोरठा, छप्पय, हरिगीतिका, तोमर, त्रिभंगी, चौपैया आदि मात्रिक छन्दों का प्रयोग दिखायी पड़ता है तो भी दोहा-चौपाई शैली का ही प्राधान्य है। हिन्दी से पूर्व के अपभ्रंश साहित्य में हिन्दी में प्रयुक्त दोनों शैलियों के पूर्व रूप दिखायी पड़ते हैं। रामचरितमानस एवं पद्मावत में प्रयुक्त दोहा-चौपाई शैली को अपभ्रंश की कडवक शैली का ही विकसित रूप माना जाता है। इसी प्रकार

---

1. हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप-विकास, पृ. 131

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

पृथ्वीराजरासो, हम्मीररासो, आदि वीरकाव्यों तथा रामचन्द्रिका में प्रयुक्त विविध छन्दों के प्रयोग को 'सुदर्शनचरिउ', 'जिनदत्तचरिउ' आदि अपभ्रंश काव्यों से आगत प्रवृत्ति माना जाता है। इन दोनों शैलियों के अतिरिक्त समूचे काव्य को एक ही पद्धडिया, गाहा या दूहा छन्द में रचने के प्रयोग भी दृष्टिगत होते हैं, जिन्हें पद्धडिया बन्ध, गाहाबन्ध या दूहाबन्ध के नाम से व्यवहृत किया गया है। प्राकृत भाषा में कौतूहल के द्वारा रचित 'लीलावई कहा' गाथाबद्ध रचना है। क्योंकि इस काव्य में प्रधान छन्द गाथा है और इस कृति के 1333 पद्यों में बहुत ही कम पद्य शार्दूलविक्रीडित आदि भिन्न छन्दों में हैं।[1] तेलुगु साहित्य के महाकाव्यों में विविध छन्दों के प्रयोग की प्रवृत्ति मुख्य है। एक ही 'द्विपद' छन्द में सम्पूर्ण काव्य-रचना की प्रवृत्ति भी दिखायी पड़ती है। 'आमुक्त-माल्यदा', 'स्वारोचिष मनुसम्भव', 'वसुचरित्र', 'निर्वचनोत्तर रामायण' आदि में छन्दोवैविध्य की शैली तथा 'रंगनाथ रामायण', 'पल्नाटिवीरचरित' आदि में एक ही प्रकार के छन्द 'द्विपद' के प्रयोग की शैली अपनायी गयी है। अतएव छन्दविधान के आधार पर महाकाव्यों का वर्गीकरण (1) छन्दोवैविध्य-परक महाकाव्य, (2) एकछन्दाश्रित महाकाव्य, (3) द्विछन्दमिश्रित महाकाव्य इन तीन रूपों में किया जा सकता है।

कवियों के दृष्टिकोण के आधार पर वर्गीकरण

कवियों को काव्य-रचना में प्रवृत्त करनेवाले मुख्य लक्ष्य या उनके दृष्टिकोण के आधार पर भी महाकाव्यों का वर्गीकरण संभव है। कह नहीं सकते कि सभी कवियों का दृष्टिकोण एक ही प्रकार का होता है। काव्य के अवतारिका भाग में उपलब्ध कवि के स्वीय कथन से, पात्रों के मुँह से या अप्रस्तुत विधान से और कथानक के विविध प्रसंगों के विन्यास से कवि के दृष्टिकोण की अभिव्यक्ति होती है। काव्य-सृजन की मूल प्रेरणा एवं परम लक्ष्य के रूप में आत्मानुभूति का प्रकाशन एवं स्वान्तःसुख सभी काव्यों के लिए समान होते हुए भी व्यावहारिक धरातल पर उस स्वान्तःसुख के विधायक विविध तत्वों एवं आत्मानुभूति के विविध प्रकारों में अन्तर स्वाभाविक है। इस रूप में कवियों के भिन्न-भिन्न दृष्टिकोण होते हैं और उनके आधार पर महाकाव्यों का वर्गीकरण किया जा सकता है।

भक्ति और आत्मोद्धार का दृष्टिकोण गोस्वामी तुलसीदास जी के

---

1. डॉ. रामसिंह तोमर, प्राकृत और अपभ्रंश साहित्य तथा उनका हिन्दी साहित्य पर प्रभाव, पृ. 38

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

'रामचरितमानस', नन्निचोड कविराज के 'कुमारसम्भव', श्रीकृष्णदेवराय की 'आमुक्तमाल्यदा', धूर्जटी के 'श्रीकालहस्तिमाहात्म्य' तथा तेनालि रामकृष्ण के 'पाण्डुरंग माहात्म्य' में प्रखर है। तुलसी, श्रीकृष्ण देवराय एवं तेनालि रामकृष्ण में वैष्णव भक्ति-भावना तथा नन्निचोड एवं धूर्जटी में शैव भक्ति-भावना मुख्य है। तुलसी की दृष्टि में कविता साधन है और साध्य रामभक्ति है। तुलसी का काव्य-कौशल एवं प्रबन्धपटुता अत्यन्त उच्चकोटि की है, फिर भी तुलसी के अभिमत में—

भनिति विचित्र सुकविकृत जोऊ। राम नाम बिनु सोह न सोऊ॥[1]

वैयक्तिक जीवन में आत्मोद्धार के साथ सामाजिक जीवन में रामसम्बन्धी भक्ति का प्रचार-प्रसार तथा उसके द्वारा लोककल्याण तुलसी का लक्ष्य रहा है। क्योंकि मानसकार की दृष्टि में—

कीरति भनिति भूति भलि सोई। सुरसरि सम सब कहँ हित होई॥[2]

इसी लोकहित भावना एवं मर्यादामार्ग से परिचालित होने के कारण राम, भरत, सीता, कैकेयी आदि पात्रों का चरित्र-चित्रण अत्यन्त भव्य रूप में 'मानस' में गोस्वामी जी ने किया है। यद्यपि कृष्णदेवराय तुलसी की कोटि के भक्त नहीं हैं तो भी 'आमुक्तमाल्यदा' में अभिव्यक्त उनकी भक्तिभावना स्पष्ट है। आण्डाल, विष्णुचित्त, यामुनाचार्य, मालदासरी आदि भक्तों की कथाएँ जिस निष्ठा एवं तत्परता से कही गयी हैं और अप्रस्तुत विधान में भी दिव्य-प्रबन्ध का संयोजन एवं कथानक के बीच में वैष्णव धर्म एवं विष्णु भगवान के उत्कर्ष की जो स्थापना की गई है, उनके माध्यम से कवि की भक्तिपरक दृष्टि की तीव्रता प्रकट होती है। इसी तीव्रता को लक्षित करके आचार्य लक्ष्मीकांतम जी ने कहा है कि अद्वितीय वैष्णव तेज सर्वत्र प्रकाशित होते हुए अधिकारी तारतम्य के अनुसार भिन्न रूपों में अज्ञानांधकार का नाश करने का रहस्य अनेक प्रकारों से यह काव्य व्यक्त कर रहा है।[3] कविराज शिखामणि नन्निचोड ने अपने 'कुमारसम्भव' को 'वस्तुकाव्य' एवं अपने कवित्व को 'वस्तुकविता' कहा है।[4] 'वस्तुकविता' शब्द की एक व्याख्या में यह कहा गया है कि वेदान्त आदि विषयों में वस्तु का तात्पर्य परवस्तु अर्थात् परब्रह्म है परवस्तु प्रधान कविता को वेदान्त-भावना-मार्ग में वस्तुकविता कहा जा सकता

---

1. मानस-बालकाण्ड–10–2
2. वही, 14–5
3. गौतमव्यासमुलु, पृ. 38
4. कुमारसम्भव–प्रथम आवास, पद्य 17, 20, 21, 36

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

है ।[1] नन्निचोड की शिवभक्ति की अभिव्यक्ति इस महाकाव्य में शिवोत्कर्ष के प्रतिपादक वर्णनों एवं घटनाओं के रूप में भी हुई है । धूर्जटी की शिवभक्ति उनके द्वारा वर्णित शिव-भक्तों के आख्यानों तथा अप्रस्तुत-विधान में भी स्पष्ट है । उदाहरण के तौर पर 'श्रीकालहस्तिमाहात्म्य' में उपलब्ध 'चन्द्रोदय वर्णन' को लिया जा सकता है, जिसमें कवि ने चन्द्रमा की तुलना शिवलिंग से, उदयगिरि की 'पानवट्ट' से, अभिषेक के उदकप्रवाह की समुद्र से, नक्षत्रों की भगवान की पूजा में समर्पित पुष्पों से की है ।[2] इस प्रकार हम देखते हैं कि हिन्दी और तेलुगु के कुछ महाकाव्यों में भक्ति एवं आत्मोद्धार का दृष्टिकोण प्रमुख रहा है ।

महाकाव्यों का एक वर्ग वह उपलब्ध होता है, जिसमें कवियों ने अपने समय में प्रचलित साहित्यिक परम्परा में एक नया मोड़ उपस्थित करने तथा रचना को नई दिशा प्रदान करने के लक्ष्य से काव्य-रचना की । इसको हम काव्य-रचना में नये प्रयोग का दृष्टिकोण कह सकते हैं । वास्तव में प्रत्येक कालजयी अमरकृति अपनी पूर्ववर्ती रचनाओं से भिन्न नवीन प्रयोग के रूप में सम्भाव्य है । काव्य-सृजन की प्रक्रिया ही परम्परा एवं प्रयोग के कूलों के बीच प्रवाहित होनेवाली स्रोतस्विनी है । फिर भी कुछ कवियों का दृष्टिकोण अन्य कवियों की तुलना में अपेक्षाकृत प्रयोगशील अधिक है और नवीन प्रयोग के लिए उनकी जाग्रत और सचेष्ट मनोवृत्ति का परिचय उनके काव्यों के माध्यम से मिलता है । तेलुगु के साहित्य में पिंगलि सूरनार्य नवीन प्रयोग-कुशल कवि के रूप में प्रसिद्ध हैं । सूरनार्य ने 'राघवपाण्डवीय' में एवं 'कलापूर्णोदय' में द्विसन्धान महाकाव्य एवं उत्पाद्य महाकाव्य के रूप में अद्भुत प्रयोग किए हैं । अपने समय में प्रचलित साहित्यधारा से भिन्न प्रयोग, वैलक्षण्य प्रदर्शन की प्रवृत्ति के परिणाम हैं । संस्कृत शब्दों से भिन्न तेलुगु के देशज एवं तद्भव शब्दों में भी द्विसन्धान का प्रयास प्रथम बार सूरनार्य ने ही किया था और उनका यह आत्मविश्वासपूर्ण कथन, भाषाकाव्य में रामकथा एवं महाभारत कथा का सन्धान करने में कौन समर्थ है, इस सन्दर्भ में ध्यान देने योग्य है । 'कलापूर्णोदय' की रचना के समय कवि का दृष्किोण 'अत्यपूर्व-कथा-संविधान-वैचित्रीमहनीय, श्रृंगाररसप्राय तथा पुण्यवस्तु-वर्णनाकर्णनीय महाकाव्य निर्माण' का था ।[3] सूरनार्य के उपर्युक्त कथन में जो श्रृंगाररस प्रधान एवं पुण्यवस्तु-

1. नन्निचोडुनि वस्तुकविता, पृ. 11
2. श्रीकालहस्तिमाहात्म्य, द्वितीय आश्वास, पद्य 133
3. कलापूर्णोदय, प्रथम आश्वास, पद्य 16

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

वर्णनपरक महाकाव्य सृजन है, वह उनके और उनके समय के अन्य सभी कवियों की समान प्रवृत्ति है। 'अत्यपूर्व-कथासंविधान-वैचित्री' के कारण ही कलापूर्णोदय 'महनीय' बन सका है। डॉ. सी. आर. रेड्डी के शब्दों में "कलापूर्णोदय तेलुगु में अद्वितीय ग्रन्थ है। महाभारत, मनुचरित्र जैसे ग्रन्थों की भाँति अनूदित अथवा प्राचीन कथामूलक नहीं है, सिर्फ कवि की स्वकीय सृष्टि है।"[1] हिन्दी में आचार्य केशवदास ने विविध छन्दों के प्रयोग के सचेष्ट दृष्टिकोण से ही 'रामचन्द्रिका' की रचना की। विद्वानों के मत में 'शैली की दृष्टि से तो यह (रामचन्द्रिका) नया प्रयोग है।'[2] भाषा-शैली, स्थान-स्थान पर शीघ्रगति से छन्द-परिवर्तन एवं संवाद-चातुर्य के आधार पर कह सकते हैं कि केशव का, काव्य-रचना में नये प्रयोग का सजग दृष्टिकोण रहा है।

हिन्दी और तेलुगु के कुछ महाकाव्य-स्रष्टाओं का दृष्टिकोण ऐतिहासिक घटनावली को काव्यात्मक रूप प्रदान करने और उसके माध्यम से अपने चरितनायक को उदात्त रूप में प्रस्तुत करने का रहा है। पृथ्वीराजरासो, 'छत्रप्रकाश', 'कृष्णरायविजय', 'सिद्धेश्वरचरित' आदि में यह दृष्टिकोण परिलक्षित होता है। आश्रयदाता का मनोरंजन एवं यशोगान और उसके लिए चाटुकारितापूर्ण पद्धति के वर्णनों के रूप में इन महाकाव्यों को समझना ठीक नहीं है। क्योंकि भारत के इतिहास में उनके वीरकृत्यों, धर्म एवं संस्कृति की रक्षा तथा देश-भक्ति की दृष्टि से पृथ्वीराज, हम्मीरदेव, छत्रसाल, श्रीकृष्णदेवराय, प्रतापरुद्र, रघुनाथ भूपाल आदि का गौरवपूर्ण स्थान है। इसके अतिरिक्त इन महाकाव्यों में से कुछ का प्रणयन उन चरितनायकों के अनन्तर काल में हुआ है। पृथ्वीराजरासो के छोटे-बड़े कई संस्करणों का प्राप्त होना, इस तथ्य का द्योतक है कि उस महान योद्धा की वीरगाथा ने असंख्य कवियों को मूल ग्रन्थ में क्षेपकों का भण्डार भरने की सीमा तक प्रभावित किया। यह कहना उचित होगा कि वीरकाव्य के प्रणेता चन्दबरदाई, जोधराज, गोरेलाल आदि के मन में सच्ची वीरता और देश-भक्ति की भावनाओं का सहज उन्मेष था और तदनुसार उनको काव्यात्मक रूप प्रदान किया गया। मध्यकालीन काव्य होने के कारण उनमें पुराणोचित काल्पनिक प्रसंगों की भी योजना है।

---

1. कलापूर्णोदय की पीठिका, पृष्ठ 11
2. डॉ. नगेन्द्र एवं डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त का सम्पादित हिन्दी साहित्य का इतिहास,

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

जायसी आदि सूफी सन्तों का दृष्टिकोण अपने काव्यों के माध्यम से सूफी दार्शनिक विचारों एवं साधनामार्ग के प्रचार एवं प्रसार का रहा है। आचार्य शुक्ल के शब्दों में "निर्गुणोपासक भक्तों की दूसरी शाखा उन सूफी कवियों की है, जिन्होंने प्रेमगाथाओं के रूप में उस प्रेमतत्व का वर्णन किया है, जो ईश्वर को मिलानेवाला है तथा जिसका आभास लौकिक प्रेम के रूप में मिलता है।"[1] अर्थात् सूफी सन्तो के लिए प्रेमतत्व का निरूपण ही साध्य है और उस निरूपण के लिए ग्रहण की हुई काव्य-पद्धति साधन है। शुक्लजी के अनुसार—"बीच-बीच में रहस्यमय परोक्ष की ओर जो मधुर संकेत मिलते हैं, वे बड़े हृदयग्राही होते हैं।"[2] इन हृदयग्राही मधुर संकेतों का मूलकारण प्रेमतत्व में इन कवियों की स्वाभाविक निष्ठा एवं उस अलौकिक तत्व का सन्देश लौकिक सरस माध्यम से देने का प्रयत्न ही है। जायसी ने पद्मावत को एक अन्योक्ति के रूप में माना है, जिसका स्पष्टीकरण काव्य के उपसंहार की पंक्तियों में स्वयं किया है। इस अन्योक्ति का विधान प्रेमतत्व की व्यंजना के रूप में कवि द्वारा उद्दिष्ट है और यह उनका सजग प्रयास ही है।

मनुसम्भव, वसुचरित्र, पारिजातापहरण आदि काव्यो के प्रणेताओं का दृष्टिकोण न भक्तिपरक है, न आध्यात्मिक साधना की सरस अभिव्यंजना का है, न ऐतिहासिक घटनावली का काव्यात्मक प्रस्तुतीकरण है और नवीन प्रयोग करके विलक्षणता प्रदर्शित करने का भी नहीं है। पौराणिक ऐतिहासिक स्रोतों से प्रसिद्ध किसी भी वस्तु का चयन करके विशुद्ध साहित्यिक शैली में सरस महाकाव्य का सृजन करने का लक्ष्य इन कवियों के सामने रहा है। रामकथा का आधार ग्रहण करते हुए भी कवि की दृष्टि भक्तिपरक नहीं है। रीतिकालीन कृष्णकाव्य में जिस प्रकार भक्तिकाल के कृष्णकाव्य की भाँति आत्मोद्धार का दृष्टिकोण एवं कैवल्य-प्राप्ति का लक्ष्य प्रेरक नहीं है, उसी प्रकार राम एवं कृष्ण से सम्बन्धित होने पर भी तेलुगु में 'रामाभ्युदय' एवं 'पारिजातापहरण' महाकाव्यों में कवियों की दृष्टि भक्ति भावना से परिचालित नहीं है। आधुनिक समीक्षा का यह आधारभूत सिद्धान्त है कि "आलोचक को आलोच्यकाव्य से ही दृष्टि प्राप्त करनी चाहिए।"[3] इस सिद्धान्त के आधार पर कह सकते हैं कि तेलुगु के सभी राम सम्बन्धी

---

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ. 87
2. हिन्दी साहित्य का इतिहास पृ. 69
3. डॉ. नगेन्द्र: 'आस्था के चरण' पृ. 348

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

महाकाव्यों में तुलसी की भाँति की भक्तितन्मयता की अपेक्षा करना उचित नहीं है। शुद्ध साहित्यिक दृष्टिकोण 'कलापूर्णोदय', 'रामचन्द्रिका', 'रामाभ्युदय', 'वसुचरित्र', 'पारिजातपहरण' आदि में समान होने पर भी पिंगलि सूरनार्य एवं केशव की दृष्टि अन्य कवियों की दृष्टि से इस रूप में भिन्न है कि ये दोनों कवि नवीन काव्य-प्रयोग की सचेष्ट प्रवृत्ति से परिचालित हुए हैं और अपनी इस दृष्टि की घोषणा स्पष्ट शब्दों में की है। केशव एवं सूरनार्य से पृथक् इस वर्ग के कवियों के दृष्टिकोण को विशुद्ध साहित्यिक दृष्टिकोण कह सकते हैं। यहाँ पर यह स्मरणीय है कि न्यूनाधिक मात्रा में सभी कवि भक्त हैं, सभी कवि साहित्यिक सौष्ठव से युक्त महाकाव्य की रचना में मात्रा भेद से तत्पर हैं, सबने अपने धार्मिक विश्वासों की विवृति किसी न किसी रूप में की है और सबकी कृतियाँ पूर्ववर्ती रचनाओं से भिन्न नूतन प्रयोग के रूप में भी द्रष्टव्य हैं। प्राधान्य की दृष्टि से यह वर्गीकरण किया गया है।

महाकाव्यों के वर्गीकरण के उपरान्त हिन्दी एवम् तेलुगु के प्रमुख महाकाव्यों का परिचय प्रस्तुत किया जा रहा है।

पृथ्वीराजरासो

'पृथ्वीराज रासो' हिन्दी के प्रथम महाकाव्य के रूप में प्रसिद्ध है। इस ग्रन्थ की प्रामाणिकता एवम् ऐतिहासिकता के सम्बन्ध में बूलर, गौरीशंकर हीराचन्द ओझा, पंडित मोहनलाल विष्णुलाल पांड्या, बाबू श्यामसुन्दरदास, मुनि जिनविजय आदि विद्वानों में काफी मतभेद था। आजकल 'रासो' की ऐतिहासिकता का प्रश्न बहुत महत्त्वपूर्ण नहीं रह गया है। साहित्यिकों की दृष्टि इस काव्यग्रन्थ के अध्ययन, आस्वादन, वैज्ञानिक सम्पादन, भाषा छन्द-विधान आदि पक्षों के अन्वेषण में लगी है।[1] रासो की विभिन्न प्रतियों को चार प्रकारों में विभाजित किया गया यथा (1) बृहत् रूपान्तर, (2) मध्यम रूपान्तर, (3) लघु रूपान्तर एवम् (4) लघुतम रूपान्तर। मुनि जिनविजय जी को जैन प्रबन्धों में चन्द कवि के रचित चार अपभ्रंश के छन्द मिले, जिनमें से तीन परिवर्तित रूप में रासो में भी मिल गये। इस आधार पर यह माना गया कि रासो का मूलरूप अपभ्रंश में ही था।[2] आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने बहुत पहले अनुमान किया था कि चन्द हिन्दी परम्परा के आदि कवि की अपेक्षा अपभ्रंश परम्परा के अन्तिम कवि थे।[3] आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी

---

1. डॉ. उदयनारायण तिवारी, वीरकाव्य, पृ. 107–110
2. वही, पृ. 113
3. हिन्दी साहित्य का आदिकाल, पृ. 105

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

ने शुक-शुकी संवाद, कथानक-रूढ़ियों की योजना आदि तत्कालीन अन्य काव्यों में प्रयुक्त पद्धतियों के आधार पर पृथ्वीराजरासो का एक संक्षिप्त संकलन बनाया और उनका कथन है कि चन्द की मूल रचना कुछ इसी के आस-पास होगी।[1] रासो का जो संस्करण असम्पूर्ण रूप में एशियाटिक सोसायटी के द्वारा प्रकाशित हुआ और बाद में नागरी प्रचारिणी सभा ने जिसको पूर्णतः प्रकाशित किया, वह बृहत् रूपान्तर की प्रतियों के आधार पर बना। रासो का बृहत् रूपान्तर 71 समयों में निबद्ध ढाई हजार पृष्ठ का विशाल महाकाव्य है। रासो के रचनाकाल के सम्बन्ध में भी मतभेद है। बृहत् रूपान्तर को लक्षित करके रासो का रचनाकल 16 वीं-17 वीं शती माना जाता है। डॉ. माताप्रसाद गुप्त के अनुसार रासो का बृहदरूप 16 वीं-17 वीं शताब्दी में वर्तमान आकार में आया होगा, किन्तु रचना अपने मूल रूप में बहुत प्राचीन रही होगी।[2] गुप्तजी ने पाठालोचन की वैज्ञानिक पद्धति के अनुसार विभिन्न प्रतियों को आधार बनाकर 'रासो' का सम्पादन किया है। गुप्तजी का अभिमत रासो के रचनाकाल के सम्बन्ध में यों है—सभी दृष्टियों से पृथ्वीराजरासो की रचना सं. 1400 के लगभग हुई ही मानी जा सकती हैं। इससे पूर्व नहीं।'[3] गुप्तजी की यह भी मान्यता है कि—'वीररस के काव्य की दृष्टि से तो रासो अपने लघुतम रूपान्तर में भी अप्रतिम है। हिन्दी का कोई भी अन्य काव्य वास्तविक वीरता का, जिसमें अपनी जान के लिए मर मिटने की साध ही सर्वोपरि होती है, इतना ऊँचा आदर्श प्रस्तुत नहीं करता, जितना यह।[4] रासो की आधिकारिक कथा-वस्तु पृथ्वीराज से ही सम्बद्ध है। आनुषंगिक कथाएँ अधिकांश विवाह वर्णन, युद्ध वर्णन, कुछ अतिमानवीय उपाख्यानों आदि से सम्बन्धित हैं। वर्णन-कौशल, विविध छन्दों का सुन्दर प्रयोग, वीर रसानुकूल भाषा-शैली आदि की दृष्टि से 'पृथ्वीराज रासो' का काव्य-सौष्ठव अप्रतिम है।

पद्मावत

पद्मावत हिन्दी की सूफी प्रेमाख्यान परम्परा में ही नहीं, प्रत्युत् समूचे हिन्दी साहित्य में एक अमूल्य रत्न के रूप में विख्यात है। आचार्य शुक्ल की दृष्टि से श्रेष्ठ प्रबन्धकाव्य रचना के कारण तुलसी के बाद जायसी का ही

---

1. संक्षिप्त पृथ्वीराज रासो की भूमिका, पृ. 15
2. हिन्दी साहित्य कोश, भाग 2, पृ. 321
3. पृथ्वीराजरासो की भूमिका, पृ. 168
4. हिन्दी साहित्य कोश, भाग 2, पृ. 321

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

महत्त्व है। 'पद्मावत' के लेखक मलिक मोहम्मद जायसी जायस नगर के रहनेवाले थे और अपनी कृति में शाहेवक्त की प्रशंसा के रूप में दिल्ली के सुलतान शेरशाह की प्रशंसा जायसी ने की। इस आधार पर पद्मावत का रचनाकाल सोलहवीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध सिद्ध होता है। पद्मावत की मुख्य प्रतियाँ फारसी लिपि में उपलब्ध हैं। उस समय की अवधी भाषा का रूप पद्मावत में फारसी लिपि में सुरक्षित है। डॉ. रामकुमार वर्मा के अनुसार —'हिन्दी साहित्य के केवल जायसी ही ऐसे पुराने लेखक हैं, जिनकी कृति का वास्तविक स्वरूप हमारे सामने हैं। 'पृथ्वीराजरासो' महान ग्रन्थ होते हुए भी संदिग्ध है, विद्यापति और मीरा के गाये गीत गायकों के कण्ठों से बहुत कुछ बदल गये हैं, कबीर के पद कबीर पन्थियों ने तोड़ मरोड़ डाले हैं तथा अन्य कवियों के ग्रन्थ पण्डितों ने शुद्ध कर डाले हैं।'[1] पद्मावत की अवधी में तत्कालीन बोलचाल की भाषा का माधुर्य है। कवि के संस्कृत पण्डित न होने के कारण क्लिष्ट संस्कृत शब्दों का प्रयोग नहीं हुआ है। मुसलमान होने के कारण कवि ने तत्कालीन साहित्यिक चेतना एवम् अपने व्यक्तित्व के अनुरूप फारसी एवम् अरबी के शब्दों का प्रयोग किया है। पद्मावत की प्रतियों के पाठ-भेद का मुख्य कारण ठेठ हिन्दी का फारसी में लिपिबद्ध होना है।

'पद्मावत' की कथावस्तु राजा रत्नसेन का रूपश्रवण के कारण पद्मावती से अनुरक्त होकर उसको प्राप्त करने के लिए सिंहल द्वीप की ओर प्रस्थान करने और असंख्य कठिनाइयों का सामना करके आखिर पद्मावती से विवाह करने और पद्मावती के रूप-सौन्दर्य पर मोहित अलाउद्दीन से युद्ध करके स्वर्ग सिधारने की मुख्य घटनाओं से सम्बन्धित है। रत्नसेन का पद्मावती से विवाह-पर्यन्त कथा को पूर्वार्द्ध एवं तदनन्तर कथा को उत्तरार्द्ध कहा जाता है। इस कथावस्तु में इतिहास और उससे भी अधिक कल्पना का आश्रय कवि ने लिया। शुक्ल जी ने स्पष्टतः स्वीकार किया है कि जायसी ने यद्यपि इतिहास प्रसिद्ध नायक और नायिका ली है, पर उन्होंने अपनी कहानी का रूप वही रखा है जो कल्पना के उत्कर्ष द्वारा साधारण जनता के हृदय में प्रतिष्ठित था।[2] लोक-कथात्मक स्रोतों से इस जनप्रिय प्रेमकथा का चयन करने के कारण जायसी को आध्यात्मिक प्रेमतत्व की अभिव्यंजना के लिए यथेष्ट अवकाश रहा है।

1. 'हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास', पृ 310
2. हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ. 94

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

आध्यात्मिक दृष्टिकोण की काव्यात्मक विवृति के साथ पद्मावत में लोकपक्ष का चित्रण भी काफी महत्त्वपूर्ण ढंग से हुआ है। यात्रा, पनघट, विवाह, युद्ध, षट्ऋतु, भोजन आदि के रमणीय वस्तुवर्णन पद्मावत में हैं, जो कवि के वर्णन-कौशल के द्योतक हैं। वस्तुवर्णनों के साथ शृंगार की संयोग एवं वियोग सम्बन्धी मनोभावनाओं की सफल व्यंजना जायसी की सहृदयता का प्रमाण है। काव्य के बीच बीच में अलौकिक प्रेमतत्व की ओर किए गए संकेतों के कारण पद्मावत में रूपक-तत्व का समावेश हो गया है।

'पद्मावत' की रचना-शैली भारतीय पद्धति की सर्गबद्ध शैली न होकर फारसी की मसनवियों की शैली है, यद्यपि अपभ्रंश के कथाकाव्यों एवं लोकगाथा का भी प्रभाव 'पद्मावत' के काव्यरूप पर पड़ा। फारसी का प्रसिद्ध महाकाव्य 'शाहनामा' मसनवी शैली में ही रचित है। 'पद्मावत' में अध्याय नहीं हैं, परन्तु घटनाओं के शीर्षकों के आधार पर खण्ड हैं। विद्वानों का कथन है कि पद्मावत की प्रामाणिक मूल प्रतियों में खण्ड-विभाजन नहीं है। मसनवी की काव्य-रूढ़ि के रूप में पद्मावत में कथारम्भ के पहले ईश्वरस्तुति, पैगम्बर वन्दना एवं शाहेवक्त की प्रशंसा की गयी है। पद्मावत में तान्त्रिक साधनामार्ग, ज्योतिष, धर्म और दर्शन सम्बन्धी कवि की बहुज्ञता का भी परिचय मिलता है। जायसी ने अश्वों, हाथियों, वृक्षों, भोजन-सामग्री आदि के वर्णनों के प्रसंगों में नामपरिगणनात्मक शैली का अवलम्ब ग्रहण किया। किन्तु यह पद्मावत की ही विशेषता नहीं है, मध्ययुग के प्रायः सभी काव्यों में नामपरिगणनात्मक शैली मिलती है।

रामचरितमानस

हिन्दी साहित्य के सर्वोत्कृष्ट ग्रन्थ के रूप में 'रामचरितमानस' की प्रतिष्ठा है। लोकनायक तुलसी के महान व्यक्तित्व के अनुरूप रामचरित में भक्तितन्मयता, उत्कृष्ट काव्य-कौशल और लोककल्याणमय भव्य आदर्शों का सुन्दर समन्वय हुआ है। मानस एक श्रेष्ठ महाकाव्य के रूप में ही नहीं, प्रत्युत् असंख्य जनता के पथप्रदर्शक धर्मग्रन्थ के रूप में भी रचनाकाल से लेकर अद्यावधि साधारण एवं व्युत्पन्न जनता का कण्ठहार बना हुआ है। तुलसी के प्रकाण्ड पाण्डित्य, आध्यात्मिक साधना एवं सारग्राहिणी प्रवृत्ति के परिणामस्वरूप एव काव्य-रचना के लिए स्वीकृत प्रबन्धात्मक रूप के कारण मानस में विशद रूप से रामचरित का उज्ज्वल अंकन संभव हो सका है। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के अनुसार—"आज का उत्तर भारत तुलसीदास के आदर्शों पर गठित हुआ है। वही उसके मेरुदंड हैं।[1] "तुलसी ने नानापुराण निगमागम सम्मतं यद्

1. हिन्दी साहित्य, पृ. 154

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

रामायणे निगदितं क्वचिदन्यतोपि" कहकर अपनी सारग्राहिणी प्रवृत्ति का परिचय दिया है। भारत की प्रमुख भाषाओं में ही नहीं, बल्कि रूसी आदि विदेशी भाषाओं में भी मानस का अनुवाद हुआ है।

डॉ. रामकुमार वर्मा के अनुसार अन्तर्साक्ष्य एवं बाह्यसाक्ष्य दोनों के आधार पर मानस का रचनाकाल निश्चित रूप से संवत् 1631 है, अर्थात् ईसा की सोलहवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध है।[1] मानस में कवि ने यद्यपि रामचरित का ही वर्णन किया है, तथापि उसका रूप तुलसी की मर्यादावादी दृष्टि एवं औचित्य-पालन के कारण आधार ग्रन्थों में प्राप्त रामकथा से कतिपय अंशों में भिन्न है। तुलसी ने अपने भक्तिपरक दृष्टिकोण के अनुरूप राम, भरत, कौशल्या आदि के चरित्रों में अनौचित्य का परिहार करके उन आदर्श चरित्रों को और भी उज्ज्वल बना दिया है। संस्कृत के रामायण-ग्रन्थों में प्राप्त अन्य प्रासंगिक कथाओं एवं वर्णनों के विस्तार को तुलसी ने छोड़ दिया है। मानस में मुख्य रूप से रामचरित की प्रसिद्ध घटनाओं की ही योजना है। तुलसी ने कथा के मार्मिक प्रसंगों को पहचानकर अपनी सहृदयता का परिचय दिया है और शुक्लजी ने तुलसी के इस गुण की प्रशंसा की है और प्रबन्धकार कबि के लिए यह आवश्यक माना है। मानस की घटनाओं का विन्यास एवं कथा का ढाँचा अध्यात्म रामायण के हैं।

रामचरितमानस में दोहा-चौपाई वाली शैली का प्रयोग किया यया है। तुलसी और जायसी की काव्यप्रतिभा ने यह सिद्ध कर दिया है कि यह शैली प्रबन्धात्मक काव्य के लिए उपयुक्त है। यह दोहा-चौपाई शैली अपभ्रंश की कडवक शैली का विकसित रूप है। मुख्य रूप से इस शैली का निर्वाह होने पर भी मानस में संस्कृत के अनुष्टुप, स्रग्धरा, भुजंगप्रयात आदि वर्णवृत्तों तथा सोरठा, तोमर, हरिगीतिका, चौपैया आदि मात्रिक छन्दों का भी प्रयोग हुआ है। प्रत्येक काण्ड के आरम्भ में शिव, रामचन्द्र, भरत, सीता आदि की स्तुति में संस्कृत श्लोकों का संयोजन मानस में मिलता है। बहुत कम संख्या में ही दोहा-चौपाई से भिन्न अन्य छन्दों का प्रयोग हुआ है। मानस की भाषा साहित्यिक अवधी है, जिसमें संस्कृत के तत्सम शब्दों का अच्छा-खासा प्रयोग है। तत्सम शब्द-प्रयोग की यह प्रवृत्ति हिन्दी भक्तिकाव्य की सामान्य प्रवृत्ति है, जिसमें मध्यकाल के धार्मिक पुनर्जागरण का प्रतिफलन है। अवधी भाषा का प्रयोग पद्मावत में भी हुआ है, किन्तु मानस की भाषा पद्मावत की भाषा से भिन्न

1. हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ. 423

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

है। यह भिन्नता तुलसी के तत्सम शब्दप्रयोग में ही नहीं, बल्कि पात्रों के स्वभावानुसार विन्यास में भी द्रष्टव्य है।

गोस्वामी तुलसीदास आडम्बरहीन सरल स्वभाव के सन्त कवि हैं और कवि के इस स्वभाव के अनुसार ही उनकी वाणी में ऋजुता और प्रवाह के दर्शन होते हैं। रामचरितमानस में अतिशय अलंकरण की प्रवृत्ति बिलकुल नहीं है। अलंकार नैसर्गिक और अनिवार्य उपकरण के रूप में ही मानस में प्रयुक्त हुए हैं। अलकारों का प्रयोग तुलसी ने भाव-व्यंजना के सहायक अंग के रूप में ही किया है। आचार्य शुक्ल के अनुसार—"कहीं-कहीं लम्बे-लम्बे सांगरूपक बाँधने में अवश्य उन्होंने (तुलसी ने) एक भद्दी परम्परा का अनुसरण किया है।[1]" अलकारों की ही भाँति मानस में कथा-प्रवाह एवं वर्णनों का उचित अनुपात भी इस महाकाव्य की प्रमुख विशेषता है। अलंकारों एवं वर्णनों की योजना में कवि की काव्य-कुशलता के साथ उनका साधु स्वभाव भी दृष्टिगत होता है। वर्षाकालीन मेघों में विद्या से प्राप्त विनम्रता का दर्शन तुलसी के सन्त स्वभाव के कारण सम्भव हो सका है। इस प्रकार उदात्त भावभूमि पर प्रतिष्ठित मानस महाकाव्य कवि के काव्य-कौशल के कारण हिन्दी का सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ ही नहीं, प्रत्युत् विश्वसाहित्य का बहुमूल्य रत्न भी है।

रामचन्द्रिका

हिन्दी साहित्य में रामचन्द्रिका का महत्त्व साहित्यिक दृष्टिकोण से विरचित एवं काव्यशास्त्रीय मान्यताओं के निकटस्थ वर्णनात्मक शैली के महाकाव्य के रूप में है।. इस महाकाव्य के प्रणेता आचार्य केशवदास हैं, जो ओड़छा दरबार के राजकवि थे। ओड़छा-नरेश इन्द्रजीत सिंह के द्वारा कवि को अत्यधिक सम्मान प्राप्त था, जिसका संकेत कवि के "भूतल को इन्द्र इन्द्रजीत राजै जुग जुग, केशौदास जाके राज राज सो करत है"—इन शब्दों में पाया जाता है।[2] संस्कृत के विद्वान एवं दरबारी कवि होने के कारण केशव के व्यक्तित्व में रीतिप्रियता, वस्तु-वर्णन की विदग्धता एवं संवाद-चातुर्य के गुण स्वाभाविक हैं और उन्हीं गुणों का साकार रूप उनका काव्य है। संस्कृत साहित्य के परवर्ती महाकाव्यों में भारवि, माघ एवं श्रीहर्ष की वर्णनात्मकता तथा बहुशास्त्र मर्मज्ञता की जो प्रवृत्ति है, ठीक वही प्रवृत्ति रामचन्द्रिकाकार केशव की भी प्रवृत्ति है। इसी प्रवृत्ति के फलस्वरूप राजसी वातावरण सम्बन्धी विविध

---

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ. 134
2. कवि-प्रिया, चौथा प्रभाव, पृ. 22

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

वस्तुवर्णनों की योजना रामचन्द्रिका में मिलती है। रुद्रट की परिभाषा के अनुसार भी महाकाव्य में राजवैभव सम्बन्धी वर्णनों की योजना आवश्यक है। रामचन्द्रिका नाम से यही प्रकट होता है कि रामचन्द्र के धवल यश का विस्तार-पूर्वक वर्णन करना ही कवि के लिए अभीष्ट था।

केशव के महाकाव्य का रचनाकाल कवि के अनुसार—"सोरह सै अट्ठावन कातिक सुदि बुधवार" है।[1] अर्थात् तदनुसार ईस्वी 1601 है। भाषा में काव्य-रचना करना सम्भवतः तत्कालीन पण्डित-मण्डली को इष्ट नहीं था। केशव अपने वंश में प्रतिष्ठित संस्कृत विद्या की प्रशंसा करने के उपरान्त यह भी कहते हैं—"उपज्यों तेहि कुल मंदमति शठ कवि केशवदास। रामचन्द्र की चन्द्रिका भाषा करी प्रकास॥"[2] वाल्मीकि महर्षि के स्वप्नावस्था में साक्षात्कार एवं रामचरित वर्णन करने के उपदेश के कारण केशव ने रामचन्द्रिका की रचना की। रामचन्द्रिका के अध्यायों के नाम 'प्रकाश' हैं जो 'चन्द्रिका' शब्द के अनुरूप सार्थक हैं। सम्पूर्ण काव्य में उनतालीस प्रकाश हैं और प्रत्येक प्रकाश के आदि में दोहा छन्द के माध्यम से उस प्रकाश में वर्णित इतिवृत्त की सूचना दी गयी है। इस महाकाव्य में विविध छन्दों का प्रयोग कवि द्वारा प्रयत्नपूर्वक किया गया है और इस आधार पर भी रामचन्द्रिका का यश कलंकित हुआ है। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के शब्दों में—"12वीं, 13वीं शती के अपभ्रंश साहित्य में छन्दों का यह परिवर्तन बहुत अधिक प्रचलित हो गया था। जो छन्द-परिवर्तन के लिए केशव को दोषी समझते हैं, वे बहुत ऊपर से काव्य-रूपों की आलोचना करते हैं।"[3]

रामचन्द्रिका में दशरथ के राज्यवैभव से आरम्भ करके राम-सीता के पुनर्मिलन तक की कथा है। अर्थात् रावणवध एवं राम की राज्य-प्राप्ति तक के पूर्व रामायण एवं इसके उपरान्त के उत्तर रामायण की पूरी कथा को केशव ने ग्रहण किया है। रामचन्द्रिका के आधार-ग्रन्थों के रूप में वाल्मीकि-रामायण, हनुमन्नाटक एवं प्रसन्नराघव हैं। इस महाकाव्य में कई सुन्दर संवादों की योजना है, जिनमें रावण-बाणासुर संवाद, हनुमान-रावण संवाद, लक्ष्मण-परशुराम संवाद मुख्य हैं। संवादों में केशवदास को प्राप्त सफलता के विषय में सभी विद्वानों का मतैक्य है। इन संवादों में राजनीति के दांव-पेंच, प्रत्युत्पन्न मति,

1. रामचन्द्रिका, पहिला प्रकाश—6
2. वही,—5
3. संक्षिप्त पृथ्वीराजरासो की भूमिका, पृ. 14

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

वाक्पटुता आदि गुण स्पष्टतः दिखायी पड़ते हैं। आचार्य शुक्ल का यह मत है कि उनका अंगद-रावण संवाद तुलसी के संवाद से कहीं अधिक उपयुक्त और सुन्दर है।"[1] रामचन्द्रिका की भाषा बुन्देलखण्डी मिश्रित ब्रजभाषा है, जिसमें संस्कृत के विभक्त्यन्त शब्द-रूपों का भी प्रयोग है।

छत्रप्रकाश

कविवर गोरेलाल के द्वारा विरचित ऐतिहासिक महाकाव्य 'छत्रप्रकाश' को हिन्दी के विद्वानों ने इतिहास एवं कवित्व दोनों ही दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण माना है। आचार्य शुक्ल के मत में—'इतिहास की दृष्टि से छत्रप्रकाश बड़े महत्त्व की पुस्तक है।······ग्रन्थ की रचना प्रौढ़ और काव्यगुणयुक्त है। वर्णन की विशदता के अतिरिक्त स्थान-स्थान पर ओजस्वी भाषण हैं। लालकवि में प्रबन्धपटुता पूरी थी। सम्बन्ध का निर्वाह भी अच्छा है और वर्णन-विस्तार के लिए मार्मिक स्थलों का चुनाव भी। वस्तु-परिगणन द्वारा वर्णनों का अरुचिकर विस्तार बहुत ही कम मिलता है। सारांश यह है कि लाल कवि-सा प्रबन्ध-कौशल हिन्दी के इने-गिने कवियों में ही पाया जाता है।"[2] श्रीगणेशप्रसाद द्विवेदी के अनुसार—"लाल ने अपनी कविता बहुत सरल, सुन्दर, सुरुचिपूर्ण रची, बाह्याडम्बर के लिए उनके हृदय में रत्ती भर भी स्थान नहीं था, युद्ध के वर्णन इनके बड़े सजीव और ज्वलन्त हुए और इन्हीं गुणों के कारण कथा प्रासंगिक वं रकाव्य में इनका स्थान बहुत ऊंचा हो जाता है।"[3] डॉ. उदय-नारायण तिवारी लाल के विषय में यह मानते हैं कि—"इस कवि की प्रसिद्धि उतनी नहीं हुई जितनी आवश्यक थी।"[4] ऐतिहासिक घटनावली के यथातथ्य वर्णन एवं काव्यगुणों के अतिरिक्त तेलुगु भाषी विद्वानों का हिन्दी साहित्य के सम्वर्धन में योगदान की दृष्टि से भी गोरेलाल जी का महत्त्व है। लालकवि के पूर्वजों का निवासस्थान आन्ध्रदेश में राजमहेन्द्री जिले के गोदावरी नदी के तटस्थ नृसिंहक्षेत्र धर्मपुरी में था। लालकवि के वंशधर श्री उत्तमलाल गोस्वामी से ज्ञात इस सामग्री का मिश्रबन्धुओं ने संग्रह किया था।[5]

'छत्रप्रकाश' की रचना छत्रसाल की आज्ञा से ही हुई। इस ग्रन्थ में

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ. 196
2. वही, पृ. 307
3. हिन्दी के कवि और काव्य, पृ. 310
4. वीरकाव्य, 315
5. हिन्दी साहित्य (द्वितीय खण्ड), पृ. 169,

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

महाराजा छत्रसाल के मऊ पहुँचने तक की घटनाओं का वर्णन किया गया है। यह अन्तिम घटना लगभग सं. 1763 तक की है, जो औरंगजेब का मृत्यु संवत् है। ग्रन्थ के परिशीलन से यह मालुम पड़ता है कि ग्रन्थ की अचानक समाप्ति की गयी है। इसलिए यह अनुमान किया जाता है कि उस समय तक या तो गोरेलाल अथवा छत्रसाल का निधन हुआ होगा। इस प्रकार इस काव्य का रचनाकाल अठारहवीं शताब्दी का प्रथम चरण है। छत्रप्रकाश में छब्बीस अध्याय हैं और इन अध्यायों में चरितनायक के जीवन की मुख्य घटनाओं का वर्णन हुआ है। हिन्दी के प्रथम साहित्येतिहासकार गार्सा द तासी के मतानुसार छत्रप्रकाश बुन्देलखण्ड के इतिहास का अंशमात्र है।[1] परन्तु इस काव्य के परिशीलन से यह कथन ठीक नहीं प्रतीत होता है। कवि ने छत्रसाल के वंश का आरम्भ सूर्य से बताया है। इसलिए सूर्य, मनु, रामचन्द्र एवं कुश की परम्परा से इस वंश का सम्बन्ध जोड़ा गया है। प्रत्येक अध्याय के अन्त में एक पुष्पिका है, जिसमें उस अध्याय की वर्ण्यवस्तु का कथन किया गया है, यथा—'इति श्री लाल कवि विरचिते छत्रप्रकाशे बुन्देल जन्म वर्णनोनाम प्रथमोध्याय:"।

'छत्रप्रकाश' में दोहा-चौपाई शैली का प्रयोग किया गया है। जायसी और तुलसी ने इस शैली के अपने काव्यों में अवधी भाषा का प्रयोग किया था। किन्तु लाल ने अवधी, ब्रज एवं बुन्देलखण्डी की मिश्रित भाषा का प्रयोग किया है। इस भाषा के प्रयोग में कवि की अभिव्यक्ति-कुशलता का परिचय मिलता है। छत्रप्रकाश की भाषा में कहीं भी क्लिष्टता नहीं है, समग्र काव्य में प्रसाद गुण की ही प्रधानता है।

साधारणतया वीररसप्रधान काव्यों में भूषण, पद्माकर, सूदन आदि कवियों के द्वारा टकार, डकार, रेफ आदि से युक्त संयुक्ताक्षरों का बहुल प्रयोग किया गया है। इस प्रयोग की अधिकता से अर्थहीन शब्दों की भरमार हो गयी है। इसे शब्दनाद की प्रवृत्ति कहते हैं। इस प्रवृत्ति के अभाव के कारण छत्रप्रकाश की भाषा आचार्य शुक्ल प्रभृति विद्वानों की प्रशंसा-भाजन बनी। वर्णनों में सजीवता का गुण छत्रप्रकाश की प्रमुख विशेषता है। उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक अनुप्रास आदि अलंकारों का नैसर्गिक प्रयोग छत्रप्रकाश में द्रष्टव्य है। दूसरे शब्दों में अतिशय अलंकरण की प्रवृत्ति का अभाव लाल के कवित्व में है। डॉ. उदयनारायण तिवारी ने छत्रप्रकाश के भाषा-दोषों का विवेचन करते हुए यह लिखा है—'अनेक स्थलों पर उन्होंने शब्दों को अत्यन्त विकृत रूप में रख

1. बाबू श्यामसुन्दरदास की भूमिका, छत्रप्रकाश, पृ. 10

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

दिया है ।'[1] अपने इस कथन के उदाहरण स्वरूप तिवारी जी ने 'मसीदै' शब्द को भी पेश किया है । तेलुगु भाषा में आज भी 'मसजिद' को मसीद ही कहा जाता है । तेलुगु ब्राह्मण होने के कारण मातृभाषा के संस्कारों के फलस्वरूप गोरेलाल जी ने मसजिद के लिए 'मसीद' शब्द का प्रयोग किया होगा ।

हम्मीररासो

भारत के इतिहास—प्रसिद्ध महवीर, रणथंभौर दुर्ग के महाराजा हम्मीरदेव की वीरगाथा का वर्णन इस महाकाव्य में जोधराज नामक कवि ने किया । विशेष रूप से इस ग्रन्थ में हम्मीरदेव की अलाउद्दीन के साथ हुई लड़ाइयों का वर्णन हुआ है । युद्ध के मूलकारण के रूप में एक काल्पनिक घटना की योजना इस ऐतिहासिक काव्य में की गयी है । यह काल्पनिक घटना अलाउद्दीन की रूपविचित्रा नामक बेगम से सम्बन्धित है । कवि जोधराज अन्तःसाक्ष्य के आधार पर अलवर प्रान्त के निम्बराण नामक स्थान के अधिपति चन्द्रभान नामक राजा के आश्रित थे अ र अपने आश्रयदाता की आज्ञा से ही इस काव्य की रचना की । जोधराज अत्रिगोत्रीय गौडवंश कुलोत्पन्न ब्राह्मण था और ज्योतिष शास्त्र का भी विद्वान था । इस ग्रंथ की रचना चन्द्रभान की आज्ञा से हुई, इस विषय का समर्थन ग्रन्थ के अन्त में प्राप्त निम्नांकित पुष्पिका से भी होता है—

'इति श्रीमन्महाराजाधिराज राजराजेन्द्र श्रीमदखिल चाहुवान कुल-तिलक नीमराना अधिपति श्रीमहाराजा चन्द्रभानजी देवाज्ञया कवि जोधराज विरचितं यवनीश अलाउद्दीन प्रति हम्मीर जुद्धं समाप्तम् ।[2]

इस ग्रन्थ का रचनाकाल आचार्य शुक्ल के अनुसार सम्वत् 1875 है और श्यामसुन्दरदास, मिश्रबन्धुओं तथा लाला सीतारामजी के अनुसार सम्वत् 1785 हैं । डॉ. टीकमसिंह तोमर ने उपर्युक्त दोनों संवतों को अशुद्ध मानकर काव्य में वर्णित घटनाओं के आधार पर रचना-काल 1828 ईस्वी माना है ।[3] डॉ. उदयनारायण तिवारी का भी यही मत है ।''[4]

'हम्मीररासो' में कोई सर्गविभाजन नहीं है । पूरा काव्य 171 छन्दों में समाप्त हुआ है । काव्यारम्भ में मंगलाचरण के रूप में गणेश और वाणी जी की वन्दना की गयी है । इसके उपरान्त कल्पांतर के प्रारम्भ में सृष्टि-रचना के

---

1. वीरकाव्य, पृ. 316 2. हम्मीररासो, 163
3. हिन्दी साहित्य (द्वितीय खण्ड), पृ. 176-177
4. वीरकाव्य, पृ. 412

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

उपाख्यान से कथा आरम्भ होती है। इस उपाख्यान में पौराणिक ढंग से ब्रह्म के मन से मरीचि, कान से पुलस्त्य, नाभि से पुलह, त्वचा से नारद, छाया से कर्दम आदि ऋषियों की उत्पत्ति का वर्णन है। पुरुरवा, चन्द्रवंश और भार्गव परशुराम का उल्लेख और उसके बाद क्षत्रियों की उत्पत्ति के लिए आबू पर्वत पर ऋषियों के द्वारा यज्ञ, यज्ञकुण्ड से चालुक्य, परमार और चौहानों की उत्पत्ति का वर्णन किया गया है। चौहान वंश में जैतराव नामक राजा और पद्म ऋषि की आज्ञा से उग्र तपस्या करके उस राजा के द्वारा भगवान शिव को प्रसन्न किया जाना और रणथम्भौर दुर्ग की स्थापना की घटनाएँ वर्णित हैं। अप्सराओं के द्वारा पद्मऋषि का तपोभंग और यज्ञ में अर्पित किये गये ऋषि के मस्तक से अलाउद्दीन, वक्षस्थल से हम्मीरदेव, भुजाओं से महिमाशाह और चरणों से रूपविचित्रा की उत्पत्ति का कथन किया गया है। एक बार अलाउद्दीन अपनी बेगमों सहित आखेट खेलने जंगल गया। एक आँधी के कारण रूपविचित्रा भटककर जंगल में चली गयी। वहाँ मीर महिमाशाह से बेगम ने घृणित प्रस्ताव किया और रानी के आग्रह को मानकर महिमाशाह ने रानी की वासना-पूर्ति की। उस समय महिमाशाह ने एक ही बाण से शेर को मारकर अपनी वीरता प्रकट की। कुछ दिन बाद अन्तःपुर में रूपविचित्रा के साथ बात करनेवाला बादशाह एक चूहे से डर गया और रूपविचित्रा ने हँसकर महिमाशाह की वीरता की प्रशंसा की। अलाउद्दीन ने महिमाशाह को अपने राज्य से निकाल दिया तो हम्मीरदेव ने उनको शरण दी। अलाउद्दीन के अनुरोध करने पर भी हम्मीर ने महिमाशाह को आश्रय-मुक्त करने से अस्वीकार किया। इस कारण से हम्मीरदेव और अलाउद्दीन का युद्ध हुआ। विजय हम्मीरदेव की ही हुई। किन्तु रणथम्भौर के दुर्ग में रानियाँ भ्रमवश जौहर करके भस्म हुईं। इस पर दुःखी हम्मीरदेव ने शिव जी को अपना शिर अर्पित कर दिया और अलाउद्दीन ने रामेश्वर में प्राणत्याग किया। संक्षेप में यही हम्मीररासो की कथावस्तु है। स्पष्ट है कि ऐतिहासिक घटना के ऊपर कल्पना का रंग खूब चढ़ा है।

'हम्मीररासो' में दोहा, छप्पय, पद्धरी, मुक्तादाम, दोहरा, लघुनाराच, भुजंगप्रयात, चौपाई, सोरठा, कवित्त, त्रोटक, नाराच, दातार, हनुफल, रसवाल, त्रिभंगी आदि विविध छन्दों का प्रयोग किया गया है। अतः कह सकते हैं कि हम्मीररासो छन्दोवैविध्यपरक रासो-परम्परा का काव्य है। रास और रासो नामधारी काव्यरूपों के सम्बन्ध में भिन्न विचारों के कारण हिन्दी संसार में अनिश्चित स्थिति थी। किन्तु डॉ. माताप्रसाद गुप्त ने भ्रान्तियों का निराकरण

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

करके गीतनृत्यपरक रास-काव्यों से रासो-काव्यों के पार्थक्य को स्पष्ट किया ।[1] हम्मीररासो में पद्यों के बीच-बीच में कई बचनिकाएँ मिलती हैं, जिन्हें गद्य-खण्ड ही मान सकते हैं । आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी का अनुमान है कि प्राकृत की पद्यबद्ध कथाओं जैसे लीलावती, विद्यापति की कीर्तिलता आदि में जो गद्य और पद्य की मिश्रित शैली है, उसी की भाँति पृथ्वीराजरासो में भी गद्य अवश्य रहा होगा । उनका यह भी मत है कि—"वस्तुतः रासो में बीच-बीच में जो बचनिकाएँ आती हैं, वे गद्य ही हैं ।[2]" 'हम्मीररासो' में वसन्त, ग्रीष्म, वर्षा, शरद, हेमन्त, शिशिर इन छहों ऋतुओं का वर्णन एक साथ एक ही प्रसंग में किया गया है और वह प्रसंग पद्म ऋषि का तनुपात-प्रसंग है । इस महाकाव्य की भाषा में ओजस्विता का समावेश वीररस के वर्णन के लिए बहुत ही उपयुक्त है । इस भाषा में साहित्यिक ब्रजभाषा के रूप और साधारण बोलचाल के रूप भी दृष्टिगत होते हैं । वीररस के प्रसंग में संयुक्ताक्षरों का प्रयोग हुआ है । आचार्य शुक्ल के शब्दों में—"प्राचीन वीरकाल के अन्तिम राजपूत वीर का चरित जिस रूप में और जिस प्रकार की भाषा में अंकित होना चाहिए था, उसी रूप और उसी प्रकार की भाषा में जोधराज अंकित करने में सफल हुए हैं ।[3]"

सूजानचरित

हिन्दी के वीररसात्मक काव्यों में सुजानचरित का गणनीय स्थान है । इस महाकाव्य की प्रसिद्धि का मुख्य कारण इसमें वर्णित चरितनायक सुजान सिंह उपनाम सूरजमल का प्रतापी व्यक्तित्व ही है । सूदन इस महाकाव्य के रचयिता हैं । लाला सीतारामजी के अनुसार—"सूदन वीररस के श्रेष्ठ कवियों में से एक प्रतीत होते हैं । ······सूदन का उत्तरभारत की सभी बोलियों पर पूर्ण अधिकार था । युद्धों के सजीव और चित्रात्मक वर्णनों में केवल पृथ्वीराज-रासो के अमर कवि ही इनका प्रतिद्वन्द्वी है ।[4]" श्री गणेशप्रसाद द्विवेदी उक्त

---

1. पृथ्वीराजरासो की भूमिका, पृ. 172 2. हिन्दी साहित्य का आदिकाल, पृ 64
3. हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ. 324
4. "Sudan seems to have been one of the greatest poets of Vir (Heroic) rasa·········Sudan was master of all the vernaculars of Upper India and his graphic discription of the battles is rivalled only by the immortal author of Prithviraj Raso"
–Selections from Hindi Literature, Book I Bardic poetry, Page 241-242

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

मान्यता को स्वीकार करते हुए इस प्रकार कहते हैं—"कोई-कोई तो चन्द के बाद इन्हीं को वीररस का सर्वोच्च कवि मानते हैं और कदाचित् उनका कथन अतिशयोक्तिपूर्ण भी नहीं है।[1]" वस्तुओं की गिनती गिनाने की प्रणाली, विभिन्न भाषाओं और बोलियों का अधिक प्रयोग और भाषा की कृत्रिमता के कारण आचार्य शुक्ल सुजानचरित को महत्त्व नहीं देते। सूदन में वीररसात्मक स्थलों के वर्णन की प्रतिभा को स्वीकार करते हुए भी शुक्लजी उपर्युक्त त्रुटियों के कारण यह मानते हैं कि इस ग्रन्थ का साहित्यिक महत्त्व बहुत कुछ घटा हुआ है।[2]

'सुजानचरित' का रचनाकाल काव्य में वर्णित घटनाओं के आधार पर संवत् 1810 के आसपास माना जाता है। चूंकि इस काव्य में संवत् 1802 से लेकर 1810 तक की घटनाओं का वर्णन है, रचनाकाल के विषय में अधिक मतभेद नहीं है। सूदन ने अपने को मथुरा ब्राह्मण एवं बसन्त के पुत्र बताया है। अपने आश्रयदाता की प्रशंसा में कवि ने यह ग्रन्थ लिखा है। सुजानचरित की रचना सर्गबद्ध रूप में हुई है। वीररसात्मक युद्ध वर्णनों के अनुरूप ही सूदन ने अपने काव्य के सर्गों को जंग कहा है। हर एक जंग को फिर अंकों में विभाजित किया गया है। सात जंगों में यह ग्रन्थ समाप्त हुआ है। प्रत्येक अंक के पश्चात् एक छन्द प्रयुक्त हुआ है, जिसमें प्रसंग के अनुसार छन्द की अन्तिम पंक्ति बदल गयी है और अन्य शब्दावली सभी स्थानों पर समान है।

प्रत्येक जंग के अन्त में निम्नांकित प्रकार की पुष्पिका भी संयोजित है—

"सिद्धि श्रीमन्महाराजाधिराजब्रजेन्द्र कुँवार सुजान सिंह हेतवे कवि सूदन विरचिते सुजानचरित्रे असदखान हतनो नाम प्रथम जंग समाप्त।[3]" सूदन ने अपने चरितनायक को यदुवंशी बताया है। इस ग्रन्थ में ऐतिहासिक घटनावली का विस्तुत एवं यथातथ्य वर्णन है। अतः इतिहास की दृष्टि से भी यह महत्त्व की रचना है।

'सुजानचरित' में कवित्त, दोहा, अरिल्ल, छप्पय, पवंगा, कुण्डलिया, तोटक, मधु-मार सोरठा, तिलक, लीलाबती, गंगोदक, मनोरमा आदि विविध छन्दों का प्रयोग किया गया है। इकतीस अंकों के इस काव्य में निन्यानबे प्रकार के छन्दों का प्रयोग किया गया है। इस काव्य की भाषा साहित्यिक ब्रजभाषा है। पंजाबी,

1. हिन्दी के कवि और काव्य (भाग 1), पृ. 421
2. हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ 335
3. सुजानचरित, प्रथम जंग

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

मारवाड़ी, पूरबी बोली आदि अन्य भाषाओं एवं बोलियों का प्रयोग भी इस ग्रन्थ में है। ग्रन्थारम्भ में कवि ने मंगलाचरण के अनन्तर पहले संस्कृत के और बाद में हिन्दी के 175 कवियों का नामोल्लेख करके उनकी वन्दना की है। कवि की वस्तुपरिगणनात्मक प्रवृत्ति को समझने के लिए यह उल्लेख ही पर्याप्त है। यद्यपि इस काव्य का नाम सुजानचरित है, इसमें नायक के शौर्य प्रधान पक्ष का ही वर्णन है। शब्दनाद एवं अनुप्रासयुक्त शब्दावली का प्रयोग इस काव्य की अन्य विशेषता है।

हम्मीरहठ

मध्यकाल तक हिन्दी में प्रवाहित वीरकाव्य धारा की अन्तिम प्रसिद्ध एवं साहित्यिक सौष्ठव से युक्त ऐतिहासिक महाकाव्य के रूप में 'हम्मीरहठ' महत्त्वपूर्ण है। इसके रचयिता चन्द्रशेखर वाजपेयी की अन्य कृतियाँ भी प्रकाशित हैं, जिनके आधार पर कवि के जीवनवृत्त सम्बन्धी कतिपय अंश हिन्दी संसार को ज्ञात हैं। वाजपेयी का जीवनकाल ई. 1798-1875 तक माना जाता है। यद्यपि इनका जन्मस्थान फतेहपुर जिले में है, तो भी ये पर्यटन करते हुए दरभंगा, जोधपुर और पटियाला आदि स्थानों में जाकर वहाँ के नरेशों से सम्मानित हुए। आखिर ये पटियाला में ही रह गये। अपने आश्रयदाता नरेन्द्रसिंह के आदेश से इन्होंने 'हम्मीरहठ' महाकाव्य की रचना की।

हम्मीरहठ में सर्गविभाजन प्राप्त नहीं होता। पूरी रचना 403 छन्दों में समाप्त हुई है। मंगलाचरण के रूप में कवि ने 'गिरिवरधर अरु गंगधर चरन सरन सिर नाई' मात्र कहा है, जिसमें अन्य कवियों की तुलना में संक्षेप की प्रवृत्ति एवम् हरिहर के अभेद का दृष्टिकोण प्रकट है। इस ग्रन्थ में रणथम्भोर के राव हम्मीर एवम् अलाउद्दीन के युद्ध का वर्णन है। अलाउद्दीन के चरित्र को हास्यास्पद ढंग से चूहे से डरने के रूप में निरूपित करना आचार्य शुक्ल के मत में एक खटकनेवाली त्रुटि अवश्य है।[1] किन्तु कथा के अन्य अंशों की भाँति यह भी चन्द्रशेखर जी को पूर्ववर्ती रचनाओं में प्राप्त है। इसको कवि की अपनी उद्भावना नहीं समझकर परम्परागत प्रसंग मान सकते हैं। साहित्यिक दृष्टि से इस काव्य के मूल्य को सभी विद्वानों ने स्वीकार किया है। ब्रजभाषा काव्य के मर्मज्ञ तथा सफल कवि जगन्नाथदास जी रत्नाकर के शब्दों में—"इस ग्रन्थ की कविता बड़ी मनोहर और उमंगवर्द्धिनी है। ओज, माधुर्य और प्रसाद अपने अपने-अपने स्थान पर सुशोभित हैं···किस अवसर पर कैसे अर्थ

---

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ. 369

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

का साधन किन शब्दों द्वारा करना उचित है, इस बात पर कवि ने ध्यान रखा है और इसमें वे कृतकार्य भी हुए है।"[1] शुक्ल जी के अनुसार—"इनकी कीर्ति को चिरकाल तक स्थिर रखने के लिए हम्मीरहठ ही पर्याप्त है। उत्साह की, उमंग की व्यंजना जैसी चलती, स्वाभाविक और जोरदार भाषा में इन्होंने की है वैसे ढंग से करने में बहुत ही कम कवि समर्थ हुए। वीररस वर्णन में इस कवि ने बहुत सुन्दर साहित्यिक विवेक का परिचय दिया है।...भाषा भी पूर्ण व्यवस्थित च्युत संस्कृति आदि दोषों से मुक्त और प्रवाहमयी है। सारांश यह कि वीररस वर्णन की अत्यन्त श्रेष्ठ प्रणाली का अनुसरण चन्द्रशेखर जी ने किया है।"[2]

'हम्मीरहठ' में दोहा, कवित्व, सोरठा, चौपाई, सवैया, झूलना, त्रिभंगी, भुजंगप्रयात, छप्पय आदि विविध छन्दों का प्रयोग किया गया है। केशव की रामचन्द्रिका की ही भाँति इस काव्य में भी संवादों की योजना में बेगम उवाच, मीरउवाच, हम्मीर देव उवाच, इस प्रकार के शीर्षक रखे गये हैं। केशव के सन्दर्भ में शुक्ल जी ने इस पद्धति को प्रबन्धकाव्य की दृष्टि से दोष माना है।[3] हम्मीर हठ की भाषा परिमार्जित एवं साहित्यिक ब्रजभाषा है।

स्वारोचिषमनुसंभव

तेलुगु साहित्य की शास्त्रीय महाकाव्य परम्परा के सर्वश्रेष्ठ तथा परवर्ती महाकाव्यों के पथप्रदर्शक ग्रन्थ के रूप में इसका महत्त्व है। संस्कृत साहित्य के विद्यार्थी जिस प्रकार काव्यपंचक का अध्ययन अनिवार्य रूप से करते हैं, उसी प्रकार तेलुगु के पंच महाकाव्यों में 'मनुचरित' का अध्ययन व्युत्पत्ति के लिए किया जाता है। संविधानचातुर्य, सजीवपात्र-निर्माणकौशल, सुन्दर वस्तुवर्णनों की योजना तथा अलंकृत भव्य भाषाशैली के कारण यह महाकाव्य अपने उद्भवकाल से लेकर अद्यावधि काव्य-रसिकों का प्रीतिभाजन बना हुआ है। यद्यपि कवि ने इसका नाम 'स्वारोचिषमनुसम्भव' रखा और काव्य के वर्णित कथानक की दृष्टि से भी यही नाम उपयुक्त है, तो भी प्रयत्न-लाघव की प्रवृत्ति से परिचालित जन-व्यवहार में इसका 'मनुचरित्र' नाम रूढ़ हो गया और आज भी वही नाम व्यवहृत है। सम्भवत: 'वसुचरित्र' महाकाव्य के नाम-सादृश्य के आधार पर यह रूढ़ि चल पड़ी होगी।

1. 'हम्मीरहठ' की भूमिका, पृ. 4
2. हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ 3.8-59
3. वही पृ. 194

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

इस महाकाव्य के रचयिता अल्लसानि पेद्दनार्य हैं जो विजयनगर साम्राज्य के अधीश्वर सम्राट कृष्णदेवराय के प्रीतिपात्र तथा उनसे सम्मानित राजकवि हैं। अपने आश्रयदाता की सम्मानपूर्ण अभ्यर्थना के फलस्वरूप ही कवि ने इस काव्य की रचना की थी। श्रीकृष्ण देवराय की अभ्यर्थना के अनुसार इस कवि की वाणी शिरीष कुसुम के समास पेशल तथा सुधा की भाँति मधुर है। पेद्दनार्य चतुरवचोनिधि हैं, अतुलनीय पुराण, आगम एवं इतिहास की कथाओं के मर्मज्ञ हैं तथा आन्ध्र-कविता-पितामह हैं और उनके समान कवि कोई और नहीं है।[1] इस अन्तःसाक्ष्य के अलावा पेद्दनार्य को प्राप्त राजसम्मान को प्रमाणित करनेवाला बाह्यसाक्ष्य भी पर्याप्त मिलता है। पेद्दनार्य द्वारा प्रणीत एक फुटकर छन्द के अनुसार श्रीकृष्ण देवराय ने राजमार्ग में जाते समय यदि पेद्दनार्य दिखायी पड़े तो हाथ का सहारा देकर हाथी के ऊपर अपने पास बिठाया था, कवि के अभिलषित प्रान्तों में अनेक गाँव दान में दिये, 'मनुचरित्र' काव्य को स्वीकार करते समय अपने हाथ से कवि की पालकी को उठाया था और 'गंडपेंडेर' नामक स्वर्णमय आभरण को स्वयं कवि के चरण में पहनाया था।[2] हिन्दी साहित्य में भी राजा के द्वारा कवि के सम्मान में पालकी उठाने का उल्लेख मिलता है। जब भूषण छत्रसाल के यहाँ से बिदा हो पालकी पर सवार होकर चलने लगे तो छत्रसाल ने अपूर्व प्रेमभाव से प्रेरित हो, अपनी मान-मर्यादा आदि का कुछ ख्याल न कर कहारों के साथ स्वयं भी इनकी पालकी में अपना कंधा लगा दिया था।"[3] श्रीकृष्णदेवराय का राज्यकाल ई. 1509 से 1530 तक माना जाता है। अतएव मनुचरित्र का रचनाकाल सोलहवीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध है।

इस महाकाव्य की कथावस्तु मार्कण्डेयपुराण से ग्रहण की गयी है। इसमें मार्कण्डेय एवं क्रोष्टी तथा धर्मपक्षी एवं जैमिनि मुनि की वक्ता-श्रोता योजना भी प्राप्त होती है। सम्पूर्ण ग्रन्थ छः आश्वासों में विभाजित है और 800 छन्दों में समाप्त हुआ है। तेलुगु के मार्कण्डेय पुराण में 145 छन्दों में वर्णित इस कथा को पेद्दनार्य ने अपने रचना-चातुर्य से पल्लवित करके विस्तृत एवं आकर्षक रूप प्रदान किया। संस्कृत के मार्कण्डेय पुराण में 256 श्लोक हैं। मार्कण्डेय पुराण में स्वायंभुव, वैवस्वत आदि विविध मनुओं के आख्यान हैं। मनुचरित्र में

1. मनुचरित्र, प्रथम आश्वास—14, 15
2. मनुचरित्र की पीठिका, श्रीवेटूरि प्रभाकर शास्त्री, पृ. 11
3. हिन्दी के कवि और काव्य, पृ. 348

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

स्वारोचिष मनु के उद्भव की कथा है। स्मरणीय है कि 'कामायनी' में वर्णित मनु वैवस्वतमनु हैं।

मनुचरित्र के इतिवृत्त का समापन निर्वेद भाव से होने के कारण इसमें शान्तरस की प्रधानता कुछ लोग मानते हैं। परन्तु काव्य की कतिपय घटनाओं में रति भाव की ही मुख्य रूप से योजना है। अतएव इस महाकाव्य को श्रृंगाररस-प्रधान मानना ही उचित है। इस काव्य के सभी पात्रों में प्रवर एवं वरूधिनी के पात्रों का चित्रण अपेक्षाकृत अधिक सजीव रूप में हो सका है। जितेन्द्रियत्व के लिए प्रवर तथा प्रलोभन देकर पुरुष को वशीकृत करने के लिए वरूधिनी के पात्र तेलुगु भाषियों में सर्वाधिक लोकप्रिय बन गये। इस काव्य के सुन्दर वर्णनों में अरुणास्पद नगर, हिमालय, वरूधिनी, सायंकाल, चन्द्रिका, विवाह आदि उल्लेखनीय हैं। कथावस्तु के साथ इन वर्णनों का सुन्दर सामंजस्य इस काव्य की मुख्य विशेषता है। विवाह-वर्णन के एक पद्य का भावार्थ नमूने के तौर पर द्रष्टव्य है।

"मांगलिक तूर्यनाद की सुहावनी वेला में परस्पर दर्शनाकांक्षी वधू-वर के बीच में तना हुआ धवल पर्दा धीरे-धीरे नीचे उतार दिया जा रहा था तो दुलहिन मनोरमा का जूडा, मुख, गर्दन एवं पयोधर क्रमश: दिखाई पड़े। तब मनोरमा क्षीरसागर की लहरों में से उदित इंदिरा की भाँति बहुत सुन्दर लग रही थी।"[1]

वसुचरित्र

तेलुगु के काव्यपंचक में 'मनुचरित्र' के बाद 'वसुचरित्र' का स्थान है। कालक्रम की दृष्टि से भी इस ग्रन्थ की रचना मनुचरित्र के बाद ही हुई। श्री वज्झल चिन सीतारामस्वामी शास्त्री के मत में यह ग्रन्थ महाकाव्य लक्षण-लक्षित है।[2] श्री सन्निधानं सूर्यनारायण शास्त्री के अनुसार मनुचरित्र की अपेक्षा वसुचरित्र पर ही महाकाव्य के शास्त्रीय लक्षण घटित होते हैं।[3] भाव-गम्भीरता, व्यंग्य-वैभव, समुचित शब्द-प्रयोग-चातुर्य, सुन्दर वस्तु-वर्णन एवं संगीतात्मकता के कारण पण्डित-मण्डली में इस महाकाव्य की अपूर्व ख्याति रही है। तेलुगु में इस महाकाव्य की शैली के अनुकरण पर बहुत सी कृतियाँ रची गयीं, जिन्हें 'वसुचरित्र की पुत्रिकाएँ' कहा जाता है। अप्पय्य दीक्षित के शिष्य श्री कालहस्ति कवि ने संस्कृत में इसे अनूदित किया था, तमिल में भी

1. मनुचरित्र, 5—80
2. वसुचरित्रविमर्शनमु, पृ. 5
3. अष्टदिग्गजमुलु, पृ. 222

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

इसका अनुवाद हुआ और उन्नीसवीं शताब्दी में इसके कुछ अंशों का अनुवाद अंग्रेजी में भी किया गया। अठारहवीं शती से ही इस काव्य की व्याख्याएँ लिखी गयीं, जिनमें से छः व्याख्याएँ प्रसिद्ध हैं।

इस महाकाव्य के प्रणेता रामराजभूषण उपनाम भट्टुमूर्ति हैं, जिन्होंने इसके अतिरिक्त 'हरिश्चन्द्रनलोपाख्यान' नामक द्वयाश्रय महाकाव्य तथा 'काव्यालंकारसंग्रह' नामक लक्षण-ग्रन्थ की भी रचना की। इन ग्रन्थों के आधार पर कवि की प्रतिभा, पाण्डित्य, संगीतकला-मर्मज्ञता एवं उनको प्राप्त राजादर को समझा जा सकता है। ग्रन्थों में प्राप्त ऐतिहासिक घटनावली के आधार पर आचार्य दिवाकर्ल वेंकट अवधानी ने वसुचरित्र का रचनाकाल ई. 1552–75 के बीच निर्धारित किया है। विजयनगर साम्राज्य के अधीश्वर रामराज के दरबार में रहने के कारण इस कवि का उपनाम रामराजभूषण पड़ा। 'वसुचरित्र' रामराज के अनुज तिरुमलराय की इच्छा से रचित होकर उन्हीं को समर्पित किया गया।

महाभारत के आदिपर्व में बहुत संक्षेप में प्राप्त उपरिचर नामक वसु के आख्यान को ग्रहण करके, नई कल्पनाओं से आकर्षक बनाकर, रमणीय वर्णनों से अलंकृत करके श्रृंगार रस का परिपाक प्रधान रूप से करते हुए कवि ने इस महाकाव्य की सृष्टि की है। कवि ने आश्वासान्त पुष्पिकाओं एवं अवतारिका (भूमिका) में अपने काव्य को 'महाकाव्य' एवं 'महाप्रबन्ध' कहा है। अन्य प्रसिद्ध महाकाव्यों की भाँति इसमें भी शार्दूलविक्रीडित, मत्तेभविक्रीडित, चंपकमाला, उत्पलमाला आदि वर्णवृत्तों के साथ कंदमु, सीसमु, तेटगीति जैसे देशी छन्दों तथा बीच बीच में अलंकृत गद्यखण्डों का प्रयोग किया गया है। आश्वासों के अन्त में सुगंधी, तरल, मालिनी, कविराजविराजित, पंचचामर एवं पृथ्वी छन्दों का प्रयोग आश्रयदाता के संबोधन में किया गया है। उपमा, उत्प्रेक्षा सांगरूपक, श्लेष, समासोक्ति, काव्यलिंग आदि अलंकारों की छटा महाकाव्य में दर्शनीय है।

इस महाकाव्य की सभी घटनाएँ कोमल प्रसंग हैं। इनके द्वारा श्रृंगार-रस के समुचित परिपाक के लिए कवि को यथेष्ट अवकाश मिला। असंदिग्ध रूप से कह सकते हैं कि वसुचरित्र का प्रधान रस श्रृंगाररस है। पुरवर्णन, वसन्तवर्णन, सूर्योदयवर्णन, वन वर्णन, संध्या वर्णन, नखशिख वर्णन, विवाह वर्णन, सूर्यास्त वर्णन, चन्द्रवर्णन, आदि की योजना इस महाकाव्य में की गयी है। प्रौढ़ साहित्यिक भाषा-शैली के दर्शन काव्य में सर्वत्र मिलते हैं। पात्रों का प्रवेश, राजा के नर्मसखा रूप में विदूषक की योजना आदि में संस्कृत के

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

दृश्यकाव्यों की रचना-पद्धतियों का प्रभाव इस महाकाव्य पर परिलक्षित होता है। शब्दों की श्रुतिरंजकता एवं श्लेष अलंकार का सुन्दर निर्वाह रामराजभूषण के कवित्व की गणनीय विशेषताएँ हैं। कोलाहल पर्वत एवं शुक्तिमती नदी पर मानवीय गुणों का आरोप करके सजीव पात्रों के रूप से उनका वर्णन श्लेष के बल पर करना इस महाकाव्य की अनन्य विशेषता है।

पारिजातापहरण

तेलुगु के शृंगाररस-प्रधान महाकाव्यों में पारिजातापहरण का महत्त्व मानिनी नायिका सत्यभामा की विविध मनोदशाओं का सुन्दर चित्रण तथा कवि की प्रसादगुणयुक्त सुमधुर भाषा-शैली के कारण है। एक अनुश्रुति प्रचलित है कि प्रणय-कलह में पटरानी के द्वारा किये गये अपराध के कारण रुठे हुए सम्राट श्रीकृष्ण देवराय को रानी के प्रति प्रेमपूर्ण व्यवहार करने का संदेश देने के लिए इस महाकाव्य की रचना हुई थी। नायक श्रीकृष्ण तथा सम्राट श्रीकृष्णदेवराय में नाम-साम्य के कारण कवि को अपना संदेश व्यंग्य रूप में देना सुकर था। हिन्दी साहित्य में भी आश्रयदाता राजा को व्यंग्यात्मक पद्धति से सदेश देने का उदाहरण बिहारी के—

'नहि पराग नहि मधुर मधु, नहिं विकास इहि काल' वाले दोहे से संबधित जनश्रुति में मिलता है।

इस महाकाव्य के रचयिता नंदि तिम्मनार्य हैं, जो श्रीकृष्णदेवराय के आश्रित राजकवि थे। इस कृति का रचनाकाल विद्वानों के द्वारा ई. 1518 के लगभग निर्धारित किया गया है। यह काव्य सम्राट श्रीकृष्णदेवराय को समर्पित हुआ है।

इस महाकाव्य की कथावस्तु कवि ने हरिवंशपुराण से ग्रहण की। आरंभ में कवि ने वेंकटेश भगवान, शंकर, गणेश, वाणी एवं चन्द्रमा का वर्णन करके आश्रयदाता के लिए मंगलाशासन किया है। इस प्रकार नमस्क्रिया एवं आशीर्वाद रूपी मंगलाचरण सम्पन्न हुआ। इसके उपरान्त श्रीकृष्णदेवराय की वंशपरंपरा, उनकी विजय-यात्राओं, पराक्रम आदि का वर्णन किया गया है। इसके वस्तु-संविधान में दृश्यकाव्योचित पद्धतियों को अपनाया गया है। सम्पूर्ण काव्य में पाँच आश्वास तथा 512 छन्द हैं।

पारिजातापहरण की कथावस्तु इस प्रकार है। एक समय श्रीकृष्ण भगवान रुक्मिणी के भवन में विनोद की क्रीड़ाओं में मग्न थे। नारद जी आकाश मार्ग से वहाँ पधारे। नाराद जी का स्वागत-सत्कार हुआ। नारद ने स्वर्गलोक का पारिजात पुष्प भेंट स्वरूप श्रीकृष्ण को दिया। श्रीकृष्ण ने

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

वह पुष्प रुक्मिणी को दिया। अपने जूड़े में उस पुष्प को धारण करने के कारण रुक्मिणी के सौन्दर्य में अपूर्व वृद्धि हुई। नारद ने उस पुष्प का प्रभाव, रुक्मिणी की सज्जनता एवं सत्यभामा के रूपगर्व का खूब वर्णन किया। अपनी सखी के द्वारा यह सारा समाचार मानवती नायिका सत्यभामा को मिला तो वह अत्यन्त क्षुब्ध तथा श्रीकृष्ण पर क्रोधित होकर अपने कोप भवन में चली गयीं। श्रीकृष्ण सत्या के पास गये, विभिन्न प्रकारों से उन्हें मनाया। शिर नवाया तो सत्यभामा ने क्रोध से श्रीकृष्ण के शिर पर लात मार दी। इससे श्रीकृष्ण बिगड़े नहीं, मधुर बातों से सत्या का अनुनय करने लगे। उन्होंने सत्यभामा से कहा कि एक पुष्प मात्र के लिए इतनी चिन्ता क्यों करती हो, स्वर्गलोक जाकर आवश्यक हो तो देवेन्द्र को भी जीतकर पारिजात वृक्ष को उखाड़ लायेंगें और तुम्हारे आंगन में लगायेगे। इस पर सत्यभामा अतीव प्रसन्न हो गयी। श्रीकृष्ण सत्यभामा के साथ गरुड़वाहन पर बैठकर स्वर्ग जाकर पारिजात का अपहरण करके द्वारका लौट आये।

इस महाकाव्य के काव्य-सौन्दर्य को समझने के लिये नमूने के तौर पर एक छन्द का भावार्थ नीचे दिया गया है।

"एक भौंरा परकीया के मदन व्यापारों में उन्मत्त होकर अपनी धर्म पत्नी को कमल-गृह में मकरन्द-पान करते हुए छोड़कर दिन भर घूमकर सायंकाल के समय किसी भी प्रकार से अपनी पत्नी के पास जाने में असमर्थ होकर उस सरोवररूपी लक्ष्मी के पहरेदार की भांति चारों ओर चक्कर काट रहा था। सरोवरलक्ष्मी उपकार-बुद्धि से बिल्कुल शून्य है। अपने पहरेदार की सहायता भी नहीं करती।"[1]

आमुक्तमाल्यदा

सृजनात्मक कलाकार के रूप में सम्राट श्रीकृष्णदेवराय के यश को चिरकाल तक स्थिर रखनेवाला ग्रन्थ 'आमुक्तमाल्यदा' है। भगवान विष्णु की प्रसिद्ध भक्तिन गोदादेवी (आन्डाल) का दिव्य श्रृंगार, विष्णुचित्त नामक आल्वार संत का सरल-स्वाभाविक चरित्र, यामुनाचार्य आदि भक्तों के आख्यान, वर्णन-बाहुल्य, प्रकृति-निरीक्षण की कुशलता, प्रौढ़ साहित्यिक तत्सम-शब्दप्रधान भाषा-शैली तथा राजनीति के उपदेश—इन सबका समन्वित रूप यह महाकाव्य है। आन्डाल ही आमुक्तमाल्यदा है। अतः यह काव्य पद्मावत एवं 'कामायनी' की भांति नायिका-प्रधान है। कर्नाटक प्रान्त की

---

1. पारिजातापहरण, 2–33

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

अक्कमहादेवी, राजस्थान की मीरा एवं तमिल प्रान्त की गोदादेवी की भक्ति मधुर भक्ति है, जो भागवत पुराण और तदनुसार वल्लभ सम्प्रदाय में प्रतिष्ठित गोपिकाओं की प्रेमलक्षणा भक्ति है। अपना रूपसौन्दर्य भगवान को प्रिय लगे, इस उद्देश्य से अपने जूड़े में धारण की हुई पुष्पमाला विष्णु को समर्पित करने के कारण आन्डाल का नाम आमुक्तमाल्यदा पड़ा।

श्री कृष्णदेवराय का शासनकाल सोलहवीं शती का पूर्वार्ध है, अतः इस महाकाव्य का रचनाकाल भी वही माना जा सकता है। कृति तिरुपति के वेंकटेश भगवान को समर्पित है। काव्य के आरम्भ में कवि ने अपनी वैष्णव भक्ति-भावना के अनुरूप वेंकटेश भगवान, अनंत, गरुड़, विष्वक्सेन, सुदर्शन चक्र, पांचजन्य एवं बारह आल्वार संतों की वन्दना की है। इसके उपरांत अपनी युद्ध-यात्रा के सम्बन्ध मे कृष्णा नदी के तटस्थ श्रीकाकुल क्षेत्र के भगवान आन्ध्रविष्णु की सेवा और एकादशी की रात में भगवान के साक्षात्कार का वर्णन किया गया है। आमुक्तमाल्यदा में छः आश्वास हैं। पूरी रचना 873 छन्दों में समाप्त हुई है। अन्य प्रसिद्ध महाकाव्यों की भांति इसमें भी संस्कृत के वर्णवृत्तों, तेलुगु के देशीय छन्दों एवं बीच बीच में अलंकृत गद्यखण्डों का प्रयोग हुआ है।

'आमुक्तमाल्यदा' की आधिकारिक कथावस्तु संक्षेप में इस प्रकार है। श्री विल्लिपुत्तूर नामक नगर में विष्णुचित्त नाम का एक भक्त रहता था। वह न्यायार्जित धन से संतों की सेवा करता था और अपना सारा समय भगवद्-भजन में व्यतीत करता था। उस समय मथुरापुर में मत्स्यध्वज नामक राजा ऐहिक जीवन से विरक्त हो गया था। उसने पंडितों से यह प्रश्न पूछा कि कौन-सा भगवान मोक्ष देने में समर्थ है और कौन-सा धर्म वेदमत के अनुसार है। शास्त्रार्थ करके राजसभा में इस विषय का निरुपण करनेवाले विद्वान के लिए पुरस्कार भी घोषित किया। विष्णुचित्त ने भगवान की प्रेरणा से मथुरा जाकर शास्त्रार्थ द्वारा सिद्ध किया कि विष्णु भगवान ही एकमात्र परम सत्ता है। राजा को वैष्णव धर्म में दीक्षित करके विष्णुचित्त श्रीविल्लिपुत्तूर चला गया। एक दिन तुलसी के पौधों के बीच विष्णुचित्त को एक शिशु मिल गयी। उसे भगवान का प्रसाद मानकर पालन-पोषण कर रहा था। वह बालिका कालांतर में यौवनवती बन गयी और अपनी सखियों के साथ हरि का गुणगान मधुर ढंग से कर रही थी। पिता के द्वारा बनायी गयी पुष्पमाला को अपने केशों में अलंकृत करके कुएँ के जल में अपना सौंदर्य देखती थी। फिर उन मालाओं को यथास्थान रखती थी। विष्णुचित्त को यह मालुम नहीं था,

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

उन्हीं मालाओं को भगवान को चढ़ाता था। एक दिन अपनी पुत्री का हाल देखकर विष्णुत्ति को बड़ा दुख हुआ और अपने अपराध के लिये उसने भगवान से क्षमायाचना की। विष्णुदेव ने यह बताया कि विष्णुचित्त की वह पुत्री आन्डाल परम भक्तिन है। आन्डाल विष्णु को ही अपना पति मानकर वियोग-दुख से पीड़ित थी। विष्णुचित्त ने अपनी पुत्री का विवाह श्रीरंगनाथ के साथ सम्पन्न किया।

'आमुक्तमाल्यदा' का सौन्दर्य मुख्यत: वर्णन-कौशल पर आधारित है। इन वर्णनों में बड़े ही स्वाभाविक ढंग से पशुओं, पक्षियों, वृक्षों, कीड़ों आदि के आकार तथा चेष्टाओं की योजना की गयी है। संपन्न गृहस्थों के अतिरिक्त गरीब जनता के जीवन के भी कुछ अपूर्व चित्र इस काव्य में प्राप्त होते हैं। पात्रों के माध्यम से राजनीति के उपदेश दिये गए हैं, जो कवि के तद्विषयक वैदुष्य के द्योतक हैं। वैष्णवधर्म-भावना इस काव्य में सर्वत्र परिव्याप्त है।

वर्णन-कौशल के उदाहरणस्वरूप निम्नोक्त अवतरण द्रष्टव्य है।

"धान के खेतों के समीप में बहनेवाली नहरों की रेत पर बतखें अपना सिर एवं चोंच पंखों में छिपाकर सो रही थीं। उन बतखों को देखकर नगर की रखवाली करनेवाले पहरेदारों को भ्रम हुआ कि ब्राह्मी मुहूर्त में स्नान करने आकर ब्राह्मण अपने गीले वस्त्रों को यहाँ भूलकर चले गये होंगे। वस्त्र समझकर नहर की तरफ जानेवाले पहरेदारों के भ्रम पर खेतों की रखवाली करनेवाली रमणियाँ खिलखिलाकर हँस पडीं।"[1]

कलापूर्णोदय

महाकाव्य-रचना में विशुद्ध नूतन प्रयोग के रूप में पिंगलि सूरनार्य ने इस ग्रन्थ का प्रणयन किया। इतिहास, पुराण आदि प्रख्यात स्रोतों से कथा-वस्तु का चयन नहीं करके विशुद्ध काल्पनिक इतिवृत्त की योजना, परम्परागत रूप में कथा-कथन से भिन्न नवीन वस्तु-विन्यास तथा शृंगाररस के विविध रूपों की योजना इस महाकाव्य की विशिष्टताएँ हैं। आचार्य लक्ष्मीकांतम जी के अनुसार इस काव्य के नाम से यह व्यंजित होता है कि कला की परिपूर्णता का आविर्भाव इस महाकाव्य में द्रष्टव्य है।

अधिकांश विद्वानों के मतानुसार सोलहवीं शती के उत्तरार्द्ध में इसकी रचना हुई। इसमें आठ आश्वास हैं और सम्पूर्ण रचना 1847 छन्दों में समाप्त हुई। काव्य-रचना एवं श्रेष्ठ कवित्व से सम्बन्धित अपनी मान्यताओं का प्रकाशन कथा के बीच में पात्रों के माध्यम से कवि ने किया है।

---

1. आमुक्तमाल्यदा, 1—64

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

वस्तुयोजना में सूरनार्य ने विलक्षण ढंग अपनाया है, जो इसके पूर्ववर्ती तथा पश्चात् के काव्यों में दृष्टिगत नहीं होता। पाठकों की उत्सुकता को बनाये रखने के निमित्त आजकल के उपन्यासों में कथा के बीच के किसी प्रसंग से रचना का आरम्भ किया जाता है। ठीक इसी पद्धति को सोलहवीं शताब्दी के सूरनार्य ने महाकाव्य-रचना में अपनाया। डॉ. सी. आर. रेड्डी ने इतिवृत्त-निर्वहण की दो पद्धतियाँ मानी हैं—कालक्रम-पद्धति एवं कार्यकारण-पद्धति। इस महाकाव्य में कार्यकारण-पद्धति को अपनाया गया है। असल में 'कलापूर्णोदय' की कथा का वास्तविक आरम्भ कालक्रम-पद्धति के अनुसार पंचम आश्वास में वर्णित सरस्वती-चतुर्मुख-संवाद से होता है। परन्तु कवि ने कलभाषिणी के वृत्तान्त से काव्य का आरम्भ किया है।

कथावस्तु में अनावश्यक घटनाओं का गुंफन बहुत ही विरल है। आदि से अन्त तक निबद्ध सभी घटनाओं को परस्पर बांधनेवाली एकसूत्रता का पूर्ण सद्भाव इस महकाव्य में है। प्रख्यात इतिवृत्त को ग्रहण करने से कवि को यह सुविधा रहती है कि वह पाठकों का तादात्म्य काव्यगत पात्रों एवं वातावरण से सुगमतापूर्वक करा सकता है। उत्पाद्य इतिवृत्त में प्रायः यह सुविधा नहीं होती। परन्तु एक सीमा तक इस महाकाव्य में पौराणिक वस्तु का प्रभाव उत्पन्न करने में कवि सफल हुआ है। कल्पना-प्रसूत इतिवृत्त होने पर भी सरस्वती, ब्रह्मा, श्रीकृष्ण, द्वारका, नारद, नलकूबर, रंभा आदि पौराणिक नामावली के कारण पाठकों को अनुभूति वही मिलती है, जो पौराणिक कथा के रसास्वादन में मिलती है।

कलापूर्णोदय की कवित्व-माधुरी को समझने के लिए एक छन्द का भावार्थ प्रस्तुत किया जा रहा है—"यदि सहज ही शीतल चन्द्रिका में सुगन्ध का समावेश हो जाय, सुगन्ध एवं शीतलता से युक्त कपूर के टुकड़ों में कोमलता का गुण भी हो जाय और सुगन्ध, शीतलता एवं सुकुमारता से पूर्ण मन्द मलयानिल में माधुर्य का भी योग हो तो तभी इन पदार्थों की तुलना कवित्व से की जा सकती है।"[1]

कुमारसम्भव

संस्कृत साहित्य के महाकवि कालिदास एवं कुमारसम्भव का बोध किसी भी व्युत्पन्न सहृदय के मन में अविच्छिन्न रूप से होना स्वाभाविक है। किन्तु तेलुगु साहित्य के सन्दर्भ में काव्य-गुणों का उत्कर्ष, कवि की दार्शनिक विचार-

1. कलापूर्णोदय 1—83

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

धारा की काव्यात्मक अभिव्यक्ति, नवीन कथा-प्रसंगों की योजना, वर्णन-कौशल, भाषा-प्रयोग तथा छन्दविधान की विशिष्ट रीतियों की दृष्टि से नन्निचोड विरचित 'कुमारसम्भव' का महत्त्वपूर्ण स्थान है। जिस प्रकार वाल्मीकि रामायण, अध्यात्मरामायण, पउमचरिउ, सेतुबन्ध आदि रामकथात्मक प्रसिद्ध ग्रन्थों के प्रणयन के बाद रचित होने पर भी तुलसी का 'मानस' स्वतन्त्र एवं उत्कृष्ट महाकाव्य के रूप में सम्भावनीय है, उसी प्रकार कालिदास के कारण लब्ध-प्रतिष्ठ इतिवृत्त को लेकर रचित नन्निचोड कवि की कृति भी समादरणीय है। नन्निचोड ने अपने काव्य को अष्टादश वर्णनों से परिपूर्ण, दश प्राणों से सप्राण, नवरसभावभरित, षट्त्रिंशत् अलंकार-अलंकृत रमणीय 'दिव्यकथा' 'प्रबन्ध' 'काव्य' 'नानारुचिरवस्तुविस्तरित उत्तम काव्यरत्न' तथा 'कथा' भी कहा है। काव्यों को कथा कहने की प्रवृत्ति हिन्दी एवं अपभ्रंश में भी देखी जा सकती है। तुलसी ने मानस को तथा विद्यापति ने 'कीर्तिलता' को 'कथा' कहा है।

कविवर नन्निचोड के समय के विषय में विद्वानों में मतैक्य नहीं है। श्रीपाद लक्ष्मीपति शास्त्री के अनुसार तेरहवीं शताब्दी का चौथा चरण एवं चौदहवीं सदी का प्रथम चरण इस महाकवि का जीवनकाल है। कुमार-संभव महाकाव्य द्वादश आश्वासों में विभक्त है। पूरी रचना 2005 छन्दों में समाप्त हुई है। यह काव्य कवि के धर्मगुरु तथा कालामुख शैव-संप्रदाय के आचार्य मल्लिकार्जुन को भक्तिपूर्वक समर्पित किया गया। मंगलाचरण के रूप में कवि ने शिवभक्तिपरक दृष्टिकोण के अनुरूप शिव की वन्दना प्रधान रूप से तथा विष्णु, ब्रह्मा, सूर्य, गणेश, कार्तिकेय, कामदेव, हैमवती एवं भारती की वन्दना गौण रूप से की है।

इस महाकाव्य के आधारग्रन्थ कालिदास एवं उद्भट के कुमारसंभव हैं। गणेश जी की उत्पत्ति का आख्यान शैवागमों से गृहीत माना जाता है। संस्कृत के विभिन्न ग्रन्थों से गृहीत छन्दों के भावों को कवि ने प्रसंगवश कई स्थानों पर निक्षिप्त किया है, जिससे कवि के वैदुष्य का परिचय हमें मिलता है। इसके अतिरिक्त दर्शन, आगम, नृत्य, अभिनय, धर्मशास्त्र आदि से संबंधित बहुज्ञता की भी विवृति इसमें हुई है। कवि ने स्पष्ट शब्दों में कहा है कि चौंसठ कलाओं में पारंगत कवि ही उत्कृष्ट काव्य की रचना में समर्थ होता है।

इस 'कुमारसंभव' के कवित्व-सौन्दर्य के उदाहरण-स्वरूप निम्नलिखित अवतरण दृष्टव्य है—"वसन्त के समागम से सहकारवृक्षरूपी लतांगी पुष्पों के मन्दहास से, भौंरों के मंजुगान से, शुकसमुदाय की मीठी बातों से. कोंपलों

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

की रागलीला से, कोयल की मधुर ध्वनि से, मयूररूपी केशभार से तथा झड़ते पत्तों की खिसकती मेखला से अत्यन्त मनोहर लगी ।[1]"

पांडुरंगमाहात्म्य

तेलुगु साहित्य के क्षेत्रमहिमा-प्रतिपादक महाकाव्यों में कविता-वैभव की दृष्टि से इसका प्रथम स्थान है। तेलुगु के पंच महाकाव्यों के अन्तर्गत इसकी गणना की जाती है। क्षेत्रमहिमा संबधी ग्रन्थों में साधारणतया धार्मिक अंशों का बाहुल्य होता है और निम्न कोटि की काव्य-प्रतिभा दिखाई पड़ती है। साहित्यिक मूल्य बहुत कम और धार्मिक महत्त्व अधिक होता है। किन्तु इस महाकाव्य की प्रतिष्ठा साहित्यिक दृष्टि से ही बनी हुई है। महाकाव्य-रचना की प्रवृत्ति के वशीभूत होकर ही इसका प्रणयन किया गया था। पौराणिक तत्वों एवं पुराणों की रचना-विधि का प्रभाव इस पर होने पर भी इसे पुराण नहीं कहा जा सकता। "अभिनव-प्रबन्ध-निर्माण-कौतूहलायत्तचित्त" से इसकी रचना हुई और कवि के शब्दों में यह 'परमभागवतचरित्र' है।[2] आलंकारिक परिनिष्ठत भाषा-शैली, प्रसंगानुसार संयोजित सुन्दर वर्णन, आश्वासबद्धता, सजीव रूप में कथाकथन तथा सुन्दर पात्रकल्पना के आधार पर इसको महाकाव्य मान सकते हैं।

इस काव्य के रचयिता तेनालि रामकृष्ण हैं, जिनका समय सोलहवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध माना जाता है। कवि ने इस ग्रन्थ की रचना विरूरि वेदाद्रि मन्त्री की अभ्यर्थना से करके उसी मन्त्री को समर्पित किया। इस काव्य में रामकृष्ण कवि को 'कविजन-सहकारावली-वसंतोत्सव-सूक्तिनिधि' एवं शारदा का साकार रूप माना गया है।[3] आश्रयदाता ने कवि को कर्पूरतांबूल प्रदान करके अभ्यर्थना की थी कि वे काव्य-रचना करें। उस तांबूल में वाग्देवी की अधरकान्ति के समान लाल सुपारी के कण, शारदा के कपोलों के सदृश कोमल स्वच्छ पान तथा वाणी के शब्दों की भांति सुगन्धित कर्पूर के टुकड़े थे।[4] इस काव्य को पांच आश्वासों में विभक्त किया गया। पूरी रचना 1301 छन्दों में समाप्त हुई है। काव्यादि में निबद्ध मंगलाचरण में श्रीकृष्ण, श्रीदेवी, ब्रह्मा, शारदा, शंकर, पार्वती, विष्वक्सेन, गरुड़ तथा शेषनाग की वन्दना के साथ

---

1. कुमारसंभव, 4—102
2. पांडुरंगमहात्म्य, 1—18,19
3. वही, 1—22, 27
4. वही, 1—29

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

आश्रयदाता के प्रति आशीर्वाद भी है। व्यास, वाल्मीकि, नन्नयभट्ट आदि सुकविजनों की वन्दना, कुकवि-निंदा, वैष्णवजनों की वंदना तथा गुरुवन्दना की गयी है। कृतिपति का वर्णन एवं उनका वंशवर्णन भी किये गये हैं।

'पांडुरंगमाहात्म्य' की कथा के वक्ता-श्रोता हैं शिव-कार्तिकेय, शिव-नारद एवं शिव-पार्वती। इसमें कवि ने पुंडरीक मुनि का आख्यान, निगम शर्मा की कथा, राधा का वृत्तान्त, सुशीला का आख्यान आदि भिन्न-भिन्न कथाओं में एकसूत्रता का संपादन करके, सब के माध्यम से पांडुरंग भगवान और पुंडरीक क्षेत्रमहिमा का प्रतिपादन किया है। प्रतिपाद्य विषय भक्ति होने के कारण इस प्रबन्ध का मुख्य रस भक्ति है। निगम शर्मा तथा सुशीला के प्रसंग बहुत ही आकर्षक बन पड़े हैं। ये चरित्र कवि के पात्र-कल्पना-कौशल के उदाहरण हैं। परम्परा इस कवि की प्रशंसा 'शब्द-विन्यास' के आधार पर करती आयी है। चमत्कारोत्पादक अर्थों की व्यंजना की दृष्टि से कवि ने शब्द-प्रयोग किया है। कवि की वैष्णव-धर्म-भावना इस काव्य में मुखरित हुई है। वक्ता-श्रोता के रूप में शिव-पार्वती की योजना, शिव के द्वारा विष्णु का ध्यान वर्णित करना और मंगलाचरण में शिव-पार्वती की वन्दना आदि कवि के समन्वयवादी दृष्टिकोण को प्रकट करते हैं। इस महाकाव्य में काशीनगर, मध्याह्न, राधा का नख-शिख, उद्यान आदि सुन्दर वर्णनों की योजना है।

इस महाकाव्य के कवित्व-वैभव को समझने के लिए नमूने के तौर पर एक पद्य का भावार्थ प्रस्तुत किया जा रहा है—"हे गुणभद्रा तुंगभद्रा नदी! रत्नाकर ऊपर उठे हुए ऊँचे तरंगरूपी हस्तों से यदि तुम्हारा स्पर्श करके सुख पायेगा तो गंगा से मिलने की इच्छा नहीं करेगा, यमुना से आनंद-भोग नहीं करेगा और कावेरी को अपनी रानी के रूप में स्वीकार नहीं करेगा।[1]"

निर्वचनोत्तर रामायण

तेलुगु साहित्य में रामकथा के आधार पर विरचित कई महाकाव्य उपलब्ध होते हैं। लक्षणग्रन्थों में प्राप्त कतिपय छंदों के आधार पर मान सकते हैं कि कुछ बहुमूल्य रामकथात्मक महाकाव्य काल के गर्भ में विलीन हो गये हैं। उपलब्ध महाकाव्यों में तिक्कनामात्यकृत 'निर्वचनोत्तर रामायण' का महत्त्व कई दृष्टियों से है। उस समय में प्रचलित गद्यपद्यात्मक मिश्रित शैली के अपवाद-स्वरूप केवल छन्दात्मक (गद्यरहित) रूप में इसकी रचना की गयी है। कवि ने स्पष्ट शब्दों में इसको महाकाव्य स्वीकार किया है।

---

1. पांडुरंगमाहात्म्य, 1—139

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

डॉ. रामकोटि शास्त्री का मत है कि कवि के द्वारा प्रयुक्त, यह महाकाव्य शब्द किसी निर्दिष्ट अर्थ का बोधक नहीं है। 'महा' शब्दांश इस काव्य की विस्तृति से संबंधित प्रतीत होता है। इस आलोचक का मत है कि यह कृति दो लघुकाव्यों का संग्रथन है।[1] ठीक यही मत आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी ने 'साकेत' के सन्दर्भ में व्यक्त किया है।[2]

तिक्कनामात्य का समय ईसा की तेरहवीं शताब्दी माना जाता है और यही इस महाकाव्य का भी रचनाकाल है। श्री मधुनापंतुल सत्यनारायण शास्त्री के अनुसार यह महाकाव्य है। वाल्मीकि रमायण के उत्तरकाण्ड की कथा को आधार बनाकर स्वतंत्र ढंग से कवि ने इसको सुखान्त बनाया, जबकि आधार-ग्रन्थों में यह विषादान्त रूप में है। संग्रह-त्याग की प्रवृत्ति से इतिवृत्त को काव्योचित नवीन रूप प्रदान किया गया है।[3] इस महाकाव्य की रचना कवि के सखा तथा आश्रयदाता नरेश मनुमसिद्धि की अभ्यर्थना से की गयी। कवि और आश्रयदाता का संबंध निकटतम स्नेहपूर्ण संबंध था, क्योंकि मनुमसिद्धि नरेश तिक्कना को मामा कहकर संबोधित करते थे। जब मनुमसिद्धि कालान्तर में, शत्रुओं के कारण राज्यभ्रष्ट हुआ तो काकतीय नरेश गणपति देव की सहायता से तिक्कना ने फिर उनको राज्य दिलाया था। हिन्दी साहित्य में केशव-दास के संबंध में प्रसिद्ध है कि उन्होंने अपनी कवित्व-चातुरी से इन्द्रजीत सिंह पर अकबर के एक करोड़ रुपये का जुर्माना माफ करा दिया था।

'निर्वचनोत्तर रामायण' में दस आश्वास हैं। पूरी रचना 1291 छन्दों में समाप्त हुई है। तेलुगु के आदि कवि नन्नय की भांति इस कवि ने मंगलाचण के अन्तर्गत संस्कृत श्लोक की योजना की है। इसमें आश्रयदाता के प्रति आशीर्वाद किया गया है। कवि ने कुकविनिन्दा की है, अपना परिचय दिया और काव्य-रचना विषयक मान्यताओं को प्रकट किया है। आश्रयदाता का वंशवर्णन भी किया गया है।

अपनी काव्यप्रतिभा और साहित्य-विषयक मान्यताओं के सम्बन्ध में तिक्कनामात्य के कथन का सारांश इस प्रकार है। वे अमल एवं उदात्त मनीषा से युक्त हैं, उभय काव्यों (संस्कृत एवं तेलुगु) की प्रौढ़ता के अनुरूप रचनाशिल्प में पारंगत तथा कलाविद् हैं। सौरभ का प्रसार करनेवाले गन्धवाह की भाँति कवि को आह्लादक शब्दों का विधान करना चाहिए। अनुपयुक्त शब्दों के

1. तिक्कन काव्यशिल्पमु, पृ. 19
2. आधुनिक साहित्य, भूमिका, पृ. 19
3. तेलुगु लो रामायणालु, पृ. 32

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

प्रयोग से रसभंग करते हुए, पुराने शब्दों के व्यवहार में अपनी निपुणता दिखाकर किसी भी प्रकार से सहृदयों को सन्तुष्ट करने में अक्षम कवि परिहास-पात्र बनते हैं। तेलुगु में कविता करने के इच्छुक कवि को अर्थोपयुक्त शब्द-विन्यास से छन्दशास्त्रानुमोदित यतिनियम एवं प्रासनियम का पालन करना चाहिए। किसी भी कवि को अपनी कृति बहुत सुन्दर लगती है। अतः सरस कवियों को जब तक रिझा नहीं सकता, तब तक परिणत कवीश्वर अपने काव्यगुणों में विश्वास नहीं करता। मैं तेलुगु भाषा की प्रकृति के विरुद्ध संस्कृत को अपने काव्य में स्थान नहीं दूँगा। सुललित एवं सुन्दर पद्यों से कथा का पूर्वापर क्रम सुगठित रूप में, छोटी छोटी कड़ियों को जोड़ने से बनी हार की भाँति होना चाहिए।[1]

कवि ने पूर्वरामायण की कथा को संक्षेप में पहले आश्वास में वर्णित किया। इसके उपरान्त जनक और महर्षियों द्वारा राजसभा में राम का अभिनन्दन किया गया है। राम की इच्छा को पूर्ण करने के लिए अगस्त्य जी ने विस्तारपूर्वक रावण की वंशपरम्परा, जन्म, कर्म आदि को सुनाया। राम के राजतिलक में आगत ऋषियों, सुग्रीव, विभीषणादि को विदा करना बाद का प्रसंग है। सीता-राम का संयोग श्रृंगार, सीता का गर्भवती होना, सीता के द्वारा गंगातट पर विहार करने की इच्छा प्रकट करना, लोकनिन्दा, सीता-परित्याग, राम की यज्ञशाला में कुश-लव का रामायण-गान, वाल्मीकि के प्रयास से सीता-राम का मिलन, सीता का भू-प्रवेश, राम का राज्यपालन—इन मुख्य घटनाओं की योजना इस महाकाव्य में की गयी।

कथावस्तु को रोचक बनाने के लिए तिक्कनामात्य ने अयोध्यावर्णन, कैलासवर्णन, अन्धकारवर्णन, चन्द्रिकावर्णन, उद्यान विहारवर्णन, जलविहारवर्णन आदि को संयोजित किया है। इस कवि की प्रवृत्ति अतिशय अलंकरण की नहीं है। कथानक के समुचित निर्वाह पर ही उनका ध्यान लगा था। इसलिए वस्तु एवं वर्णन का अनुपात औचित्यपूर्ण है। श्रीराम, सीता, लक्ष्मण आदि के चरित्रों को उदात्त और गम्भीर रूप में चित्रित किया गया है। संयोग श्रृंगार, वीर एवं करुण रसों का उचित परिपाक यथास्थान किया गया है। तिक्कनामात्य की शैली संवादात्मक एवं नाटकीय शैली है। प्रस्तुत महाकाव्य में पात्रों के वचन, उनके स्वभाव और प्रसंग के उपयुक्त हैं।

---

1. निर्वचनोत्तर रामायण, 1–11

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

तिक्कनामात्य की कविता के उदाहरण-स्वरूप एक छन्द का भाव द्रष्टव्य है ।

"सुन्दर बगुलों की मालाओं की भाँति दाँतों की शोभा से, मेघगर्जन के समान बृंहितनाद से, बौछार के सदृश दान-जल से काली मेघमालाओं की तरह चलायमान हाथी-समुदाय अयोध्यानगर में शोभित होते हैं ।"[1]

रामाभ्युदय

रामभद्र कवि द्वारा विरचित यह महाकाव्य युगानुरूप वर्णनात्मक शास्त्रीय शैली और अलंकार-बहुल प्रौढ़ भाषा-प्रयोग का अच्छा उदाहरण है । स्वर्गीय चेल्लपिल्ल वेंकटशास्त्री के अनुसार—"इस काव्य को उतना प्रचार नहीं मिला, जितना वसुचरित्रकार की कविता को मिला । रामभद्र की कविता को इस आधार पर कम सरस नहीं समझना चाहिए । यह कविता बहुत ही सरस है । ······बहुत से कवियों के द्वारा रामायण के इतिवृत्त को स्वीकार किया जाना उसकी ऐहिक-पारलौकिक कल्याणदायकता के कारण ही नहीं, बल्कि उस कथा में सभी रसों के परिपाक के लिए उपयुक्त विस्तृत अवकाश के हेतु भी है । इस महाकवि ने उन सब रसों की सुन्दर व्यंजना की है ।"[2] श्री मधुनापंतुल सत्यनारायण शास्त्री की स्वीकारोक्ति है—"रामाभ्युदय की कविता प्रशंसनीय प्रबन्धकाव्य के अनुरूप प्रौढ़ता और माधुर्य से युक्त है । लोकज्ञता को व्यक्त करनेवाले वर्णनों की योजना में यह कवि बड़ा ही समर्थ है । महाप्रबन्ध के रूप में अवतरित रामायण ही रामाभ्युदय है ।"[3]

'रामाभ्युदय' का रचनाकाल लगभग 1540 माना जाता है । यह काव्य आठ आश्वासों में विभाजित है । पूरी रचना 1850 छन्दों में समाप्त हुई है । समसामयिक महाकाव्यों की तरह इसमें चम्पू शैली एवं छन्दो वैविध्य दृष्टिगत होते हैं । कवि ने आश्वासान्त पुष्पिकाओं में इसको 'महाप्रबन्ध' कहा है और 'महाप्रबन्ध' 'महाकाव्य' का ही पर्यायवाची है । इसमें वाल्मीकि रामायण के षट् काण्डों में वर्णित कथा को ग्रहण किया गया है । उत्तरकाण्ड की कथा को छोड़ दिया गया है ।

इस महाकाव्य में कविवर रामभद्र ने वर्णनों एवं प्रसंगों की योजना में अपनी प्रतिभा को प्रदर्शित किया है । ऋष्यश्रृंग का वृत्तान्त, श्रीराम-जन्म एवं

---

1. निर्वचनोत्तर रामायण, 1-53
2. सारस्वत व्यासमुलु (प्रथम भाग), पृ. 261
3. तेलुगु लो रामायणालु पृ. 44

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

सीता-राम का संयोग शृंगार आदि प्रसंगों का निर्वाह रमणीय ढंग से किया गया है। इस महाकाव्य के कवित्व-सौन्दर्य के उदाहरणस्वरूप एक छन्द का भावार्थ प्रस्तुत किया जा रहा है।

"अशोकवन में राक्षस-स्त्रियों के बीच में दुःखी सीतादेवी उलूक-महिलाओं के बीच आधी रात में फँस गयी चकवी की भाँति, जरठ बिडालिका-समुदाय में शुकी की तरह, मदमस्त मयूरमण्डल के मध्य सर्पकन्या के समान तथा कपटी शिकारी भीलनियों के बीच हिरणी के सदृश थी।"[1]

1. रामाभ्युदय 6–130

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

चतुर्थ अध्याय

वस्तुयोजना

काव्यग्रन्थों में वस्तु कवियों की वैयक्तिक रुचि, प्रवृत्ति, दृष्टिकोण और लक्ष्य के अनुरूप इतिहास, पुराण आदि पूर्ववर्ती प्रतिष्ठित वाङ्मय से अथवा साधारण जनता में व्यवहृत लोककथाओं से गृहीत होकर कवि की प्रतिभा के अनुसार कतिपय काल्पनिक प्रसंगों, रसात्मक वर्णनों तथा संवादों से विभूषित होकर विविध रूपों में संयोजित होती है। एक ही इतिवृत्त विभिन्न कवियों के द्वारा स्वीकृत होने पर भी, उसकी योजना एक ही प्रकार की नहीं होती है। वास्तव में जितने कवि हैं, उतने प्रकारों से वस्तु विन्यस्त होती है। एक ही कवि की विविध रचनाओं में वस्तुयोजना सम्बन्धी वैविध्य दृष्टिगत हो सकता है, क्योंकि श्रेष्ठ कवि निरन्तर प्रयोगशील होता है। प्रथम श्रेणी का कलाकार अपना स्वतन्त्र व्यक्तित्व रखता है। वह दूसरों का अनुकरण नहीं करता, अपनी ही पूर्ववर्ती रचनाओं का अनुकरण परवर्त्ती रचनाओं में नहीं करता। इस प्रकार निरन्तर नवीनता का अन्वेषण एव प्रयोगशीलता में साहित्य का सौन्दर्य अवस्थित है।

तेलुगु साहित्य में नन्निचोड नामक कवि ने अपने 'कुमारसंभव' में 'वस्तु-कविता' शब्द का प्रयोग कई बार किया है। उक्त कवि ने वाल्मीकि के लिए 'वस्तुकाव्याब्ज-रवि' विशेषण प्रयुक्त किया। भारवि को वस्तुकविता में जनाराधित कहकर भारवि शब्द के श्लेषार्थ के बल पर सूर्य से तुलना की और उद्भट के काव्य को गूढ़वस्तुमय काव्य बताया।[1] अपनी कविता को वस्तु-कविता स्वीकार किया।[2] साथ ही वेदव्यास, कालिदास तथा बाणभट्ट की प्रशंसा की। एक और स्थान पर पार्वती के कानों की तुलना सुकवि के काव्य से करते हुए कान तथा काव्य दोनों पक्षों में 'सकल-वस्तु-संपूर्णालंकार' शब्द का प्रयोग सार्थक रीति से किया।[3] इतना ही नहीं, कथा से युक्त, वर्णनों से अलंकृत, सूक्तियों, रसपरिपाक और उत्कृष्ट भावों से परिपूर्ण कविता को वस्तुकविता का अभिधान दिया है।[4] इससे यही निष्कर्ष निकलता है कि केवल कथावस्तु की योजना ही काव्य में अपेक्षित नहीं है, प्रत्युत् उस कथा का समुचित ढंग से रसात्मक रीति से वर्णनों एवं अलंकारों से विभूषित करके विन्यस्त करने में कवि तथा काव्य की सफलता है।

साहित्य-शास्त्र के ग्रन्थों में वस्तु का अभिप्राय कथावस्तु है। श्री वेदं

---

1. कुमारसंभव, 1–17, 20, 21
2. वही, 1–49
3. वही, 3–67
4. वही, 1–36

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

वेंकटराय शास्त्री का मत है कि महाकाव्य कथावस्तु की प्रधानता से युक्त काव्यरूप है और ऐसी वस्तु का आश्रय ग्रहण करके जो कविता प्रवर्तित होती है, वही वस्तुकविता है।[1] श्री रामलिंगेश्वर राव के अनुसार भी इतिवृत्त-प्रधान या कथावस्तु-प्रधान कविता को वस्तुकविता मान सकते हैं। इतिवृत्त के प्राधान्य की रक्षा करते हुए अलंकारों, दशविध प्राणों (काव्यगुणों), नवरसों एवं अष्टादश वर्णनों का प्रयोग नन्निचोड के काव्य में किया गया है। अर्थात् अलंकार आदि उपादान कथावस्तु को रमणीय रूप में प्रदर्शित करने में सहायक हुए हैं।[2] इस प्रकार नन्निचोड ने वस्तुयोजना के महत्त्व का प्रतिपादन विविध प्रकारों से करके अपने सिद्धान्त के उदाहरण-स्वरूप 'कुमारसंभव' का प्रणयन किया है।

परम्परागत स्रोतों से कथा के सूत्रों का चयन करते हुए भी उन सूत्रों के साथ मौलिक उद्भावनाओं का सामंजस्य स्थापित करने से कोई भी काव्य स्वतन्त्र बन सकता है। कविवर नन्निचोड ने इस तथ्य की ओर भी संकेत किया है। कवि के इस आशय की प्रतिपादक शब्दावली इस प्रकार है—"अस्मदीयानून प्रतिभार्णवोदीर्ण रुचिर वस्तुविस्तारितोत्तम काव्यरत्न-विभूषणंबु[3]" अर्थात् कवि की श्रेष्ठ प्रतिभारूपी समुद्र से उदित सुन्दर वस्तु से विस्तृत उत्तम काव्यरत्न यह 'कुमारसंभव' है। श्री वेदं वेंकटरायशास्त्री के अनुसार कवि के उपर्युक्त कथन से ध्वनित होता है कि इस काव्य में बहुत कुछ कवि की मौलिक उद्भावना है और साथ ही वस्तु के कारण काव्य के विस्तारित होने का प्रतिपादन भी है। आचार्य कुन्तक ने केवल कथा के आश्रय की अपेक्षा सरस सन्दर्भों की योजना पर बल देते हुए कहा है—

"निरन्तर रसोद्गार गर्भ सन्दर्भ निर्भराः।
गिरः कवीनां जीवन्ति न कथामात्रमाश्रिताः॥"[4]

कवियों तथा काव्यशास्त्रियों ने वस्तु के तीन प्रकार किये हैं, जैसे प्रख्यात, उत्पाद्य तथा मिश्र। पिनवीरभद्र नामक कवि के मत में—"प्रख्यात, मिश्रबन्ध तथा उत्पाद्य के भेद से तीन प्रकार की कथावस्तु होती है। प्रख्यात इतिवृत्त को ग्रहण करके काव्य-रचना करने से कवि तथा श्रोता दोनों को यश मिलता है।[5]" हिन्दी तथा तेलुगु के अधिकांश कवियों ने उत्पाद्य कथाओं की अपेक्षा

---

1. नन्निचोडुनि कवित्वमु, पृ. 191
2. नन्निचोडुनि वस्तुकविता, पृ. 11
3. कुमारसंभव, 1–59
4. वक्रोक्तिजीवित, 4–11
5. शृंगार शाकुन्तलमु, 1–27

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

प्रख्यात इतिवृत्त का ही अवलम्ब लेकर अपनी प्रतिभा को प्रकट किया है। रामराजभूषण का कथन है कि केवल काल्पनिक कथाएँ कृत्रिम रत्न हैं और आद्य सत्कथाएँ समुद्र के गर्भ से तत्काल निकाले हुए रत्न हैं। सत्कवि की कल्पना से विभूषित प्राचीन इतिवृत्त सान पर चढ़ाकर परिष्कृत बनाये गये रत्न हैं। इस कथन में अधिकांश मध्यकालीन साहित्यिकों की मान्यता का प्रतिफलन है।

महाकाव्य का लक्षण-निरुपण करनेवाले संस्कृत के आचार्यों ने वस्तुसंगठन के विषय में भी कुछ निर्देश दिये हैं। भामह, दंडी तथा विश्वनाथ कविराज ने पंचसंधियों की योजना को आवश्यक मानकर क्रमबद्ध रूप में इतिवृत्त-निर्वहण का महत्त्व प्रतिपादित किया। भोज के 'श्रृंगारप्रकाश' में निरूपित प्रबन्धगुणों एवं प्रबंधालंकारों में कुछ वस्तु-संविधान से संबंधित हैं। असंक्षिप्त ग्रन्थत्व, अनतिविस्तोर्णसर्गत्व तथा श्लिष्टसन्धित्व ऐसे ही गुण हैं। डॉ. राघवन ने इन गुणों की व्याख्या की है। उनके अनुसार महाकाव्य में महान इतिवृत्त की योजना के कारण उसका आकार यथेष्ट विस्तृत होना चाहिए। ऐसा काव्य लघुकाव्य कभी नहीं हो सकता। यह गुण भोज के शब्दों में असंक्षिप्त-ग्रन्थत्व कहा गया है। अनति विस्तीर्ण-सर्गत्व के विषय में इस विद्वान ने लिखा है कि महाकाव्य को बहुत विस्तृत भी नहीं होना चाहिए, क्योंकि उस परिस्थिति में उसे कोई नहीं पढ़ता और इसलिए सर्ग बहुत लंबें न हों। जिस प्रकार विभिन्न शब्द परस्पर मिलकर वाक्य का निर्माण करते हैं, उसी प्रकार काव्य के सर्ग परस्पर संबंधित होकर काव्य के समग्र सौन्दर्य के पोषक होने चाहिए। इस गुण को भोज ने श्लिष्टसंधित्व कहा है।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार प्रबन्धकाव्य के भीतर इतिवृत्त, वस्तु-व्यापार-वर्णन, भाव-व्यंजना और संवाद होते हैं। इन सब अवयवों के उचित समावेश के कारण ही रामचरितमानस एक सफल प्रबन्धकाव्य है। दूसरी बात यह कि इतिवृत्त की श्रृंखला भी कहीं टूटती नहीं है। इसके अलावा मानस में कथा के मार्मिक स्थलों की पहचान भी है।[1] जायसी के सन्दर्भ में शुक्ल जी ने अपने मत की व्याख्या प्रस्तुत की जैसे—"प्रबन्धकाव्य में बड़ी भारी बात है संबंधनिर्वाह···संबंधनिर्वाह पर विचार करते समय पहले तो यह देखना चाहिए कि प्रासंगिक कथाओं का जोड़ आधिकारिक वस्तु के साथ अच्छी तरह मिला हुआ है या नहीं, अर्थात् उनका आधिकारिक वस्तु के

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ. 131

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

साथ ऐसा संबंध है या नहीं, जिससे उसकी गति में कुछ सहायता पहुँचती हो। जो वृत्तान्त इस प्रकार संबद्ध न होंगे, वे ऊपर से व्यर्थ ठूसे हुए मालूम होंगे।"[1]

आधिकारिक वस्तु की योजना के विषय में शुक्ल जी ने यह प्रश्न उठाया है कि प्रबन्धकाव्य में क्या जीवन-चरित के समान उन सब बातों का विवरण होना चाहिए जो नायक के जीवन में हुई हैं। इस प्रश्न के उत्तर में उन्होंने स्वयं कहा कि संस्कृत के प्रबन्धकाव्यों को देखने से पता चलता है कि कुछ में तो इस प्रकार का विवरण होता है और कुछ में नहीं। कुछ की दृष्टि तो व्यक्ति पर होती है और कुछ की किसी प्रधान घटना पर।[2] शुक्ल जी यह भी मानते थे कि प्रबन्ध के वस्तु-विन्यास की समीक्षा बहुत कुछ दृश्यकाव्य के वस्तुविन्यास के समान ही होनी चाहिए। घटनाप्रधान प्रबन्धकाव्य में उन्हीं वृत्तान्तों का सन्निवेश अपेक्षित होता है जो साध्य कार्य के साधनमार्ग में पड़ते हैं, अर्थात् जिनका उस कार्य से सम्बन्ध होता है। शुक्ल जी का एक और निर्देश है कि सम्बन्ध-निर्वाह के अन्तर्गत ही गति के विराम का भी विचार कर लेना चाहिए।[3]

जैसे महाकाव्यों के वर्गीकरण के अध्याय में कहा गया है, तेलुगु एवं हिन्दी महाकाव्यों की कथावस्तु पौराणिक, ऐतिहासिक तथा लोककथात्मक स्रोतों से ग्रहण की गयी। शुद्ध काल्पनिक कथानक भी एक-दो काव्यों में दृष्टिगत होता है। परन्तु साधारणतया कवियों की प्रवृत्ति प्रख्यात इतिवृत्त को संयोजित करने की रही है। पौराणिक इतिवृत्त के पुनः रामायण-सम्बन्धी, महाभारत-संबंधी, हरिवंशपुराण, मार्कण्डेयपुराण आदि से सम्बन्धित—इस प्रकार अवान्तर भेद किये जा सकते हैं। ऐतिहासिक वस्तु के अन्तर्गत पृथ्वीराज, हम्मीर, राजसिंह, कृष्णदेवराय आदि से सम्बन्धित वस्तु गणनीय है। हिन्दी के सूफी प्रेमाख्यानक काव्यों पर लोककथा का प्रभाव दृष्टिगत होता है। शुद्ध काल्पनिक कोटि का श्रेष्ठ उदाहरण 'कलापूर्णोदय' का इतिवृत्त है।

'रामचरितमानस' और 'रामचन्द्रिका' रामायण की कथा के आधार पर विरचित हुए हैं। मानस में वाल्मीकीय रामायण के उत्तरकाण्ड की कथा को बिल्कुल छोड़ दिया गया। तेलुगु के 'रामाभ्युदय' में भी षट्काण्डपर्यन्त कथा को लेकर काव्य की परिसमाप्ति राम के राज्याभिषेक से की गयी है।

---

1. जायसी-ग्रन्थावली की भूमिका पृ 70
2. जायसी ग्रन्थावली की भूमिका, पृ. 70–71
3. वही, पृ. 73

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

'रामचन्द्रिका' और 'रंगनाथरामायण' में उत्तरकाण्ड की कथा भी निबद्ध हुई है। 'निर्वचनोत्तर रामायण' तथा पापराजकृत 'उत्तररामायण' में केवल उत्तरकाण्ड की कथावस्तु और आदि में बहुत संक्षेप में पूर्वरामायण की कथा वर्णित है। इसलिए प्रधानता उत्तररामकथा की है। इस प्रकार आलोच्य महाकाव्यों में संयोजित रामकथा के तीन प्रकार हैं।

तुलसीदास ने 'नानापुराण निगमागम सम्मतं यद् रामायणे निगदितं क्वचिदन्यतोपि' कहकर काव्य के आरम्भ में ही अपनी दृष्टि का परिचय दिया है। पं. रामनरेश त्रिपाठी और बाबू श्यामसुन्दरदास, कवि के इस मधुसंचय पर अत्यन्त मुग्ध हुए हैं। अध्यात्मरामायण को तो मानस में प्रायः आधार माना गया है। वाल्मीकि रामायण तथा अध्यात्म रामायण में मुख्य अन्तर यही है कि प्रथम में राम का दिव्यत्व व्यंग्य है तो द्वितीय में वाच्य बन गया है। अपने भक्तिपरक दृष्टिकोण के अनुरूप तुलसी ने इस द्वितीय पद्धति का अनुगमन किया है। डॉ. विजयेन्द्र स्नातक के शब्दों में "रामचरितमानस कथा कौशल की दृष्टि से इतना पुष्ट है कि उसका प्रचार और प्रसार अपने मूलाधार ग्रन्थों से भी कई गुना अधिक है। मानस की कथा तो तुलसी ने जिस रूप में पल्लवित किया है, उसका रूप ही कुछ निराला है। वाल्मीकि रामायण, अध्यात्म रामायण तथा अन्य संस्कृत ग्रन्थों से कथा का स्रोत ग्रहण करके भी तुलसी ने उसे अपनी उद्भावना शक्ति से एकदम नवीन कलेवर दे दिया है।"[1]

केशव की 'रामचन्द्रिका' में कथा के सूत्र वाल्मीकि रामायण, हनुमन्नाटक, प्रसन्नराघव, उत्तररामचरित, अध्यात्मरामायण आदि से गृहीत हुए हैं। प्रायः कथा के स्रोतों के समान होते हुए भी केशव की वस्तुयोजना तुलसी की वस्तु-योजना से भिन्न बन गयी है। जहाँ तुलसी में सांगोपांग रूप में कथा उपस्थित करने का दृष्टिकोण प्रमुख रहा है, वहाँ केशव में संक्षेप एवं क्षिप्रता की प्रवृत्ति प्रमुख है।

तेलुगु साहित्य में रंगनाथ रामायणकार ने कतिपय स्थलों पर अपनी मौलिकता का प्रदर्शन किया है। विवाह आदि सामाजिक रीति-रिवाजों की योजना में अध्यात्म रामायण, वाल्मीकि रामायण आदि का मात्र अनुवाद प्रस्तुत न करके अपने समय में प्रचलित लोकाचारों का वर्णन सरस ढंग से किया है। अपने भक्तिपरक दृष्टिकोण के अनुरूप राम के अवतारी पुरुष होने का उद्घाटन करनेवाले प्रसंगों की योजना इस कवि ने की।

---

1. तुलसीदास : एक विश्लेषण, पृ. 36

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

श्रीकृष्णदेवराय के युग में प्रणीत 'रामाभ्युदय' वस्तुयोजना की दृष्टि से रंगनाथरामायण से पृथक कोटि का महाकाव्य है। रंगनाथरामायण का लक्ष्य यथासंभव रामचरित सम्बन्धी अधिक से अधिक प्रसंगों की योजना करना रहा है तो 'रामाभ्युदय' के कवि का लक्ष्य मुख्य प्रसंगों का चयन करके रामचरित सम्बन्धी महाकाव्य का प्रणयन अलंकृत शैली में करना था। प्रथम में सर्व-साधारण का अनुरंजन, लोकतत्व एवं गीतशैली का प्रभाव है तो दूसरे में प्रौढ़ पाण्डित्य की अभिव्यक्ति प्रमुख है।

तेलुगु में वाल्मीकि रामायण में प्राप्त उत्तरकाण्ड की कथा के आधार पर दो प्रसिद्ध महाकाव्य रचे गये। इनमें से कालक्रम की दृष्टि से प्रथम तेरहवीं शताब्दी का तिक्कनामात्य-प्रणीत 'निर्वचनोत्तर रामायण' है और द्वितीय अठारहवीं शताब्दी का पापराज-विरचित 'उत्तररामायण' है। इन दोनों में सन्दर्भ जोड़ने के लिए पूर्वरामायण की कथा भी संक्षेप में कही गयी है। तिक्कनामात्य की अपेक्षा पापराज अतिशय वर्णन-प्रिय कवि हैं और तिक्कनामात्य अल्पाक्षरों में अनल्पार्थ की व्यंजना के लिए विख्यात रहे हैं। परवर्ती होने के कारण पापराज को तिक्कना के काव्य का अध्ययन करके उस कथा में अतिरिक्त अंश जोड़ने-पल्लवित करने की सुविधा मिली।

वाल्मीकि रामायण के उत्तरकाण्ड में राम के महाप्रयाण की योजना के कारण कथा विषादान्त बन गयी है। किन्तु तिक्कनामात्य की कृति में श्रीराम के द्वारा कुश-लव को शिक्षा-दीक्षा दिलाकर लोकरंजक रीति से राज्यपालन करने तक की कथावस्तु है। इस प्रकार तिक्कनामात्य ने काव्य-नायक के निर्याण की सूचना नहीं देकर अपने काव्य को सुखान्त बनाया। सीता-राम का वनविहार, जलक्रीडा आदि के वर्णनों तथा कथारम्भ में अयोध्या-नगर के बर्णन में स्वकीय कल्पनाओं की समुचित योजना की है।

पापराजकृत उत्तररामायण में यथासम्भव उत्तरकाण्ड की समस्त कथा को अधिक पाठ समझे जानेवाले श्लोकों सहित अनूदित करने का प्रयास लक्षित होता है। बहुत अधिक वर्णनों से अपने काव्य को विभूषित करने की प्रवृत्ति समूचे काव्य में प्रबल रूप में दिखाई पड़ती है। काव्य की परिसमाप्ति में केवल रामनिर्याण ही वर्णित नहीं है, बल्कि वैकुण्ठ नगर का वैभव, भक्तों द्वारा पूजा, इन्दिरा और विष्णु के श्रृंगारपूर्ण अनुभाव, शिव द्वारा विष्णु की स्तुति, लक्ष्मी-विष्णु का प्रणय-कलह आदि का भी सुन्दर विधान है।[1]

1. उत्तररामायण, 8–234-238

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

उत्तररामकथा पर आधारित इन दोनों महाकाव्यों की तुलनात्मक विवेचना करते हुए गडियारं वेंकटशेष शास्त्री जी ने निम्नोक्त सम्मति प्रकट की है–"काव्य का विस्तृत आकार जितना अच्छा है, उतना ही अच्छा काव्य के अन्तर्गत गुणों और औचित्य का विस्तार होना चाहिए। पापराजु की रचना में काव्य तो बहुत विस्तृत हुआ, परन्तु गुण और औचित्य की वृद्धि नहीं हुई। इसके विपरीत तिक्कनामात्य की रचना में गुण और औचित्य की मात्रा अधिक है, परन्तु काव्य का आकार विशाल नहीं है। पापराजु की रचना में गम्भीर शब्दप्रयोगधारा का विलास है, किन्तु तिक्कनामात्य की भांति उचित भाव-स्फोरक शब्दसंधान का अभाव है। एक ही भाव को विविध विन्यासों से पापराजु प्रस्तुत कर सकते हैं, मगर तिक्कनामात्य की भांति विविध भावों को संक्षेप में व्यंग्य-मधुर रीति से अभिव्यक्त नहीं कर सकते।"[1]

महाभारत के आदिपर्व में वर्णित उपरिचर वसु की कथा को लेकर 'वसुचरित्र', मार्कण्डेयपुराण की कथा के आधार पर 'मनुचरित्र', हरिवंशपुराण से कथानक ग्रहण करके 'पारिजातापहरण' और 'प्रभावतीप्रद्युम्न' तथा शिव-पुराण की वस्तु लेकर 'कुमारसम्भव' रचे गये। ये सभी महाकाव्य साहित्यिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं। इनकी कथावस्तु यद्यपि प्रख्यात आधार ग्रन्थों से ग्रहण की गई है, तथापि कवियों की संधान-कुशलता के कारण बिल्कुल नवीन रूप में ढल गयी है। इन काव्यों को इसी आधार पर तेलुगु की स्वतन्त्र कृतियाँ मान सकते हैं। अष्टादश वर्णनों की योजना करते हुए रसात्मक दृष्टि के अनुकूल, मूलकथा में परिवर्तन करके वस्तुविन्यास करने की प्रवृत्ति प्रायः इन सभी काव्यों में समान है।

पौराणिक इतिवृत्तों की अपेक्षा कवियों का ध्यान हिन्दी में ऐतिहासिक वस्तु को लेकर काव्य-रचना करने पर विशेष रूप से केन्द्रित रहा है। आदिकाल के चन्दबरदाई से लेकर उन्नीसवीं शताब्दी के चन्द्रशेखर वाजपेयी तक हिन्दी में ऐतिहासिक महाकाव्यों की अबाध परम्परा रही है। इन ऐति-हासिक महाकाव्यों में इतिहास और कल्पना के सम्मिश्रण से कथावस्तु का निर्माण हुआ है। ऐतिहासिक काव्यों के विवेचन के सन्दर्भ में यह नहीं भूलना चाहिए कि मूलतः ऐसे ग्रन्थों में इतिहासतत्व की अपेक्षा काव्यतत्व या कल्पना-तत्व का प्रबल होना स्वाभाविक है। इसके अतिरिक्त मध्यकाल तक की समयावधि में इतिहास की अवधारणा वर्तमान समय की अवधारणा से भिन्न

1. उत्तररामायण काव्यशिल्पमु, पृ. 254, 255

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

रही है। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के शब्दों में—"वस्तुतः इस देश में इतिहास को ठीक आधुनिक अर्थ में कभी नहीं लिया गया। बराबर ही ऐतिहासिक व्यक्ति को पौराणिक या काल्पनिक कथानायक बनाने की प्रवृत्ति रही है। कुछ में दैवी शक्ति का आरोप करके पौराणिक बना दिया गया है।...... कर्मफल की अनिवार्यता में, दुर्भाग्य और सौभाग्य की अद्‌भुत शक्ति में, और मनुष्य के अपूर्व शक्तिभण्डार होने में विश्वास ने इस देश के ऐतिहासिक तथ्यों को सदा काल्पनिक रंग में रंगा है।"[1]

जहाँ तक हिन्दी और तेलुगु का सम्बन्ध है, कतिपय ऐतिहासिक महाकाव्यों के प्रणेताओं ने अपनी समसामयिक घटनाओं को काव्यात्मक रूप प्रदान करने का प्रयास किया है। काव्यों में वर्णित नायकों से निकट रूप से सम्बद्ध होने के कारण कवियों के लिये तत्कालीन घटनावली का ज्ञान सुलभ था। चन्दबरदायी पृथ्वीराज के, मान राणा राजसिंह के, गोरेलाल छत्रसाल के और सूदन सूरजमल के आश्रित राजकवि थे।

हिन्दी के सूफी प्रेमाख्यानक काव्यों में गृहीत इतिवृत्त मुख्यतः लोकगाथाओं पर आधारित है। उनमें ऐतिहासिक नाम और कुछ कुछ इतिहास सम्मत घटनाएँ भी मिल जाती हैं। इस कोटि का प्रतिनिधि महाकाव्य पद्मावत् में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल प्रभृति विद्वानों ने काल्पनिक तत्व के साथ इतिहास तत्व के अस्तित्व को स्वीकार किया है।

महाकाव्यों में स्वीकृत वस्तु के स्रोतों की समीक्षा के उपरान्त इतिवृत्त की संयोजन-पद्धति अब विचारणीय है। मध्यकाल के प्रायः सभी महाकाव्यों में विस्तृत भूमिका-भाग मिलता है, जिसके अन्तर्गत मंगलाचारण, पूर्वकवि-वंदना, सज्जन-स्तुति, कवि का आत्म-परिचय, आश्रयदाता की प्रशंसा आदि अंशों का समावेश है।

संस्कृत के काव्याचार्यों ने मंगलाचरण के तीन भेद माने हैं, जैसे आशीर्वचन रूप, नमस्कार-रूप तथा वस्तुनिर्देश-रूप। रामचरितमानस के आरम्भ में ही नहीं बल्कि प्रत्येक काण्ड के आदि में मंगलाचरण प्राप्त होता है। मानस का प्रथम श्लोक नमस्क्रिया-रूप मंगलाचरण के लिए उदाहरण है। निम्नोक्त छन्द वस्तुनिर्देशात्मक मंगलाचरण के लिए उदाहरण है—

> **"बन्दउं अवध भुआल सत्य प्रेम जेहि राम पद।**
> **बिछुरत दीनदयाल प्रिय तनु तून इव परिहरेउ॥"[2]**

---

1. हिन्दी साहित्य का आदिकाल, पृ. 77　　2. मानस-बालकाण्ड, 16

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

जहाँ पात्र द्वारा राम का जयजयकार कराया गया है, वहाँ आशीर्वादात्मक मंगलाचरण माना जा सकता है। पृथ्वीराजरासो, हम्मीररासो, छत्रप्रकाश, रामचन्द्रिका आदि में नमस्क्रियात्मक मंगलाचरण मिलता है। पद्मावत में भी मंगलाचरण का विधान है, किन्तु वहाँ पर उसका रूप मानस, रासो आदि के मंगलाचरण से भिन्न है। इस भिन्नता का कारण कवि की सूफ़ी विचारधारा एवं फारसी की मसनवी काव्य-शैली है। तेलुगु के महाकाव्यों में इष्टदेवता की वन्दना के रूप में, आश्रयदाता के प्रति आशीर्वचन के रूप में और काव्य-वस्तु के निर्देश के रूप में मंगलाचरण किया गया है। इस प्रकार काव्यशास्त्र में निरूपित तथा कवि-परम्परा से अनुमोदित मंगलाचरण की योजना आलोच्य भाषाओं के महाकाव्यों में की गई है।

तेलुगु के कतिपय महाकाव्यों में विशेष रूप से कुछ प्रमुख अंशों को निबद्ध करके उनके आधार पर वस्तु को विकसित किया गया है। पूर्वकालीन कवियों के द्वारा संयोजित इन अंशों को किंचित् परिवर्तन के साथ अनन्तरकालीन कवियों ने ग्रहण किया है। इस तरह विविध अंशों के नियोजन से संबंधित एक प्रकार की परंपरा बन गई है। श्री वज्झल चिनसीताराम शास्त्री ने 'शृंगारनैषध', 'शृंगारशाकुतल', 'स्वारोचिषमनुसम्भव' और 'वसुचरित्र' नामक चार प्रमुख महाकाव्यों में समान रूप से प्राप्त अंशों को तालिकाबद्ध रूप में दिखाया है।[1] अर्थात् शृंगारनैषधकार श्रीनाथ से शृंगारशाकुंतल के कर्ता पिनवीरभद्र और इन दोनों से मनुचरित्रकार एवं वसुचरित्रकार पर्याप्त प्रभावित हैं।

रामचरितमानस, रामचन्द्रिका और पद्मावत में विवाह, भोज, युद्ध, नायक-नायिका का विरह आदि प्रसग अवश्य मिलते हैं। तेलुगु महाकाव्य में भी इन प्रसंगों का विधान है, किन्तु भिन्न प्रदेशों की सांस्कृतिक परिस्थितियों के अनुरूप इनमें साम्य के साथ विषमता भी दृष्टिगत होती है। विवाह के अवसर पर तेलुगु महाकाव्यों में वर्णित मंगलसूत्र-धारण, वर-वधू के द्वारा मोती या चावल एक दूसरे के सिर पर डालना, वर-वधू के बीच का पर्दा आदि अंशों का अभाव हिन्दी के महाकाव्यों में है। इसी प्रकार तेलुगु महाकाव्यों में स्त्रियों का व्यंग्यमय गारियाँ गाना, जयमाल आदि प्रसंग प्रायः नहीं मिलते।

पूर्वराग के प्रसंग के रूप में परस्पर अवलोकन का अंश 'मानस',

---

1. वसुचरित्रविमर्शनमु, पृ. 11-15

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

'पद्मावत', वसुचरित्र', 'विजयविलास' आदि महाकाव्यों में प्राप्त होता है। अपनी अभिलषित स्त्री से विवाह के हेतु नायक का सन्यासी, योगी या ब्रह्मचारी के रूप में उपस्थित होने की कथानक-रूढ़ि जायसी, नन्निचोड़ और चेमकूर वेंकटकवि के काव्यों में संयोजित है। तेलुगु के कुछ प्रमुख महाकाव्यों में विवाह या विजय-यात्रा के सिलसिले में नगर के राजपन्थ से अवलोकन के लिए वहाँ की सुन्दरियों की उत्कंठा और इस विषय में उनके परस्पर मधुर वार्तालाप का विधान है। 'वसुचरित्र' में स्वरोचि के विवाह के संदर्भ में, 'पारिजातापहरण' में श्रीकृष्ण के स्वर्गगमन के प्रसंग में, और 'मानस' में राम-विवाह के प्रसंग में यह अंश प्राप्त होता है।

इस प्रकार हिन्दी और तेलुगु के महाकाव्यों में कथावस्तु को विकसित करने में सहायक कतिपय अंश समान हैं। साथ ही क्षेत्रीय संस्कृति की विशिष्टता के द्योतक भिन्न-भिन्न अंशों के संयोजन के कारण अन्तर भी प्राप्त होता है।

दोनों क्षेत्रों के महाकाव्यों में कथावस्तु की परिसमाप्ति प्राय: फलश्रुति से की गयी है। तुलसी के काव्य की यह फलश्रुति है—'श्रीमद्-रामचरितमानसमिदं भक्त्यावगाहन्ति ये संसार पतंग घोर किरणैर्दह्यन्ति नो मानवा:।[1]" केशव ने यह फलश्रुति निबद्ध की है कि जो कोई रामचन्द्रिका को सुनेगा, पढ़ेगा वह इस लोक के भोग भोगकर अन्त में मोक्ष प्राप्त करेगा।[2]

हिन्दी के कुछ ऐतिहासिक महाकाव्यों में कथावस्तु की परिसमाप्ति कुछ आकस्मिक ढंग से की गयी प्रतीत होती है। मान के 'राजविलास' की समाप्ति चित्तौर पर राजसिंह के पुत्र जयसिंह के अधिकार से की गयी और तदनन्तर घटनावली की योजना नहीं है। डॉ. उदयनारायण तिवारी जी का अनुमान है कि संभवत: राणा की मृत्यु के कारण ऐसा करना पड़ा हो।[3] गोरेलालकृत 'छत्रप्रकाश' की परिसमाप्ति के विषय में श्री गणेशप्रसाद द्विवेदी ने लिखा—"छत्रप्रकाश में सं. 1764 तक की घटनाओं का वर्णन मिलता है, इसके पीछे ग्रन्थ अपूर्ण जान पड़ता है। अंतिम अंश पढ़ने से ऐसा ज्ञात होता है कि ग्रन्थ एकाएक यहाँ समाप्त हो गया है। महाराज छत्रसाल का स्वर्गवास सं. 1790 में हुआ था। इससे यही निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि सं. 1764 या 65 के आसपास लाल की मृत्यु हो गयी या कोई ऐसी बात हो गयी होगी, जिससे आगे लिखना उनके लिए असंभव हो गया हो।"[4] सूदन के सुजानचरित के

1. रामचरितमानस—अंतिम पंक्ति
2. रामचन्द्रिका—39-39
3. वीरकाव्य, पृ. 253
4. हिन्दी के कवि और काव्य, पृ 304

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

विषय में भी यही बात है। इस महाकाव्य के सप्तम जंग के अंतिम अंक में सुजानसिंह के साथ मरहठों की लड़ाई की तैयारी का वृत्तान्त मिलता है। उस युद्ध के परिणाम की कोई सूचना नहीं मिलती। तेलुगु के 'सिद्धेश्वरचरित' में भी रचना तृतीय आश्वास के मध्य में आकस्मिक रूप से समाप्त हो गयी। इस प्रकार आलोच्य ऐतिहासिक महाकाव्यों में आकस्मिक ग्रन्थ-समाप्ति भी दृष्टिगत होती है।

आधिकारिक एवं प्रासंगिक कथा-वस्तु

रामचरितमानस, पद्मावत, पृथ्वीराजरासो, आमुक्तमाल्यदा पाण्डुरंग-माहात्म्य, वसुचरित्र आदि महाकाव्यों में मुख्यकथा के साथ आनुषगिक कथाओं की योजना मिलती है। पद्मावत में पद्मावती और रत्नसेन की प्रेमकथा आधिकारिक है। 'आमुक्तमाल्यदा' में श्रीहरि के प्रति गोदादेवी का प्रेम और उन दोनों का परिणय मुख्य कथा है। रामचरितमानस में राम का चरित्र प्रधान कथा है, जिसकी समाप्ति राम के राज्याभिषेक से होती है। पृथ्वीराज-रासो में पृथ्वीराज के जन्म से लेकर शब्दबेधी बाण से प्रतिनायक के संहार तक का इतिवृत्त आधिकारिक है। वसुचरित्र में वसुराज तथा गिरिका का प्रणय-वृत्तांत मुख्य कथावस्तु है।

'पृथ्वीराजरासो' में प्रासंगिक कथाओं की भरमार है, जिसमें से अधिकांश लोककथाओं पर आधारित काल्पनिक अंश हैं। ये अवान्तर प्रसंग अनेक युद्धों, विवाहों, मृगया, यात्रा और अन्य प्रकार की कथाओं से सम्बन्धित हैं। इन अवान्तर कथाओं की अधिकता के कारण रासो का आकार बहुत विशाल बन गया है। डॉ. शम्भूनाथ सिंह के अनुसार यह गुण केवल पृथ्वीराजरासो का ही नहीं बल्कि विश्व के सभी विकसनशील महाकाव्यों में प्राप्त होता है[1] 'रामचरितमानस' में प्रतापभानु की कथा, शिव-पार्वती-विवाह, नारदमोह-प्रसंग और मनु-शतरूपा आख्यान अवान्तर प्रसंग हैं। डॉ. शम्भूनाथ सिंह का यह मत है कि यद्यपि भूमिका और उपसंहार भाग में वर्णित कथाओं का सीधा सम्बन्ध आधिकारिक कथा से नहीं है फिर भी महाकाव्य का वर्णन-वैशिष्ट्य, गुरुत्व, गाम्भीर्य और महत्ता की दृष्टि से ये अंश आवश्यक हैं। पौराणिक शैली का महाकाव्य होने के कारण 'मानस' में इनका विस्तार है और इसलिये मानस के कथानक का परीक्षण शास्त्रीय शैली के महाकाव्यों की दृष्टि नहीं होना चाहिये।[2] 'पद्मावत' में राघव चेतन का प्रसंग, सिंहल से लौटते समय समुद्र में

---

1. हिन्दी महाकव्य का स्वरूपविकास, पृ. 303 2. वही पृ. 529

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

तूफान का प्रसंग और देवपाल के द्वारा पद्मावती के पास दूती भेजना अवान्तर प्रसंग हैं। वसुचरित्र में कोलाहल और शुक्तिमती का प्रसंग आनुषंगिक है। 'आमुक्तमाल्यदा' में यामुनाचार्य की कथा, चंडाल-ब्रह्मराक्षस संवाद और खाण्डिक्य-केशिध्वज की कथा अवान्तर प्रसंग हैं।

:पृथ्वीराजरासो के विषय में कह सकते हैं कि बृहदसंस्करण में वर्णित गौण प्रसंगों का सम्बन्ध किसी न किसी प्रकार से चरितनायक पृथ्वीराज से है। किन्तु मुख्य कथा या कार्य की प्रगति में सहायक नहीं होने के कारण अधिक विवाहों और आखेट-यात्राओं का सीधा सम्बन्ध मुख्य कथा से नहीं है। महाभारत के असंख्य उपाख्यानों की भांति रासो में वर्णित अवान्तर कथाओं की स्थिति है। जैसे पहले कहा जा चुका है, रामचरितमानस की प्रासंगिक कथाओं का सीधा सम्बन्ध आधिकारिक वस्तु से नहीं है। इसका यही कारण प्रतीत होता है कि इन काव्यों की वस्तुयोजना संस्कृत के पुराणों, अपभ्रंश के चरितकाव्यों कथाकाव्यों और लोककथाओं से प्रभावित है। पद्मावत की प्रबन्ध-कल्पना के विषय में आचार्य शुक्ल की समीक्षा से लगता है कि वे इसको सुसम्बद्ध मानते हैं और संतुष्ट भी हैं, क्योंकि शुक्ल जी ने राघवचेतन की घटना, समुद्र में तूफान और देवपाल का दूती भेजना—इन प्रसंगों का योगदान कथावस्तु के विकास में स्वीकार किया है।[1] डॉ. गोविन्द त्रिगुणायत के अनुसार—"पद्मावत की कथा को राजा के चित्तौड गढ़ में सिंहासनारूढ़ हो जाने के बाद बलात् बढ़ाया गया है।......वे अपनी कथा को सूफी सिद्धान्तों में ढालने के लिए लालायित थे। केवल कथा के पूर्वार्द्ध से सूफी सिद्धान्तों की पूर्ण अभिव्यक्ति नहीं होती।.........अतएव उन्हें उत्तरार्द्ध को पूर्वार्द्ध से चिपकाना पड़ा। उत्तरार्द्ध की अधिकांश कथाएँ प्रासंगिक सी लगती हैं। फिर भी उन्हें आधिकारिक का रूप देने का प्रयास किया है।......उन्होंने कथा का ही नहीं, अनेक प्रसंगों का भी व्यर्थ विस्तार किया है।"[2] इस प्रकार मानस, रासो और पद्मावत में जो लोकोन्मुखी प्रवृत्ति है, वह कथानक में प्राप्त आधिकारिक तथा प्रासंगिक इतिवृत्त की प्रत्यक्ष सम्बन्धहीनता के लिए उत्तरदायी है। इसका यही कारण है कि शास्त्रीय लक्षणों के पालन के लिए इन काव्यों की रचना नहीं हुई।

'आमुक्तमाल्यदा' में अवान्तर कथाओं का सम्बन्ध प्रधान प्रतिपाद्य से

---

1. जायसी-ग्रन्थावली की भूमिका, पृ. 71, 72
2. जायसी का पद्मावत : काव्य और दर्शन, पृ. 356

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

कवि ने किसी तरह स्थापित किया है। किन्तु आधिकारिक कथा के साथ उन आनुषंगिक प्रसंगों का अनिवार्य सम्बन्ध दिखाई नहीं पड़ता। इन प्रासंगिक इतिवृत्तों को हटाने से मुख्य कथा में कोई बाधा नहीं पड़ेगी। आधार ग्रन्थों से भिन्न-भिन्न उपाख्यानों को ग्रहण करके वैष्णव धर्म की श्रेष्ठता प्रतिपादित करने के लिए प्रधान कथा से कृत्रिम रूप से सम्बद्ध किया गया है। खाण्डिक्य-केशिध्वज का उपाख्यान, यामुनाचार्य की कथा, एवं ब्रह्मराक्षस का प्रसंग गोदा-श्रीरंगनाथ-विवाहरूपी कार्य में किसी भी प्रकार सहायक नहीं हुए हैं। इसी कारण 'आमुक्तमाल्यदा' पर यह आक्षेप किया गया है कि वह एक छोटा-सा विष्णुपुराण बन गया है।[1]

क्षेत्रमहिमा-प्रतिपादक 'पांडुरंगमाहात्म्य' 'श्रीकालहस्तिमाहात्म्य' आदि महाकाव्यों में भी भक्तिमहिमा या क्षेत्रमहिमा की दृष्टि से विभिन्न उपाख्यानों को ग्रहण किया गया है। महाभारत, हरिवंश, भागवत आदि पुराणों में इस प्रकार की वस्तुयोजना मिलती है। 'स्वारोचिषमनुसंभव' में प्रारंभिक आश्वासों में वर्णित प्रवर-वरुधिनी-प्रसंग, मध्य का स्वरोचि-वृत्तान्त एवं अन्त में निबद्ध मनुसंभव में एकतासूत्र बहुत दुर्बल है। इन काव्यों को लक्ष्य करके श्री वंतरां रामकृष्ण राव ने लिखा—"हमारे महाकाव्य शैली-माधुर्य के कारण एवं प्रौढ़ भाषा के कारण व्यष्टि रूप से प्रत्येक छन्द के रमणीय होने के कारण श्रेष्ठ काव्यों के रूप में प्रतिष्ठा पा गये हैं। इतिवृत्त-निर्वहण की दृष्टि से देखा जाय तो हमारे बहुत से महाकाव्य दोषयुक्त प्रतीत होते हैं।"[2] डॉ. सी.आर. रेड्डी का एक आक्षेप 'कथावस्तु की एकता' से सम्बन्धित है। उन्होंने तेलुगु के प्रसिद्ध महाकाव्यों की कटु आलोचना इसी आधार पर की। अपने प्रिय महाकाव्य 'कलापूर्णोदय' की तुलना शाखा-प्रशाखाओं से नयन-सुख प्रदान करनेवाले महावृक्ष से और अन्य महाकाव्यों की तुलना कई भिन्न कड़ियों को जोड़ने से बनी शृंखला से उन्होंने की।[3] फिर भी तेलुगु में 'वसुचरित्र', 'कलापूर्णोदय', 'प्रभावती-प्रद्युम्न' आदि ऐसे महाकाव्य हैं जिनमें कवियों ने इतिवृत्त के सुन्दर निर्वाह पर पर्याप्त ध्यान दिया है। अतः कह सकते हैं कि श्री रामकृष्ण राव तथा डॉ. सी. आर. रेड्डी के आक्षेप तेलुगु के कुछ महाकाव्यों पर घटित होते हैं, सब पर नहीं।

---

1. अष्टदिग्गजमुलु, पृ. 80
2. भारती-जुलाई 1967 'इतिवृत्त-निर्वहण' नामक लेख
3. कलापूर्णोदय की भूमिका, पृ. 27

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

हिन्दी के 'सुजानचरित' 'छत्रप्रकाश' 'हम्मीररासो' 'हम्मीरहठ' आदि ऐतिहासिक वीरकाव्यों की कथावस्तु एक ही नायक से सम्बन्धित है। उनमें प्रासंगिक कथाओं की स्फीति नहीं है। अतः हिन्दी और तेलुगु के महाकाव्यों में दो प्रवृत्तियाँ लक्षित होती हैं। एक प्रवृत्ति आधिकारिक एवं प्रासंगिक से मूलकथा को पल्लवित करने की है और दूसरी है यथोचित अनुपात में वस्तु-विन्यास की।

मार्मिक प्रसंगों की योजना

वस्तुप्रधान काव्यों में घटनाओं के सामान्य कथन के साथ-साथ उस इतिवृत्तात्मक अंश को सरस बनानेवाले प्रसंगों की भी योजना होती है। आचार्य विश्वनाथ और समीक्षक-प्रवर रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार प्रबन्ध के नीरस पद्यों में भी रसवत्ता इन मर्मस्पर्शी स्थलों के प्रभाव से समाविष्ट होती है।[1] 'रामचरितमानस' में चित्रकूट-प्रसंग, शिव-धनुर्भंग, राम का वनगमन, केवट-प्रसंग आदि विशेष स्थल रसात्मक हैं। इसी प्रकार 'पद्मावत' में मायके में कुमारियों की स्वच्छन्द क्रीड़ा, रत्नसेन के प्रस्थान पर नागमती आदि का शोक, प्रेममार्ग के कष्ट, रत्नसेन को सूली की व्यवस्था, उस दण्ड के सम्बन्ध में विप्रलम्भ दशा में पद्मावती की करुण सहानुभूति, रत्नसेन और पद्मावती का संयोग आदि मार्मिक प्रसंग हैं। 'स्वारोचिष-मनुसंभव' में प्रवराख्य का हिमालय पर पहुँचकर वहाँ के सुन्दर दृश्यों को देखकर अत्यन्त प्रसन्न होना, वरूधिनी के हाव-भाव और प्रवर की धर्मनिष्ठा, वरूधिनी की विरह-व्याकुलता, स्वरोचि का आखेट खेलने जाना आदि मार्मिक स्थल हैं। 'आमुक्तमाल्यदा' में विष्णुचित्त नामक भक्त का राजसभा में शास्त्रार्थ करना, गोदादेवी की वियोग-दशा, पाण्ड्य नरेश के मन में वैराग्य भाव की प्रेरक घटना आदि मार्मिक स्थल हैं। इस प्रकार दोनों क्षेत्रों के महाकाव्यों में इतिवृत्तात्मक अंश की नीरसता को मार्मिक स्थलों के संयोजन से सरस बनाने की प्रवृत्ति समान है।

महाकाव्यों में अष्टादश वर्णनों का समावेश काव्यवस्तु को सरस और वैविध्यपूर्ण बनाने की दृष्टि से आचार्यों ने निरूपित किया है। ऐसे स्थलों में कथा विराम ग्रहण करती है और वर्णन के समाप्त होने पर फिर आगे बढ़ती है। शुक्ल जी के शब्दों में—"काव्यों में विस्तृत विवरण दो रूपों में मिलते हैं—(1) कवि द्वारा वस्तुवर्णन के रूप में (2) पात्र द्वारा भावव्यंजना के रूप में"[2]

---

1. साहित्यदर्पण-प्रथम परिच्छेद, पृ. 18
2. जायसी ग्रन्थावली की भूमिका, पृ. 75

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

वस्तुवर्णन के अवसर पर नामपरिगणन के रूप में बहुज्ञता प्रदर्शन की प्रवृत्ति मानस और पद्मावत में प्राप्त होती है। इससे रस का संचार नहीं होता। नामपरिगणनात्मक वस्तुवर्णन पारम्पारिक हैं, जिनमें कवियों की भावुकता लक्षित नहीं होती। महाकाव्यों में वर्णनों का संयोजन दो प्रकार का होता है—(1) कथा का निर्वाह मुख्य रूप से करते हुए आनुषंगिक रूप से वर्णनों को भी स्थान देना और (2) कथा के क्षीणतंतु में अधिकाधिक वर्णनों के मुक्ता-फलों को पिरोना। 'रामचरितमानस', 'पद्मावत', 'पृथ्वीराजरासो', 'निर्वचनोत्तर रामायण', 'रंगनाथ रामायण' आदि प्रथम प्रकार के महाकाव्य हैं तो 'राम-चन्द्रिका', 'वसुचरित्र', 'आमुक्तमाल्यदा' आदि दूसरे प्रकार के महाकाव्य हैं।

रचना-प्रवृत्ति एवं लक्ष्य की दृष्टि से तुलसी के सामने राम का आख्यान मुख्य था, जायसी के सामने प्रेमगाथा के माध्यम से आध्यात्मिक प्रेम की व्यंजना का लक्ष्य था और चन्दबरदायी के सम्मुख पृथ्वीराज की वीरगाथा का वर्णन प्रमुख था। किन्तु केशव और रामभद्र के सम्मुख रामकथा के सांगोपांग कथन का लक्ष्य नहीं था। ये कवि राजदरबारों में सम्मान प्राप्त करते थे। अत: अन्य कवियों की तुलना में अपनी प्रतिभा का प्रदर्शन करने के हेतु सभा-रंजन की प्रवृत्ति के वशीभूत होकर इन कवियों ने काव्य-रचना की। संस्कृत महाकाव्यों की परम्परा से प्रेरणा लेकर काव्यशास्त्रबद्ध होकर रचना करने की प्रवृत्ति भी इन कवियों में दृष्टिगत होती है। इस प्रकार रचना की प्रेरक साहित्यिक तथा राजनैतिक परिस्थितियों के प्रभाव से इन कवियों ने अपने महाकाव्यों में कथा-कथन को गौण और वस्तुवर्णनों को प्रधान स्थान प्रदान किया।

महाकाव्यों में संयोजित वर्णन वस्तु से सम्बन्धित होने पर, निरर्थक नहीं लगते। संयोग की दशा में शृंगार की अनुभूति को तीव्रतर बनाने के लिये तथा नायक-नायिका की विरह-दशा को उद्दीप्त करके वियोग शृंगार को परिपक्व बनाने के लिये प्राकृतिक दृश्यों का वर्णन कथावस्तु का सहायक ही होता है। इतना ही नहीं, प्रतिभाशाली कवि वस्तुवर्णनों से कथागत पात्रों की मन:स्थिति या अपनी दृष्टि की सूचना देकर पाठकों का उपकार भी करता है। रामचरित-मानस में ऐसे वर्णन प्राप्त होते हैं, यथा

देखहु तात बसंत सुहावा। प्रियाहीन मोहि भय उपजावा।"[1]

घन घमंड नभ गरजत घोरा। प्रियाहीन डरपत मन मोरा।"[2]

---

1. मानस-अरण्यकाण्ड, 37—5   2. मानस-किष्किंधाकाण्ड, 14—1

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

इन वर्णनों की योजना रामचन्द्र के विरहरूपी वस्तु से सम्बन्धित होने के कारण परम रमणीय है। 'मानस' में वर्णन यथोचित संक्षिप्त रूप में ही दिखायी पड़ते हैं, कथावस्तु को आच्छादित करने की मात्रा तक उनका विस्तार नहीं है।

'पद्मावत' में विरह-विह्वल नायिका नागमती के वियोग की तीव्रता को प्रकट करने के हेतु संयोजित बारहमासा एवं पद्मावती के संयोग शृंगार के उद्दीपक के रूप में किया गया षट्‌ऋतु-वर्णन कथावस्तु से अनिवार्यतः संबंधित हैं। 'हम्मीररासो' में पद्मऋषि की तपस्या के प्रसंग में षट् ऋतुओं का वर्णन किया गया है।[1] यह वर्णन सभी ऋतुओं में अविचल भाव से तपस्या करनेवाले ऋषि से सम्बन्धित है। तेलुगु के 'कुमारसम्भव' में पार्वती की तपस्या के संदर्भ में प्राप्त षट्‌ऋतु-वर्णन बड़ी विशदता के साथ उन ऋतुओं की भीषणता के माध्यम से शैलजा की तपोमहिमा की व्यंजना करता है।[2] इसी महाकाव्य में वसन्त-वर्णन शिव जी के तपोभंगरूपी कार्य का कारण है। इसलिए कथावस्तु का अनिवार्य अंग है। वसुचरित्र में गिरिका और मनुचरित्र में वरूधिनी की विरह-वेदना को तीव्रतर बनाने के लिए उद्दीपन रूप में चन्द्रोदय का वर्णन किया गया है।[3] मनुचरित्र में सायं-संध्या के अवसर पर विरहिणी चक्रवाकी का जो वर्णन किया गया है, उससे काव्य-नायिका वरूधिनी की विरह-दशा को सूचित किया गया है।[4] आमुक्तमाल्यदा में वसन्तऋतु का वर्णन गोदादेवी की वियोग-वेदना को उद्दीप्त करने की दृष्टि से कथावस्तु से सम्बन्धित है। पेद्दनार्य ने सायंकालीन सूर्य की लालिमा का वर्णन, काव्यगत पात्र के प्रति सूर्य के क्रोध के रूप में करके, वर्णन का सम्बन्ध कथावस्तु से स्थापित किया है। काव्यनायिका वरूधिनी के प्रति निष्ठुर व्यवहार करनेवाले धर्मान्ध प्रवर की आलोचना और नायिका के प्रति अपनी सहानुभूति प्रकट की है।

सर्गविभाजन

सर्गविभाजन से काव्यवस्तु के प्रस्तुतीकरण में एक व्यवस्था आ जाती है। जायसी के महाकाव्य में शुक्लजी और अग्रवाल जी के संस्करणों के अनुसार मानसरोदक खण्ड, नागमतीवियोग खंड आदि के नाम पर खंडविभाजन दिखायी पड़ता है। शुक्ल जी ने तो स्पष्ट लिखा है—"इन प्रेमगाथा काव्यों के सम्बन्ध में पहली बात ध्यान देने की यह है कि इनकी रचना बिलकुल भारतीय

---

1. हम्मीररासो, 100—142
2. कुमारसम्भव, 84—139
3. वसुचरित्र 4—17, मनुचरित्र 3—25
4. मनुचरित्र 3—16

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

चरितकाव्यों की सर्गबद्ध शैली पर न होकर फारसी की मसनवियों के ढंग पर हुई है, जिनमें कथा सर्गों या अध्यायों में विस्तार के हिसाब से विभक्त नहीं होती, बराबर चलती रहती है, केवल स्थान स्थान पर घटनाओं या प्रसंगों का उल्लेख शीर्षक के रूप में रहता है।"[1] अत: स्पष्ट है कि वर्णित घटना के आधार पर नाम दे देना ही सर्गविभाजन नहीं है। क्योंकि वस्तु को व्यवस्थित रूप में संयोजित करना सर्गविभाजन का लक्ष्य है। विद्वानों का कहना है कि पद्मावत की मूल प्रतियों में खंडविभाजन नहीं है। डॉ. माताप्रसाद गुप्त के द्वारा वैज्ञानिक ढंग से पाठ-संशोधन करके प्रकाशित कराये गये 'पद्मावत' में खण्ड-विभाजन नहीं है। अपभ्रंश में हरिभद्र का 'णेमिणाह चरिउ', प्राकृत में वाक्पतिराज का 'गउडबहो' और उद्योतनसूरिकृत 'कुवलयमाला' में सर्ग-विभाजन नहीं है।[2] कह सकते हैं कि 'पद्मावत' पर प्राकृत-अपभ्रंश की इस परम्परा का प्रभाव पड़ा है। तेलुगु में सूफी महाकाव्यों का अभाव है और सर्गबद्धता से रहित महाकाव्यों का भी प्रया: अभाव है।

'रामचरितमानस' में काण्डों या सोपानों के अन्तर्गत, 'सुजानचरित' में जंगों के अंतर्गत, 'छत्रप्रकाश' में अध्यायों में और 'रामचन्द्रिका' में प्रकाशों के अन्तर्गत वस्तु का विभाजन दृष्टिगत होता है। 'हम्मीररासो' में सर्गविभाजन नहीं है। 'अथ हम्मीर को जन्म वर्णन' आदि कुछ शीर्षक मात्र दिये गये हैं। इस प्रकार हिन्दी महाकाव्यों में सर्गबन्ध एवं सर्गहीन की दो पद्धतियाँ हैं। तेलुगु में आश्वासों के नाम पर सर्गों का विधान किया गया है। इससे समझ सकते हैं कि हिंदी के कुछ महाकाव्यों में प्राकृत-अपभ्रंश की सर्गविहीन पद्धति को ग्रहण किया गया है। तेलुगु में संस्कृत महाकाव्य की सर्गबद्धतावाली प्रणाली को अपनाया गया है। सर्ग के लिए 'आश्वास' शब्द का प्रयोग प्राकृत साहित्य की प्रवृत्ति है। जहाँ पर कवियों ने सर्गविभाजन को अपनाया, इतिवृत्त के संयोजन में सांगोपांगता और बीच में विराम आदि की सुन्दर व्यवस्था आ गयी है।

नामकरण की सार्थकता

आलोच्य भाषाओं में महाकाव्यों के नामकरण की सार्थकता विचारणीय है, क्योंकि वस्तु का विधान उसी पर बहुत कुछ आधारित होता है। तुलसी ने रामचरितमानस का शीर्षक अपने महाकाव्य को दिया। इससे यही प्रकट

---

1. जायसी ग्रन्थावली की भूमिका पृ. 4
2. हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप-विकास, पृ. 148

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

होता है कि कवि को रामचरित का आख्यान अभीष्ट था और इसकी परिकल्पना कवि-मानस में मानसरोवर के रूप में थी। यही कारण है कि इस महाकाव्य के सात काण्डों को सात सोपान माना गया। कवि ने मानसरोवर के रूपक को स्पष्ट भी किया है।[1] प्रस्तुत रामकथा के विविध पक्षों एवं अप्रस्तुत मानसरोवर के विविध अंगों के अभेद-प्रतिपादन के कारण इसको मानस-रूपक कहा जाता है। स्वयंभू के 'पउमचरिउ' में नदी-रूपक का विधान है। श्री वैद्यनाथसिंह के अनुसार "रामचरितमानस नाम रखने का विशेष हेतु है। और वह यह कि सर्वप्रथम शिव ने काव्य की रचना करके अपने मानस में रखा और समय पाकर शिवा से इसको कहा।......ग्रन्थ का नाम मानस बड़ा अर्थगर्भित लगता है। पहले तो मानसरोवर के साथ इसका साधर्म्य बैठ जाता है, दूसरे काव्य के मनोमय-कोश का विषय होने के कारण भी मानस नाम संगत लगता है। जिस प्रकार अप्रस्तुत मानस स्नानार्थियों की श्रान्ति-क्लान्ति को दूर करता है उसी प्रकार प्रस्तुत मानस भी अपने रसिक पाठक-श्रोताओं को शांति प्रदान करता है।"[2] इसके अतिरिक्त श्री सिंह ने मानस संज्ञा को इसलिए भी सार्थक माना कि गोस्वामी जी ने शुभाशुभ मानस-वृत्तियों की राम-रावण रूप में कल्पना की है।[3]

केशवकृत 'रामचन्द्रिका' में 'रामचन्द्र की चन्द्रिका' अर्थात् राम के राज्यवैभव एवं धवल यश के वर्णन की दृष्टि से घटनाओं की योजना की गई है। पद्मावत की समस्त घटनाओं का संबंध लौकिक पक्ष में पद्मावती के साथ और आध्यात्मिक पक्ष में उस परमतत्व के साथ अनिवार्य रूप से है। 'कला-पूर्णोदय' की संज्ञा कलापूर्ण नामक पात्र के उदय की ओर समस्त घटनाओं की उन्मुखता के अतिरिक्त सर्वोत्तम कला के मूर्तरूप में काव्य-रचना की प्रवृत्ति को द्योतित करने के कारण सार्थक है। 'वसुचरित्र' में एकनायकत्व और वस्तु संबंधी एकता के साथ-साथ नामकरण भी सार्थक है। पांडुरंगमाहात्म्य, श्रीकालहस्तिमाहात्म्य जैसे महाकाव्यों में घटनाओं का विधान क्षेत्रमहिमा के प्रतिपादन की दृष्टि से किया गया है। कवियों ने विभिन्न उपाख्यानों को अभीष्ट प्रयोजन की दृष्टि से संयोजित किया है। इस प्रकार हिन्दी एवं तेलुगु के महाकाव्यों का वस्तु-शिल्प, कवि-मानस में उस वस्तु की परिकल्पना से नियन्त्रित है। इस परिकल्पना की अभिव्यक्ति काव्य के अभिधान से होती है।

---

1. मानस-बालकाण्ड, 35-41
2. मानस में रीतितत्व, पृ. 2
3. वही, पृ. 5

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

वक्ता-श्रोता योजना

'पृथ्वीराजरासो' और 'रामचरितमानस' में तथा विद्यापतिकृत 'कीर्तिलता' आदि अपभ्रंश-काव्यों में वक्ता-श्रोता योजना है। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के अनुसार—"उन दिनों की कथाएँ दो व्यक्तियों के संवाद रूप में लिखी जाती थीं। चन्द ने भी रासो को शुक और शुकी के संवाद के रूप में लिखा था, जैसे विद्यापति ने कीर्तिलता को भृंग और भृंगी के संवाद के रूप में लिखा था और कौतूहल कवि ने 'लीलावतीकथा' को कवि और कवि-पत्नी के संवाद के रूप में लिखा था।[1]" 'रामचरित मानस' की कथा के वक्ता शिव, याज्ञवल्क्य और कागभुषुण्डि हैं और श्रोता क्रमशः पार्वती, भरद्वाज और गरुड़ हैं। वास्तव में वक्ता-श्रोता के माध्यम से कथा कथन की पद्धति पहले संस्कृत के महाभारत और पुराणों में दिखाई पड़ती है।

तेलुगु के महाकाव्यों की वस्तुयोजना पर पौराणिक रीति का प्रभाव दृष्टिगत होता है। स्वारोचिषमनुसंभव का कथानक मार्कण्डेयपुराण से गृहीत है। इतिवृत्त के साथ-साथ उस पुराण के वक्ता-श्रोता भी यथावत् इस महाकाव्य में आ गये हैं। मनुसंभव काव्य-कथा के वक्ता धर्मपक्षी और मार्कण्डेय हैं। क्रमशः जैमिनि मुनि और क्रोष्ठी इसके श्रोता हैं। 'वसुचरित्र' में सूत वक्ता हैं और शुक, शौनक आदि मुनि श्रोता हैं। 'पाडुरंगमाहात्म्य' में कथा का अभिवर्णन शिवजी ने किया तो पार्वती, नारद, अगस्त्य आदि ने उसका श्रवण किया। इस प्रकार हिन्दी एवं तेलुगु के महाकाव्यों में वक्ता-श्रोता के माध्यम से कथा-कथन का विधान है।

तेलुगु महाकाव्यों में एक और विशे ता है। कवि अपने आश्रयदाता नरेश को या अपने इष्टदैव को श्रोता की स्थिति में रखकर, स्वयं वक्ता बनकर कथा कहने लगता है। जिस प्रकार कथावाचक कथा-कथन के दौरान आलस्य, निद्रा या अन्यमनस्कता के कारण कथा पर ध्यान नहीं देनेवाले श्रोताओं को सावधान करता रहता है और कक्षा में अध्यापक छात्रों को बीच-बीच में नाम लेकर अभिमुखीकृत करते हुए प्रतिपाद्य विषय के प्रति उनकी सावधानी को बनाये रखता है, उसी प्रकार तेलुगु का महाकाव्यकार प्रत्येक आश्वास के आदि-अन्त में अपने श्रोता का संबोधन करता रहता है। 'स्वारोचिषमनुसंभव में' सम्राट श्रीकृष्णदेवराय को, 'आमुक्तमाल्यदा' में वेंकटेश भगवान को, 'वसुचरित्र' में तिरुमलराय को, विजयविलास' में रघुनाथ भूपाल को, 'कुमारसंभव'

1. संक्षिप्त पृथ्वीराजरासो की भूमिका पृ. 12

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

में मल्लिकार्जुन शिवयोगी को तथा 'निर्वचनोत्तर रामायण' में राजा मनुमसिद्धि को संबोधित करके काव्य-कथा का निवेदन किया गया है। इस प्रकार की योजना हिन्दी के महाकाव्यों में नहीं है।

वस्तु में नाटकीयता

कथावस्तु में नाटकीयता का समावेश तब होता है, जब पात्रों के माध्यम से कथा आगे बढ़ती है। पात्रों का वार्तालाप इस निपुणता के साथ निबद्ध किया जाता है कि संवाद पात्रों की चरित्रगत विशेषताओं का उद्‌घाटन करने के अतिरिक्त घटनावली को अनावश्यक बिराम से बचाकर गति प्रदान करते हैं। कहने का यही आशय है कि कवि अपनी ओर से घटनाओं का कथन बहुत कम करता है और पात्रों द्वारा ही वह कार्य सम्पन्न होता है।

तेलुगु के महाकाव्यों में विशेषकर 'कलापूर्णोदय, 'प्रभावती प्रद्युम्न' वसुचरित्र' और 'पारिजातापहरण' में यह गुण स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ता है। वसुचरित्र में शुक्तिमती और कोलाहलपर्वत की कथा कवि स्वयं नहीं सुनाता है, प्रत्युत गिरिका की सखी मंजुवाणी के द्वारा नर्मसखा को सुनाया जाता है। कलापूर्णोदय के प्रथम आश्वास में नारद, कलभाषिणी, रंभा, नलकूबर और मणिकंधर—इन पात्रों के माध्यम से कथासूत्रों में परस्पर संबद्धता तथा क्षिप्रगति का संपादन किया गया है। वास्तव में पूरा 'कलापूर्णोदय' इस कवि-कौशल के लिए उदाहरण है। श्री दुव्वरि वेंकटरमण शास्त्री ने सूरनार्य के वस्तुविन्यास की चातुरी को तीन रूपों में विश्लेषित किया है, यथा—(1) वर्णनकृत्य का निर्वाह कथात्मक अंशों के माध्यम से करना (2) वर्णनों में भी कथा की सूचना देना (3) एक कथा में अन्य कथांशों का संधान करना[1] इन तीन भेदों के साथ यह चतुर्थ भेद भी सम्मिलित किया जा सकता है, जो पात्रों के माध्यम से कथा को गतिशील बनाने का है।

डॉ. सी. आर. रेड्डी 'कलापूर्णोदय' में प्रदर्शित कवि की इस निपुणता पर मुग्ध हो गये हैं कि कथा के आरंभ में ही बड़ी शीघ्रता से कई पात्रों का परिचय पाठक को मिल जाता है। रेड्डी जी की यह स्वीकारोक्ति है कि नाटक-रीति से संवादों के माध्यम से कथा के अंशों को प्रकट करने के गुण में यह काव्य असदृश है।[2] प्रथम आश्वास के समाप्त होते-होते पाठक कथा-प्रवाह के मंझधार में पहुँच जाते हैं और उत्सुकतावश आगे की कथा जानने के लिए

1. सारस्वत व्याससुलु (प्रथम भाग), पृ. 274
2. कलापूर्णोदय की भूमिका, पृ. 24

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

लालायित हो जाते हैं। सूरनार्य के 'प्रभावतीप्रद्युम्न' महाकाव्य में भी नाटकीयता का यह गुण लक्षित होता है।

हिन्दी के महाकाव्यों में सुन्दर संवादों की योजना का अभाव नहीं है। कविवर केशवदास का महत्त्व संवाद-चातुर्य के कारण भी है। आचार्य शुक्ल की स्पष्टोक्ति है कि केशव को सब से अधिक सफलता संवादों में मिली।[1] मानस में कैकेयी-मंथरा-संवाद, परशुराम-लक्ष्मण संवाद, रावण-अंगद-संवाद आदि का बड़ा सुन्दर विधान है। इन सुन्दर संवादों की अवतारणा के कारण कथावस्तु में नाटकीयता का समावेश हो गया है।

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास पृ. 186

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

पंचम अध्याय

चरित्रचित्रण

महाकाव्य वस्तुप्रधान काव्यों की कोटि में गणनीय हैं। वस्तु अथवा कथानक की योजना करनेवाली विविध घटनाएँ शृंखलित रूप में जब काव्य में विन्यस्त होती हैं तो उन घटनाओं के प्रवाह के लिए आलम्बन रूप में पात्र एवं पात्रों के शील-स्वभाव का उद्घाटन करने में सहायक परिस्थितियाँ अनिवार्य रूप से काव्य में स्थान बना लेती हैं। इस प्रकार सभी महाकाव्यों में पात्र-परिकल्पना अनिवार्य रूप से विद्यमान होती है। कवियों का वैयक्तिक दृष्टिकोण, काव्य-वस्तु का स्वरूप, काव्य-प्रणयन के युग की परिस्थितियाँ आदि से चरित्रचित्रण प्रभावित होता है।

भक्तिमय व्यक्तित्व से सम्पन्न कवि स्वान्तःसुखाय नायक की परिकल्पना परमात्मा के प्रत्यक्ष रूप में करता है। अद्वितीय धीरता, वीरता, गंभीरता, सज्जनता आदि गुणों के मूर्तिमान रूप में नायक को चित्रित करता है। काव्य के अन्य पात्रों की सृष्टि नायक के इस दिव्यत्व में सहयक रूप में की जाती है। शृंगारप्रिय कवि अपनी अभीष्ट भावनाओं के अनुकूल पात्रों के प्रेमी रूप को विशेष रूप से उद्घाटित करने में प्रवणचित्त रहता है। लोकमानस और कवि-परंपरा में जिन भव्य आदर्शों की प्रतिष्ठा वस्तु में पहले ही की गयी है, उन मर्यादित सीमाओं का अतिक्रमण उसी वस्तु को लेकर काव्य रचनेवाला कवि नहीं कर सकता। कवि की स्वच्छन्द प्रवृत्ति के बावजूद प्रख्यात इतिवृत्त पात्रचित्रण को प्रभावित करता है। प्रेमगाथा को आध्यात्मिक सिद्धान्तों के प्रतिपादन के लक्ष्य से वस्तु-रूप में स्वीकार करनेवाला कवि उन सिद्धान्तों के अनुरूप चरित्रों की परिकल्पना प्रतीक रूप में करता है। वीरगाथा एवं वीर भावना पर जिस कवि की दृष्टि केन्द्रित होती है उस कवि के पात्र वीर भावना के प्रतिरूप बन जाते हैं। अलंकार-प्रयोग एवं रीतिमार्ग के वशीभूत कवि चरित्रचित्रण में मन नहीं लगाकर अलंकारों के माध्यम से पात्रों के गुणों का उल्लेख मात्र करके सन्तुष्ट हो जाता है।

कवियों के वैयक्तिक दृष्टिकोण के अतिरिक्त युग की परिस्थितियाँ भी काव्यगत चरित्रचित्रण को प्रभावित करती हैं। जिस यग में कवियों को नरेशों का संरक्षण प्राप्त होता है, काव्य-रचना को विलासी रसिक एवं वैभव-समृद्धि में मस्त शृंगारप्रिय प्रभुओं की चित्तवृत्ति नियंत्रित करती है, उस युग में स्वाभाविक है कि कवि-गण अपने आश्रयदाताओं की अभिलाषाओं के अनुरूप पात्रों की परिकल्पना करते। इस प्रकार महाकाव्यगत चरित्रचित्रण को प्रभावित करनेवाली परिस्थितियाँ विभिन्न प्रकार की होती हैं।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

चरित्रचित्रण की मीमांसा के सन्दर्भ में यह भी ध्यान देने योग्य बात है कि, जिस काव्य में व्यापक रूप से समग्र जीवन की अत्यधिक घटनाओं की योजना की जाती है, उसमें विविध परिस्थितियों में पात्रों के क्रिया-कलाप, विचार आदि को प्रदर्शित करने का अवसर कवि को मिलता है। इसके विपरीत अल्प इतिवृत्त ग्रहण करके वर्णनों की बहुलता एवं अलंकरण पर ध्यान जिस काव्य में दिया जाता है, उसमें विस्तृत रूप में चरित्रगत विशेषताओं को प्रदर्शित करने का अवसर नहीं मिलता। स्वीकृत कथावस्तु की सीमाओं के भीतर निपुण कवि पात्रों को सजीव रूप में चित्रित कर सकता है।

भारतीय भाषाओं के महाकाव्यों में गृहीत वस्तु साधारणतया पुराण, इतिहास आदि स्रोतों में प्रसिद्धि-प्राप्त होती है। अतः इन महाकाव्यों के पात्र भी उन आधारभूत स्रोतों से लिये गये होते हैं। इस तथ्य के बावजूद महाकाव्यों के पात्र प्राचीन वाङ्मय के पात्रों के प्रतिबिंब नहीं हैं। कवियों ने अनौचित्य-परिहार की प्रवृत्ति से मूलग्रन्थों में वर्णित अनावश्यक और अनुचित अंशों को हटाकर पात्रों के चरित्र को उज्ज्वल और स्वाभाविक बनाया है। इसके विपरीत ऐसे भी उदाहरण प्राप्त होते हैं जहाँ कवियों ने नवीन प्रयोग की त्वरा में पात्रों के चरित्र को लगनेवाली ठेस पर ध्यान नहीं दिया। प्राचीन कथानक का अनुसरण नहीं करके स्वतन्त्र रूप से शुद्ध काल्पनिक महाकाव्य की रचना करनेवाले कवि के लिए निजी दृष्टिकोण के अनुरूप पात्र-चित्रण का यथेष्ट अवकाश मिलता है।

मध्यकालीन महाकाव्यों के चरित्रचित्रण के सम्बन्ध में यह आक्षेप किया जाता है कि कवियों ने शास्त्रीय मान्यताओं से परिचालित होकर पात्रों को वैविध्यहीन, निर्जीव और काष्ठप्रतिमासदृश बनाया है। उदाहरणार्थ प्रत्येक काव्य की नायिका चन्द्रमा, कामदेव और मलयानिल को अपनी विरहावस्था में उपालम्भ देती है, विरहाग्नि में तप्त होकर अपनी सखियों से शीतल उपचारों की अपेक्षा करती है, इत्यादि।[1] परिणाम यह होता है कि चरित्र-चित्रण गतानुगतिक ढंग का बन जाता है। परन्तु इस प्रसंग में स्मरणीय है कि प्रतिभाशाली एवं लोकज्ञ कवियों ने सजीव पात्रों की सृष्टि की है।

मध्यकाल तक के साहित्य में प्रतिफलित भारतीय दृष्टिकोण प्रायः आदर्शवादी है। इसके अनुसार काव्य की परिसमाप्ति नायक के अभ्भुदय से की गई है। साथ ही धर्मानुमोदित अर्थ एवं काम का प्रतिपादन किया गया

1. कवित्वतत्वविचारम्, पृ. 67

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

है। इस स्थिति में काव्य-नायक उदात्त गुणों के साकार पुंज के रूप में प्रस्तुत किया गया।

विद्यानाथ ने नायक में निम्नोक्त गुण आवश्यक माने हैं—महाकुलीनता, औज्ज्वल्य, महाभाग्य, उदारता, तेजस्विता, विदग्धता और धार्मिकत्व।[1]

हिन्दी में रामकथा को लेकर तुलसी और केशव ने महाकाव्य-रचना की है। अंतःसाक्ष्य एवं बाह्यसाक्ष्य के आधार पर तुलसी का भक्तरूप हमें दिखाई पड़ता है। केशव के व्यक्तित्व में शृंगारप्रियता और दरबारी मनोवृत्ति के दर्शन होते हैं। फिर भी यह नहीं कहा जा सकता कि केशव भक्ति-विमुख थे। जहाँ तुलसी ने रामकथा के विविध प्रसंगों की योजना मनोयोगपूर्वक की है, केशव ने संक्षेप और क्षिप्रता की प्रवृत्ति से काम लिया है। अतः विस्तृत परिधि में चरित्रचित्रण का जो अवसर तुलसी को प्राप्त था वह केशव को नहीं मिला था। चन्दबरदायी, सूदन, जोधराज आदि के वीरकाव्यों में जीवन के एक विशिष्ट पक्ष को वीरभावना के अनुसार ग्रहण किये जाने के कारण वहाँ भी विशाल परिधि में पात्रकल्पना नहीं हो सकी। जायसी आदि के प्रेमगाथा-काव्यों में नायक-नायिका के प्रणयभाव पर ही कवियों का ध्यान केन्द्रित था। अतः सीमित क्षेत्र में ही पात्रों की चरित्रगत विशेषताओं का उद्घाटन संभव हो सका। इस स्थिति की ओर ध्यान आकर्षित करनेवाली आचार्य शुक्ल की पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—"चारणकाल के चन्द आदि कवियों ने भी प्रबन्ध-रचना की है, परन्तु उसमें चरित्रचित्रण को वैसा स्थान नहीं दिया गया है, वीरोल्लास ही प्रधान है। जायसी आदि मुसलमान कवियों की प्रबन्धधारा केवल प्रेमपंथ का निदर्शन करती गयी है। दोनों प्रकार के आख्यानों में मनोविकारों के इतने भिन्न भिन्न प्रकृतिस्थ स्वरूप नहीं दिखायी पड़ते, जिन्हें हम किसी व्यक्ति या समुदया-विशेष का लक्षण कह सकें।"[2] शुक्ल जी की यह दृष्टि वहाँ भी व्यक्त हुई जहाँ उन्होंने पृथ्वीराजरासो को वीरगाथा, पद्मावत को प्रेमगाथा और मानस को जीवनगाथा कहा है।[3]

इस संदर्भ में यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि केवल वस्तु-विस्तृति, अधिक से अधिक घटनाओं का संयोजन एवं क्रमपूर्वक किसी के जीवन की घटनाओं का वर्णन जिस ग्रंथ में होता है, क्या केवल वही ग्रंथ चरित्रचित्रण की कसौटी

---

1. प्रतापरुद्रीयम् , पृ. 11
2. गोस्वामी तुलसीदास, पृ. 100
3. जायसी ग्रन्थावली की भूमिका, पृ. 201

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

पर खरा उतरता है। काव्य की अपेक्षा पुराण और धर्मग्रंथ में वस्तुविस्तृति अधिक है। जीवनचरित में जीवन की घटनाओं का विस्तृत विवरण क्रमबद्ध रूप में प्राप्त होता है। काव्य के अन्तर्गत तो कवि का ध्यान वस्तुविस्तार की अपेक्षा चारुत्व सम्पादन पर लगा रहता है। सभी महाकाव्यों में विस्तृत वस्तु की योजना हो भी नहीं सकती। सीमित कथानक के बावजूद निपुण कवि अच्छा चरित्रचित्रण कर सकता है। कवि की दृष्टि और काव्यवस्तु की प्रकृति के अनुसार चरित्रचित्रण की समीक्षा उपादेय है।

तुलसी ने रामचरितमानस में अपने भक्तिमय व्यक्तित्व के अनुरूप राम को परमात्मा के प्रत्यक्ष रूप में चित्रित किया है। वाल्मीकि के द्वारा चित्रित पुरुषोत्तम-रूप और तुलसी के इस परब्रह्म-रूप में अंतर है। काव्य के अनेक स्थानों पर तुलसी ने अपनी ओर से तथा पात्रों के माध्मम से पाठकों को यह स्मरण दिलाया है कि राम ने ब्रह्म होकर भी मनुष्य-मात्र की भांति पृथ्वी पर अपनी लीला प्रदर्शित की। स्थालीपुलाकन्याय से निम्नलिखित पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं—

"एक अनीह अरूप अनामा। अज सच्चिदानन्द परधामा॥
व्यापक विस्वरूप भगवाना। तेहिं धरि देह चरित कृत नाना॥
सो केवल भगतन हित लागी। परम कृपाल प्रनत अनुरागी॥"[1]

भगत हेतु भगवान प्रभु, राम धरउ तनु भूप।
किए चरित पावन परम, प्राकृत नर अनुरूप।[2]

अयोध्याकाण्ड में राम कैकेयी के प्रति चित्रकूट-प्रसंग में विनय, कोमलता आदि का जो व्यवहार करते हैं उससे राम की दिव्यता प्रकट होती है। इस प्राकट्य में कैकेयी का पात्र साधनभूत है। इसी प्रकार रावण के चरित्र के माध्यम से भी राम के ब्रह्मत्व की व्यंजना की गयी है। रावण और मारीच राम के ब्रह्मत्व से अभिज्ञ हैं। राम के हाथ से मरकर वैकुण्ठ प्राप्त करने की इच्छा से मारीच राम की पर्णशाला के पास मायामृग के रूप में जाता है। रावण की ईश्वरोन्मुखता की झलक भी द्रष्टव्य है—

"सुर रंजन भंजन महि भारा। जौं भगवंत लीन्ह अवतारा॥
तौ मैं जाइ बैरु हठि करऊँ। प्रभु सर प्रान तजें भव तरऊँ॥[3]"

इस प्रकार तुलसी के द्वारा चित्रित राम में आध्यात्मिक ब्रह्मत्व की छवि परि-

1. मानस-बालकाण्ड, 13—2
2. वही—उत्तरकाण्ड, 72 (क)
3. मानस-अरण्यकाण्ड 22-2

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

लक्षित होती है। अन्य पात्रों को भी कवि ने अपनी भक्तिमय दृष्टि के अनुरूप ईश्वरोन्मुख रूप में चित्रित किया है।

तुलसी के द्वारा मानस में चित्रित प्रायः सभी पात्र सामाजिक-नैतिक मूल्यों का प्रतिनिधित्व करते हैं। राम के चरित्र में गुरुजनों के प्रति श्रद्धा, छोटों के प्रति वात्सल्य आदि सद्गुणों को विविध प्रसंगों में प्रदर्शित किया गया। नायिका सीता के चरित्र में पतिपरायणता का भव्य आदर्श वाल्मीकि द्वारा निक्षिप्त है। तुलसी ने उस आदर्श का विकास किया है। पुष्पवाटिका-प्रसंग में राम के प्रति सीता का अनुरक्त होना, धनुर्भंग के अवसर पर सीता की उत्कंठा और उनकी मानसिक दशाएँ, वनवास के कष्ट को पति के सान्निध्य में सुखमय मानना, एक लम्बी अवधि तक दुष्ट राक्षसों के बीच पति के वियोग की दारुण व्यथा सहन करना आदि प्रसंगों के माध्यम से सीता के पातिव्रत्य-गुण का चित्रण किया गया है।

मानसकार की सीता सहज लज्जा-स्वभाव से युक्त उत्तम कुलवधू के रूप में दिखायी देती है। वनमार्ग में ग्रामीण स्त्रियों ने जब सीता से पूछा—

"कोटि मनोज लजावनि हारे। सुमुखि कहहुँ को आहि तुम्हारे।"[1]

तब सीताजी का संकोच करना, मन ही मन मुस्कुराना, अपने चन्द्रमुख को आंचल से ढककर राम की ओर निहारना, भौंहें टेढ़ी करके संकेत से राम को अपना पति बताना, सीता के उत्तम कुलवधू रूप को प्रत्यक्ष कर देते हैं।

केवल राम और सीता के चरित्रों में ही नहीं प्रत्युत् अन्य पात्रों के द्वारा भी मालिक-सेवक, माता-पिता, मित्र, भ्राता आदि के आदर्शों की अभिव्यक्ति मानसकार ने की है। इस महाकाव्य में समाज की सुस्थिति के लिये आवश्यक नैतिक आदर्शों की प्रतिष्ठा विविध पात्रों में की गयी है। यही कारण है कि मानस के पठन-पाठन, श्रवण और मनन के प्रभाव से हिन्दी भाषी प्रदेश विदेशी अत्याचारों की भीषण परिस्थितियों में नैतिक पतन से बच सका। मानस के सम्बन्ध में आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी का कथन इस प्रकार है—"चरित्रचित्रण में तुलसीदास की तुलना संसार के गिने-चुने कवियों के साथ ही की जा सकती है। उनके सभी पात्र उसी प्रकार हाड़-मांस के जीव हैं, जिस प्रकार काव्य का पाठक, परन्तु फिर भी उनमें अलौकिकता है। सबसे अद्भुत बात यह है कि इन चरित्रों की अलौकिकता समझ में आनेवाली चीज है। जीवन्त पात्र सिर्फ श्वास-प्रश्वास ही नहीं लेते, सिर्फ हमारी भांति नाना प्रकार की संवेदनाओं

---

1. मानस-अयोध्याकाण्ड 117-1

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

को ही नहीं अनुभव करते बल्कि वे आगे बढ़ते हैं, पीछे हटते हैं। अपनी उदात्त वाणी और स्फूर्तिप्रद क्रियाओं से हमारे अन्दर ऊपर उठने का उत्साह भरते हैं, हमें साथ ले लेते हैं। हम उनका संग पा जाने पर उल्लसित होते हैं। उमंगते हैं और सन्मार्ग पर चलने में जो विघ्न-बाधाएँ आती हैं, उन्हें जीतने का प्रयास करते हैं।[1]"

तुलसी लोकमंगल के लिये मर्यादामार्ग का प्रतिपादन करनेवाले कवि हैं। कवि ने 'मानस' के आरम्भ में स्पष्ट किया है कि इस काव्य में विषयरस के लिये कोई स्थान नहीं है। तुलसी के पात्र-चित्रण में यह दृष्टि प्रतिफलित है। प्राकृत की 'लीलावती', अपभ्रंश के चरितकाव्य, संस्कृत के 'नैषधीय-चरित' वगैरह में नायक-नायिका के सुखोपभोगरूपी शृंगार का अच्छा-खासा वर्णन प्राप्त होता है। किन्तु तुलसी के काव्य में अनावृत वर्णनों की योजना बिल्कुल नहीं है। पात्रों के वचन भी मर्यादित हैं। आधार-ग्रन्थों में प्राप्त पात्रों के आवेगपूर्ण वचनों को तुलसी ने या तो छोड़ दिया है अथवा प्रसंग को संक्षिप्त रूप देकर चरित्रों को परिष्कृत रूप में उपस्थित किया है।

रामचन्द्रिका के मंगलाचरण में केशव ने गणेश और सरस्वती की वन्दना के साथ श्रीराम-वन्दना भी की है, यथा—

"पूरण पुराण अरु पुरुष पुराण परिपूरण,
....

नेति नेति कहै वेद छांडि आन युक्ति को।
जानि यह केशोदास अनुदिन राम राम
रटत रहत न डरत पुनरुक्ति को।[2]

इससे प्रकट है कि केशव राम को परब्रह्म मानते थे। ग्रन्थ-रचना के कारण के रूप में स्वप्न-वृत्तान्त की योजना करते हुए केशव की यह स्पष्टोक्ति है—

"सोई परब्रह्म श्रीराम हैं अवतारी अवतारमणि।"[3]

इस प्रकार हम देखते हैं कि केशव के राम में ब्रह्मत्व की प्रतिष्ठा है।

रामचन्द्रिका के प्रायः सभी पात्रों में वाक्-पटुता, विदग्धता और प्रत्युत्पन्नमति के गुण दिखाई पड़ते हैं। वास्तव में दर्बारी कवि एवं राजनीति के दांव-पेंच के ज्ञाता केशव के व्यक्तित्व में ये गुण हैं। उनकी समसामयिक परिस्थितियों ने केशव के व्यक्तित्व को ऐसा रूप प्रदान किया। कई स्थानों

---

1. हिन्दी साहित्य पृ. 154
2. रामचन्द्रिका 1—3
3. वही 1—17

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

पर पात्रों की यह वाग्विदग्धता रमणीय भी है, किन्तु केवल इसी गुण की प्रधानता के कारण पात्रों के स्वभाव का वैविध्य प्रकट नहीं हो सका। उदाहरण के तौर पर राम की वाक्पटुता और कूटनीतिज्ञता के लिये परशुराम-प्रसंग को लिया जा सकता है। उपर्युक्त प्रसंग में पाठक यह अनुभव करते हैं कि राम वाक्कौशल के द्वारा परिस्थिति को अनुकूल बना लेते हैं। राम के तीनों भाई जब क्रोध करके धनुष पर बाण चढ़ा लेते हैं, उस समय राम तुरन्त परशुराम के पौरुष की प्रशंसा करके उनका क्रोध शीतल कर देते हैं। जब राम समझते हैं कि शान्त वचनों से परशुराम का क्रोध बढ़ता ही जायगा तो वे अपने क्रोध का प्रदर्शन करते हुए कहते हैं—

"भृगुनन्द संभारु कुठार मैं कियौ सरासन युक्त सर।"[1]

कविवर केशव का ध्यान पात्रों की चरित्रगत विशेषताओं के विश्लेषण की अपेक्षा विविध छन्दों के प्रयोग एवं अलंकारों की राशि से अपने काव्य को सज्जित करने पर लगा हुआ प्रतीत होता है। घटनाओं का वर्णन संक्षेप में करके क्षिप्र गति से आगे बढ़ते रहने की प्रवृत्ति के कारण पात्रों का शील चित्रण पूर्ण रूप से हो नहीं सका। कहीं-कहीं अलंकार-प्रयोग पात्रों के चरित्र को क्षति पहुँचानेवाला सिद्ध हुआ है। अपने भाई लक्ष्मण और गुरु विश्वामित्र के सामने जनकपुरी का वर्णन करते हुए राम कहते हैं—

"जलजहार शोभित तब जहँ प्रगट पयोधर पीन।"[2]

उपर्युक्त पंक्ति में 'पयोधर' शब्द के प्रयोग के कारण श्लेष अलंकार की स्थिति है। पाठक कवि के अलंकार-प्रयोग पर मुग्ध हो सकते हैं। जलाशयवाला अर्थ भी सुन्दर है, किन्तु स्त्रियों के पक्ष में उत्तुंग पयोधरों का वर्णन अविवाहित राम के मुँह से गुरु विश्वामित्र के सामने कराना उचित नहीं प्रतीत होता। इसी प्रकार वनवास करने जाते हुए राम माता कौशल्या को विधवा-धर्म का उपदेश देते हैं जो औचित्य की दृष्टि से ठीक नहीं है। किसी भी परिस्थिति में पुत्र के द्वारा माता को विधवा धर्म का उपदेश अनुचित है और विशेषकर दशरथ के जीवित रहते हुए किये गये इस उपदेश से अनौचित्य स्पष्ट रूप में दिखायी देता है।

दरबारी कवि होने के कारण केशव राजसी वातावरण से और राजन्य-वर्ग के क्रियाकलापों से पूर्ण परिचित थे। केशव ने अपने लक्षणग्रन्थों में शृंगार लीलाओं के जो चित्र उतारे हैं और बुढ़ापे का जो वर्णन किया है, उसके

---

1. रामचन्द्रिका 7—42   2. वही 5—16

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

आधार पर कह सकते हैं कि केशव के व्यक्तित्व में विलासिता और भोग-परायणता के संस्कार वर्तमान थे। इसके अतिरिक्त संस्कृत के शृंगाररस-प्रधान काव्यग्रन्थों से भी केशव पर्याप्त प्रभावित थे। परिणामतः केशव में कथा-कथन की अपेक्षा वर्णनात्मकता पर अधिक आग्रह है। इस दृष्टि-विशेष का प्रभाव केशव के पात्रचित्रण पर भी लक्षित होता है। फिर भी केशव राम के एकपत्नीव्रत और सीता के पातिव्रत्य गुण में कोई परिवर्तन नहीं कर सकते थे। वास्तव में रामकथा पर लेखनी-विन्यास करनेवाला कोई भी कवि इस इतिवृत्त के मौलिक आदर्शों में परिवर्तन करने का साहस नहीं कर सकता। केशव ने रामचन्द्रिका में जलक्रीडा, संगीत, नृत्य आदि का जो वर्णन किया है, वह राजसी वातावरण के सर्वथा अनुकूल है।

'पद्मावत' में जायसी का लक्ष्य लौकिक प्रेमकथा के माध्यम से अलौकिक ईश्वर-तत्व और साधना-मार्ग का प्रतिपादन था। अतः काव्यगत प्रसंगों में पात्र अलौकिक प्रेमतत्व की व्यंजना में सहायक प्रतीकों का काम करते हैं। कई कष्ट सहकर राजा रत्नसेन का अन्ततोगत्वा पद्मावती को प्राप्त करना इस तथ्य का व्यंजक है कि साधक कई कष्टों का सामना करते हुए साधनारत रहेगा तो अन्त में भगवान की प्राप्ति होगी। अन्यथा शुद्ध लौकिक दृष्टि से विचार किया जाय तो एक तोते के मुंह से किसी सुन्दरी की रूप-प्रशंसा सुनकर अपना राज्य और विवाहित पत्नी को छोड़कर जोगी बननेवाला और बन-बन की धूल छाननेवाला राजा का पात्र हास्यास्पद प्रतीत होगा। फिर भी पात्रों के हर व्यवहार का प्रतीकार्थ निकाला नहीं जा सकता। उदाहरणार्थ पद्मावती और उसकी सखियों ने मानसरोवर में जो जलक्रीड़ा की है, उसका आध्यात्मिक पक्ष में कोई विशेष अर्थ प्रतीत नहीं होता। किन्तु इतना अवश्य है कि उक्त प्रसंग के माध्यम से अपनी प्रतीकात्मक दृष्टि की अभिव्यक्ति करने का अवसर कवि को प्राप्त हुआ। कवि ने इस प्रसंग में प्रतिपादित किया है कि सारी सृष्टि पद्मावतीरूपी परमात्मा की प्रतिच्छाया से अनुप्राणित है और सारा जगत् उस परमात्मा का प्रतिबिम्ब है। निम्नोक्त पंक्तियों में यही भाव द्रष्टव्य है—

"नैन जो देखे कंवल भए, निरमल नीर सरीर
हँसत जो देखे हंस भए, दसन जोति नग हीर ॥"[1]

जायसी के द्वारा चित्रित मुख्य पात्र रत्नसेन और पद्मावती में मुख्यतः आदर्श प्रेम की उदात्तता ही दृष्टिगत होती है। मानव जीवन में प्रेम एक

1. पद्मावत—मानसरोदक खण्ड 65

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

भाग मात्र है, वही सब कुछ नहीं है। किन्तु जायसी ने प्रणय-भाव का अंकन पूर्ण निष्ठा के साथ किया है। इस परिधि का अतिक्रमण करके जीवन की विविध परिस्थितियों में पात्रों की भावनाओं का विस्तृत विश्लेषण इस महाकाव्य में संभव नहीं था, यद्यपि इस काव्य के उत्तरार्ध में प्रणय-भाव के अतिरिक्त कुछ अन्य परिस्थितियों की योजना अवश्य की गई है।

चन्दबरदायी, गोरेलाल, जोधराज आदि वीरकाव्य-प्रणेताओं की दृष्टि नायक के शौर्यप्रधान पक्ष के चित्रण में अधिक रमी है। वीरचरित्र की अवतारणा के कारण ही इन काव्यों का महत्त्व है। शौर्य से तात्पर्य नायक के द्वारा समरभूमि में प्रदर्शित बाहुविक्रम है। साथ ही नायकों की दानवीरता, धर्म-परायणता आदि गुणों के वर्णन के कारण चरित्रचित्रण उदात्त बन गया है। अपने में अनुरक्त नायिका से राक्षस विवाह करना उनके वीरचरित्र की ही विशेषता है। पृथ्वीराज ने संयोगिता से और महाराणा राजसिंह ने रूपकुमारी से अपने बाहुबल के आधार पर ही विवाह किया था। इसके अतिरिक्त शरणागत की रक्षा का गुण पृथ्वीराजरासो, हम्मीररासो और राजविलास के नायक पात्रों में दिखाया गया है। इस प्रकार वीरकाव्य-प्रणेताओं ने इतिहास प्रसिद्ध वीरपुरुषों को अपने महाकाव्यों में नायक रूप में ग्रहण करके उनके चरित्र में युद्धवीरता, दानवीरता, दयावीरता धर्मपरायणता, शरणागत-रक्षा आदि उज्जवल गुणों को प्रदर्शित किया है।

नायक के चरित की उदात्तता को चित्रित करने के लिए प्रतिनायक के रूप में शहाबुद्दीन, औरंगजेब और अलाउद्दीन की पात्रकल्पना हुई है। हम्मीररासो और हम्मीरहठ में चूहे के भय से अलाउद्दीन के भीत होने की घटना संयोजित हुई है, जो प्रतिनायक की तुच्छता का द्योतन करती है। किन्तु इतिहास में प्रसिद्ध सम्राट अलाउद्दीन इस कोटि का कायर नहीं हो सकता। ऐसे हीन शत्रु को पराजित करने में हम्मीर का कोई महत्त्व दिखाई नहीं पड़ता। वास्तव में महाकाव्य के अन्तर्गत प्रतिनायक पात्र को भी नायक के तुल्य बल, पराक्रम से युक्त दिखाने से ही नायक के शौर्य को दीप्ति मिल सकती है। वाल्मीकि ने रामायण में रावण के शौर्य और राम के महत्त्व की विवृति राम के द्वारा 'आदित्यहृदय के पाठ की घटना के माध्यम से की है। राम-रावण-युद्ध की भीषणता का वर्णन अनन्वय अलंकार के प्रयोग से वाल्मीकि ने किया है।

इन वीरोल्लास-प्रधान महाकाव्यों में कुछ स्त्री पात्र दिखाई पड़ते हैं, जिनका चरित्रांकन नगण्य रूप में उल्लेखात्मक रीति से किया गया है। इन

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

स्त्रियों का कोई व्यक्तित्व दिखाई नहीं पड़ता। वे पुरुष की भोग-लोलुपता के साधनमात्र हैं। पृथ्वीराजरासो में संयोगिता, इंछिनी आदि नायिकाएँ इसी रूप में दिखाई पड़ती हैं। हम्मीररासो में रूपविचित्रा कामभावना-प्रधान नायिका है। प्रेमिका के रूप में शशिव्रता, पद्मावती और संयोगिता दिखाई पड़ती हैं। किन्तु राजमहल में पहुँच जाने के बाद उनका प्रयोजन नायक की भोगेच्छा की परितृप्ति तक सीमित है। इन चरित्रों में विविधता और व्यक्तित्व का वैचित्र्य बिल्कुल नहीं है। इस को हम मध्यकालीन सामन्ती भावना ही कह सकते हैं। पुरुषों का बहुपत्नीक होना सामाजिक नैतिकता के विरुद्ध नहीं समझा गया। यह भी भावना प्रचलित रही कि पुरुष जितनी अधिक स्त्रियों से विवाह करे, उसका पुरुषत्व उतना ही श्रेष्ठ माना जाय।

वीरकाव्यों के चरित्रचित्रण के विषय में यह स्मरणीय है कि कवियों का ध्यान सजीव पात्रों की निर्मिति पर विशेष रूप से लगा नहीं है। इतिहास की अधिकाधिक घटनाओं को पद्यबद्ध रूप दिये जाने के कारण इन काव्यों में चरित्र-चित्रण को यथोचित स्थान प्राप्त नहीं हुआ। डॉ. टीकमसिंह तोमर के अनुसार—'पात्रों के चरित्रचित्रण की ओर इन कवियों का ध्यान विशेष रूप से नहीं गया था। ये ग्रन्थ ऐतिहासिक काव्य थे, इसीलिए अधिकांश कवियों ने इतिवृत्तात्मक शैली का अनुसरण करके ऐतिहासिक घटनावली, पात्रों, स्थानों तथा अन्य सामग्री की विस्तृत सूची प्रस्तुत की। अलंकार-प्रयोग, चमत्कारवाद, रीति-परम्परा का अनुसरण आदि ऐसे कारण थे, जिनके फलस्वरूप चरित्र-चित्रण की ओर इन कवियों का ध्यान बहुत कम गया था।[1]'

तेलुगु के रामकथात्मक महाकाव्यों में भी राम को प्रायः परमात्मा के अवतार रूप में चित्रित किया गया। रंगनाथ रामायण में इस दृष्टि की परिचायक कुछ प्रमुख घटनाएं इस प्रकार हैं—

(1) जब विश्वमित्र राजा दशरथ से यज्ञरक्षार्थ राम लक्ष्मण को अपने साथ भेजने की याचना करते हैं, तब यह भी कहते हैं—"हे पापरहित दशरथ! राम को साधारण बालक मत समझो। यह लोभ भी त्याग करो कि यह मेरा पुत्र है। यह क्रतुकर्ता, क्रतुस्वरूप, यज्ञ-भाग के भोक्ता तथा लोकाराध्य हैं।"[2]
(2) रावण के नागपाश से जब राम-लक्षण बांधे जाते हैं तब महर्षि नारद स्मरण दिलाते हैं कि राम भगवान हैं। तब राम गरुड का स्मरण करते हैं।[3]

---

1. हिन्दी साहित्य—द्वितीय खण्ड, पृ. 147
2. रंगनाथरामायण, पृ. 23
3. वही, पृ. 415

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

'रामाभ्युदय' में राम के ब्रह्मत्व की अभिव्यक्ति करनेवाले स्थल प्राप्त होते है, जैसे–

(1) देवताओं की स्तुति से प्रसन्न होकर श्रीमन्नारायण उनको अभय प्रदान करते हुए आश्वस्त करते हैं कि दशरथ के यहाँ पुत्ररूप में अवतीर्ण होकर लोकपीड़क रावण का संहार करेंगे।

(2) धनुर्भंग के प्रसंग में प्रयुक्त शब्दावली इस प्रकार है–"विधाता के विधाता और परब्रह्म दाशरथि ने जब धनुष तोडा तो सारे ब्रह्माण्डों में प्रियकर नादब्रह्म व्याप्त हो गया।[1]"

रामाभ्युदयकार संक्षिप्त रूप में घटनाओं की योजना करने एवं क्षिप्र गति से कथा को आगे बढ़ाने के विषय में केशवदास से तुलनीय हैं। 'रामाभ्युदय' में युगधर्म के अनुसार अलंकार-प्रयोग से चमत्कार उत्पन्न करने एवं विविध वर्णनों का संयोजन करने की दृष्टि मुख्य रूप से दिखाई पड़ती है। मार्मिक प्रसंगों में रमकर पात्रों की मानसिक स्थितियों का विश्लेषण करने की प्रवृत्ति इस काव्य में परिलक्षित नहीं होती।

कतिपय आलोचकों के द्वारा तिक्कनामात्य की नाटकीय काव्य-शैली और पात्रों के शीलचित्रण की कुशलता बहुधा प्रशसित है। 'निर्वचनोत्तर रामायण' की भूमिका में कवि ने स्पष्ट रूप से कहा कि किसी भी परिस्थिति में धीरोत्तम और नरोत्तम रामनरेश का सद्वृत्तान्त आदरणीय है, अत: मैं उत्तररामकथा की रचना में प्रवृत्त हुआ हूँ।[2] इस कथन से यह सूचना मिलती है कि इस काव्य में कवि की दृष्टि राम के धीरत्व एवं उत्तम नरत्व को चित्रित करने की रही है। तिक्कनामात्य ने औचित्य की सीमाओं का अतिक्रमण नहीं करते हुए सीता-राम के उद्यानविहार, जलक्रीड़ा आदि प्रसंगों की योजना की है। इस योजना से स्पष्ट है कि उन दोनों का परस्पर अनुराग उत्तम कोटि का है। लोकनिन्दा के कारण जब राम ने सीता का परित्याग किया, तब उनके हृदय में पत्नी के प्रति अनुराग एवं लोकरंजक नृपत्व के भाव विद्यमान थे। कवि ने इस प्रसंग के माध्यम से राम की धीरोदात्तता और सीता की पति-भक्ति का भव्य चित्रण किया है। सीता-परित्याग के उपरान्त एकान्त में बैठे राम की व्यथा इस काव्य में वर्णित हुई है और यह अंश वाल्मीकि रामायण में नहीं है। इस प्रकार 'निर्वचनोत्तर रामायण' में राम के धीरत्व एवं धर्म-परायणत्व चित्रित करने की दृष्टि रही है।

---

1. रामाभ्युदय, 4–94   2. निर्वचनोत्तर रामायण, 1–10

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

नन्निचोड कवि के 'कुमारसंभव' में प्राय: सभी पात्र देवता हैं, क्योंकि यह 'दिव्य-कथा' है। कवि कालामुख शैव-सम्प्रदाय में दीक्षित भक्त था और इसी कारण महादेव जी के उत्कर्ष-प्रतिपादन की दृष्टि सम्पूर्ण काव्य में परिलक्षित होती है। तुलसी के 'मानस' में भी महादेव जी का पात्र है, किन्तु वहाँ शिव रामभक्त के रूप में दिखाई पड़ते हैं। नन्निचोड ने महादेव को 'देवाधीश' 'अज' और 'आद्य' कहा है।

शिव की वंदना करते हुए नन्नेचोड ने लिखा है—"विष्णु एक हजार धवल कमल लाकर शिव की पूजा कर रहे थे। शिव के सिर पर हिरण के चिह्न से युक्त चन्द्रमा को देखकर विष्णु को भ्रम हुआ कि यह कल की पूजा में लगा हुआ मुरझाया फूल है। उस फूल को हटाने में प्रवृत्त विष्णु का श्यामल हस्त देखकर चन्द्रमा ने समझा कि राहु उसे ग्रसित करने आ रहा है। उन दोनों के भ्रम पर हँसनेवाले परमेश्वर मेरी इच्छाओं को पूर्ण करें।"[1] इसमें दृष्टिगत रमणीय कल्पना के साथ-साथ विष्णु को शिव के भक्त के रूप में प्रदर्शित करने की कवि-दृष्टि ध्यान देने योग्य है। कहने का तात्पर्य है कि राम को कुछ महाकाव्यों में परब्रह्म के रूप में चित्रित करने की जो दृष्टि रही है, वैसे ही तेलुगु के 'कुमारसम्भव' महाकाव्य में महादेव जी को परमतत्व के रूप में चित्रित करने की दृष्टि प्रधान है। अन्य पात्रों का चित्रण भी इसी दृष्टि से किया गया है।

विजयनगर युग में सम्राट श्रीकृष्णदेवराय, तिरुमलदेवराय आदि के संरक्षण में और दक्षिणान्ध्र युग में रघुनाथ भूपाल, विजयराघव नायक आदि के संरक्षण में कई महाकाव्य विरचित हुए। इनमें मुख्य दृष्टि रीतिबद्ध शैली-शिल्प तथा अतिशय अलंकरण की अभिव्यक्ति-क्षेत्र में है तो दूसरी ओर भाव-व्यंजना के क्षेत्र में श्रृंगार अथवा प्रणयभावों को विशेष रूप से निवद्ध करने की है। इन काव्यों का चरित्रचित्रण इस प्रवृत्ति से परिचालित है। कहने का यही तात्पर्य है कि भाव की दृष्टि से इन काव्यों के नायक श्रृंगारनायक हैं और नायिकाएँ प्रणयभाव की साकार मूर्तियाँ हैं। अन्य पात्रों का चित्रण भी इसी भाव के अनुसार किया गया है। समृद्धि एवं वैभव के युग में पात्रों का ऐसा चित्रण स्वाभाविक है। स्वर्गीय श्री काटूरि वेंकटेश्वरराव का अनुमान है कि उस समय के वास्तविक जीवन में जो प्रेमी साहसी युवक थे वे ही काव्य-नायकों के रूप में ढल गये हों तथा श्रृंगारवती रमणियाँ नायिकाओं के रूप में

1. कुमारसंभव 1-3

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

कदाचित् प्रस्तुत कर दी गयी हों।[1] जीवन में जो प्रेमभाव है, वह इन काव्यों में चित्रित पात्रों के व्यवहारों तथा विचार-पद्धति की प्रेरक शक्ति रहा है। इसको हम युगधर्म कह सकते हैं।

मनुचरित्र के प्रवर, वरूधिनी, स्वरोचि आदि पात्रों के माध्यम से, तिम्मनार्य को सत्यभामा और श्रीकृष्ण पात्रों के द्वारा तथा सूरनार्य-निर्मित सरस्वती, चतुर्मुख, कलभाषिणी, सुगात्री आदि चरित्रों के आधार पर जीवन का स्वादिष्ट प्रणय पक्ष का ही मनोहर प्रतिपादन किया गया है। कुछ काव्यों में गतानुगतिकता एवं रीतिप्रियता ने चरित्रचित्रण को दबा दिया, किन्तु पेद्दना, तिम्मना, सूरना आदि प्रतिभाशाली कवियों ने सजीव पात्रों की सृष्टि की है। इन शृंगारकाव्यों में प्रायः पुराणों में प्राप्त अति स्वल्प वस्तु को ग्रहण करके कविकल्पनाजन्य नवीन अंशों और वर्णनों से विभूषित करके विन्यस्त किया गया है। अतः चरित्रचित्रण रामायण की भांति व्यापक पट पर नहीं हुआ, बल्कि 'नैषधीयचरित' की पद्धति से सीमित घटनाओं के अन्दर किया गया है।

'आमुक्तमाल्यदा' में पात्र-चित्रण पर पर्याप्त ध्यान नहीं दिया गया। कवि की दृष्टि रम्य ढंग से अलंकार-योजना करने एवं विस्तार से ऋतु-वर्णन करने में विशेष रूप से रमी है। वास्तव में इस महाकाव्य से यही आशा की जा सकती है कि आदि से अन्त तक काव्य के शरीर में अण्डाल के जीवन की विविध घटनाओं की योजना से उस भक्तिन का चरित्र चित्रित होता। किन्तु कवि ने वैष्णवधर्म के उत्कर्ष-प्रतिपादन की दृष्टि से प्रासंगिक कथाओं को आवश्यकता से अधिक मात्रा में स्थान दिया। परिणामतः गोदादेवी के चरित्र को क्रमपूर्वक विकसित करने में बाधा पड़ी। स्थूल रूप में यही वर्णित हुआ कि अण्डाल विष्णु में अतीव अनुरक्त थीं और अन्त में भगवान से उनका विवाह सम्पन्न हुआ। किन्तु उनके गुणों का क्रमिक विकास दिखाया नहीं गया।

पिंगलि सूरनार्य ने अपने युग के अधिकांश कवियों के अपवाद-स्वरूप चरित्रचित्रण की कुशलता का परिचय दिया। डॉ. सी. आर. रेड्डी, आचार्य लक्ष्मीकान्तम् आदि विद्वानों ने सूरनार्य की इस निपुणता की श्लाघा की है। डॉ. जी. वी. कृष्णाराव के अनुसार—"सूरनार्य के द्वारा निर्मित पात्र अमूर्त विचारों के प्रतीक या मानवीकृत रूप नहीं हैं, बल्कि बोधगम्य तथा सजीव हैं। अपनी मनःस्थिति के अनुरूप उनकी महत्त्वाकांक्षाएँ तथा लक्ष्य हैं। उनके

1. तेलुगु काव्यमाला—निवेदन पृ. 7

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

जीवन की कुछ घटनाएँ यद्यपि अतिप्राकृत शक्तियों से प्रभावित हैं, तथापि उनके मन तथा हृदय अनिवार्य रूप से मानवीय एवं स्वाभाविक हैं। देवता और ऋषि भी अपने दैवीय अंश के बावजूद मानवीय प्रवृत्तियों का परिचय देते हैं। एक और महत्त्वपूर्ण विशेषता यह है कि पात्रों के कारण कथानक अथवा कथानक के कारण पात्रों की स्थिति में कोई हानि नहीं पहुँची।"[1] उपर्युक्त कथन से यह स्पष्ट होता है कि इस महाकवि ने चरित्र-चित्रण में सजगता का पर्याप्त ध्यान रखा है और इस दिशा में अपूर्व कुशलता का परिचय दिया है।

तेलुगु के ऐतिहासिक महाकाव्यों में कवियों का ध्यान पात्रों के शील-निरूपण पर बहुत कम गया है। इसका मुख्य कारण यही प्रतीत होता है कि कवि ऐतिहासिक घटनावली को या लोकप्रसिद्ध जनश्रुतियों को काव्यों में निबद्ध करने में ही सन्तुष्ट थे। उदाहरणार्थ 'श्रीकृष्णराय विजय' में कवि कुमार धूर्जटी ने विद्यानगर का निर्माण, श्रीकृष्णदेवराय की विजय-यात्राओं, उत्कल-नरेश की कन्या से विवाह आदि ऐतिहासिक घटनाओं को संयोजित किया। काव्य के अन्तिम भाग में नैषधकाव्य के अनुकरण पर कीरसंदेश की योजना की गयी है। किन्तु कृष्णदेवराय, मन्त्रिवर तिम्मरुसु और गजपति नरेश की पुत्री के गुणों का उल्लेखनीय चित्रण प्राप्त नहीं होता। अतः कह सकते हैं कि इन ऐतिहासिक महाकाव्यों में कवियों का ध्यान चरित्र-चित्रण पर केन्द्रित नहीं था।

आलोच्य महाकाव्यों के पात्रों को कुछ निश्चित आधारों पर वर्गीकृत किया जा सकता है। कथानक के मेरुदण्ड के रूप में प्राप्त अत्यन्त मुख्य पात्र नायक तथा नायिका पात्र हैं, जिनसे काव्यगत प्रत्येक घटना निकटतम रूप से सम्बन्धित होती है। इनसे भिन्न पात्रों की योजना प्रधान पात्रों के चरित्र को उज्ज्वल बनाने की दृष्टि से की जाती है। इस आधार पर पात्रों के तीन भेद हैं, यथा—नायक पात्र, नायिका पात्र और अन्य पात्र।

मानस, रामचन्द्रिका, रामाभ्युदय, रंगनाथरामायण और उत्तररामायणों में राम नायक है और सीता नायिका। वीरकाव्यों में पृथ्वीराज, श्रीकृष्ण-देवराय, हम्मीर, छत्रसाल आदि नायक हैं। इन काव्यों में नायिकाओं का चित्रण न्यूनतम रूप में हुआ है। 'पद्मावत' नायिकाप्रधान काव्य है, जिसमें पद्मावती नायिका है और रत्नसेन नायक। नायक की पत्नी होने के कारण नागमती को भी नायिका कह सकते हैं। किन्तु पद्मावती की तुलना में नागमती

---

1. Studies in Kalapurnodayam, Page 65

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

गौण पात्र है। नामकरण एवं मुख्य कथावस्तु की दृष्टि से कह सकते है कि 'आमुक्तमाल्यदा' नायिकाप्रधान महाकाव्य है, जिसमें गोदादेवी नायिका है। 'वसुचरित्र' आदि शृंगाररस-प्रधान काव्यों में नायक तथा नायिका की योजना अनिवार्य रूप से मिलती है।

आलोच्य महाकाव्यों में नायक पात्र के तीन रूप दिखाई पड़ते हैं—(1) परब्रह्म रूप (2) राजन्य वर्ग की भावनाओं का मूर्तरूप (3) शृंगारी या प्रेमी रूप। यद्यपि प्रायः सभी नायकों में ये तीन रूप मिलते हैं, तो भी प्राधान्य-विवक्षा से कोई एक रूप प्रमुख हो गया है। उदाहरणार्थ 'रामचरितमानस' में राम का परब्रह्म रूप अधिक मुखर है और तिक्कनामात्य के द्वारा चित्रित राम में धीरोदात्त नृपत्व का भाव प्रमुख है। 'पारिजातापहरण' के श्रीकृष्ण का प्रेमी रूप मुख्यतः चित्रित हुआ है। ऐतिहासिक काव्यों में नायक का राजत्व रूप प्रखर है।

शृंगाररस की दृष्टि से काव्यशास्त्र में नायकों के अनुकूल तथा दक्षिण नामक भेद माने गये हैं। श्रीकृष्ण दक्षिण नायक हैं। पृथ्वीरज तथा रत्नसेन भी दक्षिण नायक हैं। अर्जुन दक्षिण नायक है। श्रीराम, वसुराज और नल अनुकूल नायक हैं। विद्यानाथ के शब्दों में 'एकायत्तो अनुकूलः स्यात्' और 'तुल्यो अनेकत्र दक्षिणः।[1]'

नायिकाओं के भी विभिन्न रूप लक्षित होते है, जैसे परमतत्व का प्रतीक, परब्रह्म की छाया या माया, पतिपरायणा उत्तम गृहिणी, आदर्श प्रेमिका और माधुर्य भाव की उपासिका। जायसी की पद्मावती अध्यात्मपक्ष में परमतत्व है, और लौकिक पक्ष में शृंगारवती पद्मिनी नायिका। तुलसी द्वारा चित्रित सीता पारलौकिक पक्ष में परब्रह्म की छाया माया है। केशव ने भी सीता के माया होने का उल्लेख किया है। रामकाव्यों में सीता लौकिक पक्ष में पति-परायणा उत्तम गृहिणी के रूप में चित्रित है। सत्यभामा का चित्रण तिम्मनार्य ने मानिनी नायिका के रूप में किया है। 'पद्मावत' में नागमती रूपगर्विता नायिका के रूप में चित्रित हुई है। गोदादेवी दिव्य शृंगार या माधुर्य भाव की उपासिका है।

कुछ महाकाव्यों में प्रतिनायक पात्र का विधान है। रामकाव्यों में रावण प्रतिनायक है। उसके अशुभ कर्मों और अत्याचारों के वर्णन के द्वारा कुकर्मों के परिणामस्वरूप उसकी पराजय का प्रतिपादन किया गया है। इसके अलावा तुल्य बलपराक्रम से युक्त प्रतिनायक को परास्त करनेवाले नायक के महत्त्व को

1. प्रतापरुद्रीयम्—नायक प्रकरण, पृ. 16, 17

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

प्रकट करने में प्रतिनायक पात्र सहायक हुआ है। पृथ्वीराजरासो में शहबुद्दीन प्रतिनायक है। इसमें कृतघ्नता एवं नृशंसता का प्राधान्य है। वह पृथ्वीराज को पराजित करके उसको बन्दी ही नहीं बनाता, बल्कि आँखें निकलवाकर अपनी पैशाचिक प्रवृत्ति को सन्तुष्ट करता है। 'पद्मावत' में किसी की परिणीता को प्राप्त करने के लोभी अलाउद्दीन प्रतिनायक है। हम्मीररासो में प्रतिनायक के रूप में अलाउद्दीन चित्रित किया गया है। हम्मीर के उदात्त एवं शरणागत-रक्षक रूप के चित्रण में प्रतिनायक प्रात्र सहायक सिद्ध हुआ है।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने तुलसी के सन्दर्भ में चरित्रों का विभाग सात्विक, राजस और तामस प्रकृतियों के अनुसार आदर्श और सामान्य नामक दो रूपों में किया। उनके अनुसार सीता, राम, भरत और हनुमान सात्विक आदर्श के पात्र हैं और रावण तामस आदर्श का पात्र है। सामान्य या राजस प्रकृति के पात्रों के अन्तर्गत दशरथ, लक्ष्मण, सुग्रीव और कैकेयी को माना गया है। शुक्ल जी का कथन है कि आदर्श चरित्रों में आदि से अन्त तक सात्विक या तामस वृत्ति का निर्वाह किया गया है। इन चरित्रों में प्रकृतिभेद सूचक अनेकरूपता नहीं मिलती। हनुमान में प्रदर्शित सेवकत्व, भरत में निर्मल अन्तःकरण, राम में धीरता, गम्भीरता, आर्तत्राणपरायणता आदि, सीता में पतिपरायणता सात्विक आदर्श हैं। रावण में धर्मविरोध, लोककंटकत्व और अत्याचार तामस आदर्श हैं। सामान्य वर्ग के अन्तर्गत शुक्ल जी ने जिन पात्रों को स्थान दिया है, उनमें प्रकृतिभेदसूचक अनेकरूपता मिलती है।

मूलस्रोतों के आधार पर पात्रों के तीन भेद किये जा सकते हैं—(1) इतिहास-प्रसिद्ध (2) पुराण-प्रसिद्ध (3) विशुद्ध काल्पनिक। पृथ्वीराज, हम्मीर, अलाउद्दीन, सुजानसिंह, संयोगिता, छत्रसाल, प्रतापरुद्र, श्रीकृष्णदेवराय आदि इतिहास-प्रसिद्ध पात्र हैं। रामचरितमानस, रामाभ्युदय, वसुचरित्र, मनुचरित्र, कुमारसम्भव आदि के पात्र पौराणिक हैं। कलापूर्णोदय काल्पनिक महाकाव्य है, अतः उसके प्रायः सभी पात्र काल्पनिक हैं। यद्यपि श्रीकृष्ण, नारद आदि नाम पुराण-प्रसिद्ध अवश्य हैं। पद्मावत में राघवचेतन और देवपाल काल्पनिक पात्र हैं।

आचार्य लक्ष्मीकांतम् जी ने सूरनार्य के महाकाव्यों में प्राप्त स्त्री पात्रों के दो भेद किये हैं—(1) प्रज्ञा-मूर्तियाँ एवं प्रणय-मूर्तियाँ। प्रज्ञा-मूर्तियाँ कार्य-निर्वहण-कुशल एवं बुद्धिवैभव से युक्त हैं। प्रणय-मूर्तियों का तात्पर्य प्रेमभाव की प्रतिमूर्ति के रूप में चित्रित नायिकाओं से है। 'प्रभावती-प्रद्युम्न' में

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

शुचिमुखी नामक हंसी, शृंगारनैषध का हंस एवं पद्मावत का तोता प्रज्ञाप्रधान रूप में लक्षित होते हैं। कलापूर्णोदय की सुगात्री, मधुरलालसा, कलभाषिणी और हिन्दी की पद्मावती तथा नागमती प्रेमप्रधान पात्र हैं। यद्यपि लक्ष्मीकांतम् जी ने यह विभाजन स्त्री-पात्रों के विषय में किया है, फिर भी पुरुष-पात्रों को इस विभाजन के अन्तर्गत स्थान दिया जा सकता है। सूरनार्य के चरित्र-चित्रण के विवेचन के सन्दर्भ में ही आचार्य लक्ष्मीकांतम् जी ने मुख्य पात्र तथा प्रतियोग पात्र के नाम से एक और विभाजन किया है। उनका मत इस प्रकार है—"इस कवि के दोनों काव्यों में प्रायः सभी प्रधान पात्रों के प्रतियोग पात्र मिलते हैं। कलभाषिणी के लिये रंभा, मणिकन्धर के लिये नलकूबर, नारद के लिये तुंबुर, अभिनव-कौमुदी के लिये मधुरलालसा और शुचिमुखी के लिये रागवल्लरी प्रतियोग रूप में सन्निविष्ट पात्र हैं। इन युग्मों के पात्र परस्पर स्पर्धा प्रकट करते हैं जिससे उनका अंतर प्रस्फुटित होता रहता है और साथ ही कथावस्तु को गति मिलती है। इस शिल्पविधि का अनुसरण सूरनार्य ने केवल पात्रचित्रण में ही नहीं प्रत्युत् रूपचित्रण में भी किया था।"[1] कदाचित् सूरनार्य के पात्रों पर ही यह विभाजन घटित होता है।

आलोच्य महाकाव्यों में चरित्रचित्रण सम्बन्धी कवियों के दृष्टिकोण की मीमांसा तथा पात्रों का विविध दृष्टियों से वर्गीकरण के उपरान्त चरित्रचित्रण में अपनायी गयी पद्धति अब विचारणीय है। महाकाव्यों में चरित्रचित्रण की निम्नलिखित शैलियाँ लक्षित होती हैं—

(1) जीवन के व्यापक क्षेत्र में पड़नेवाली विविध घटनाओं के पट पर पात्रों के कायिक, मानसिक तथा वाचिक व्यवहारों को अंकित करना।

(2) जीवन के सीमित एकांगी रूप में चरित्रचित्रण।

(3) लौकिक या आध्यात्मिक सिद्धान्त की दृष्टि से प्रतीक रूप में पात्र परिकल्पना।

(4) उल्लेखात्मक रीति अर्थात् पात्रों की विशेषताओं के विश्लेषण के स्थान पर कवि द्वारा संक्षिप्त कथन।

(5) मनोवैज्ञानिक रीति जिसमें कवि पात्रों की मनोभावनाओं को प्रदर्शित करता है।

(6) आलंकारिक शैली अर्थात् अलंकारों के माध्यम से चरित्रगत विशेषताओं को ध्वनित करना।

---

1. तेलुगु विज्ञानसर्वस्वमु—चतुर्थ भाग, पृ. 1217

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

जीवन के व्यापक पक्ष को लेकर चरित्रचित्रण रामचरितमानस में किया गया है। तुलसी ने मार्मिक प्रसंगों का निर्वाह चलते ढंग से नहीं प्रत्युत् रुचिपूर्वक किया है। इससे पात्रों की विशेषताएँ स्पष्ट रूप से चित्रित हुई हैं। मानसकार ने कई सुन्दर संवादों की योजना करके पात्रों की विशेषताओं को दर्शाया है।

आचार्य शुक्ल के अनुसार "राम-लक्ष्मण के चरित्रों का चित्रण आख्यान के भीतर सबसे अधिक व्यापक होने के कारण सबसे अधिक पूर्ण है। भारत का चरित्र जितना अंकित है, उतना सबसे उज्ज्वल सबसे निर्मल और सबसे निर्दोष है। पर साथ ही यह भी है कि वह उतना अधिक अंकित नहीं है। राम से भी अधिक जो उत्कर्ष उनमें दिखायी पड़ता है वह बहुत कुछ चित्रण की अपूर्णता के कारण, उतनी अधिक परिस्थितियों में उसके न दिखाये जाने के कारण।"[1]

शुक्ल जी ने भरत के चरित्र के उत्कर्ष के लिए चित्रण की अपूर्णता को कारण ठहराया है। किन्तु नायक होने के कारण राम का चरित्र जितनी अधिक परिस्थितियों में दिखाया जा सकता है, उतनी परिस्थितियों में नायकेतर पात्र भरत को तुलसी ही नहीं रामकाव्य लिखनेवाला कोई भी कवि प्रदर्शित नहीं कर सकता। हाँ, यदि भरत नायक होते तो राम का चरित्र गौण रूप में ही दिखाया जाता। कहने का यही तात्पर्य है कि किसी भी सफल कवि के द्वारा किसी आख्यान के अन्तर्गत अधिक प्रसंगों की योजना कुछ पात्रों को ही व्यापक रूप में दिखा सकती है, सभी को नहीं।

जिन काव्यों में पात्रों को शृंगारी भावनाओं के प्रतिरूप आदर्श प्रेमी, वीर पुरुष आदि के रूप में चित्रित किया गया है, वहाँ जीवन का व्यापक रूप अंकित नहीं होता। उदाहरणार्थ 'मनुचरित्र' में चित्रित किया गया कि प्रवर धर्मनिष्ठ और संयमित स्वभाव का था। एकांत प्रदेश में अनिन्द्य सुन्दरी के द्वारा तरह-तरह के प्रलोभन दिये जाने पर भी प्रवर अपने आदर्श से विचलित नहीं होता। इस आदर्श के प्रतिपादन के लिये कवि ने 'प्रवर' की परिकल्पना की है। इस आदर्श की सिद्धि के उपरान्त काव्य में इस पात्र के दर्शन नहीं होते। 'पद्मावत' में रत्नसेन और पद्मावती का चित्रण भी जीवन के व्यापक क्षेत्र में नहीं हुआ है।

पद्मावत में पात्र-चित्रण की प्रतीक-शैली दृष्टिगत होती है। संस्कृत के प्रबोध-चन्द्रोदय में प्रतीकशैली प्रयुक्त हुई है। आधुनिक महाकाव्य कामायनी

1. गोस्वामी तुलसीदास, पृ. 101

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

में लज्जा, श्रद्धा, इडा आदि पात्र मानवीय मनोभावों के प्रतीक हैं। जायसी ने अपने कथानक के उत्तरार्द्ध में पात्रों की लौकिक प्रवृत्तियों को भी महत्त्व दिया है। फिर भी 'पद्मावत' के शीलचित्रण की शैली मुख्य रूप से प्रतीक-शैली है। 'कलापूर्णोदय' में रूपानुभूति, मधुर लालसा, कलापूर्ण आदि पात्र प्रतीक ही हैं। इन प्रतीकों के माध्यम से चतुर्मुख ब्रह्मा और वाणीदेवी की श्रृंगारलीला का आख्यान प्रस्तुत किया गया है। प्रतीक-शैली की कुछ सीमाएँ होती हैं। कवि का ध्यान प्रतीक-निर्वाह पर लगे रहने के कारण स्वाभाविकता की मात्रा कम होती है।

उल्लेखात्मक रीति से किये गये चरित्रचित्रण को श्रेष्ठ नहीं मान सकते। उल्लेखमात्र से पाठकों के मन में पात्रों का प्रत्यक्षीकरण नहीं होता। जब तक परिस्थिति के अन्दर रखकर पात्र की क्रिया-प्रतिक्रिया को दर्शाया नहीं जाता तब तक चरित्रचित्रण पूर्ण नहीं होता। कवि पात्र के गुण-दोषों का उल्लेख कर सकता है। पर साथ ही उस उल्लेख की पुष्टि नहीं होती तो चित्रण पूरा नहीं होता। तुलसी ने अपनी ओर से पात्रों के गुणों का उल्लेख किया है, साथ ही उन उल्लेखों के अनुरूप पात्रों के कार्य भी दिखाये हैं। 'कलापूर्णोदय' में पात्रों के व्यवहार के माध्यम से चरित्रगत विशेषताओं को प्रकट किया गया है। इसके विपरीत 'रामाभ्युदय' में बहुत संक्षेप में राम के राजतिलक की तैयारी से लेकर वनगमन तक की घटनाओं का उल्लेख किया गया है। राम की गुरुभक्ति, राम के प्रति दशरथ का वात्सल्य तथा कैकेयी के स्वार्थ को चित्रित करने में कवि की तत्परता दिखाई नहीं पड़ती। 'रामचन्द्रिका' के कवि ने भी इस शैली का परिचय खूब दिया है।

पात्रों के शीलचित्रण में मनोवैज्ञानिक पद्धति, जिसमें पात्रों की मनोभावनाओं को संवाद या घटना के माध्यम से प्रस्तुत किया जाता है, बहुत ही उत्कृष्ट पद्धति है। गोस्वामी तुलसीदास ने मंथरा-कैकेयी संवाद में तथा चित्रकूट प्रसंग में इस पद्धति का प्रयोग किया है। केशव के अंगद-रावण-संवाद में यह रीति दृष्टिगत होती है। तिक्कनामात्य ने 'निर्वचनोत्तर रामायण' में तथा तिम्मनार्य ने 'पारिजातापहरण' में इस पद्धति से चरित्रचित्रण किया है। राम के मन में सीता के चरित्र पर पूर्ण विश्वास था। इसके बावजूद लोकनिंदा का ख्याल करके श्रेष्ठ राजा के आदर्श के पालन के रूप में राम ने सीता का परित्याग किया। सीता को वन भेजते समय राम के मन में भयंकर अग्नि-ज्वाला थी। इस परिस्थिति से गुजरते हुए उन्हें अपार दुःख मिला था। फिर भी उन्होंने धीर स्वभाव के कारण दुःख प्रकट होने नहीं दिया। राम के

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

आचरण के माध्यम से मनोवैज्ञानिक रीति से तिक्कनामात्य ने चरित्रचित्रण किया है। इसी प्रकार मानवती नायिका सत्यभामा की विविध मनोदशाओं का अंकन तिम्मनार्य ने 'पारिजातापहरण' में किया है। अपनी सखी के प्रति सत्यभामा के वचनों, श्रीकृष्ण से उनके संवाद और सत्या के आचरण से उस नायिका के मन की व्यथा, नायक के प्रति अपार प्रेम, सपत्नी के प्रति ईर्ष्या आदि भावनाओं का अच्छा चित्रण किया गया है।

आलोच्य महाकाव्यों में परिलक्षित चरित्रचित्रण का विवेचन करने के उपरान्त कह सकते हैं कि प्रायः सभी रामकाव्यों में राम को परब्रह्म रूप में चित्रित करने की दृष्टि रही है। तुलसी, केशव, रामभद्र, पापराज और रंगनाथ-रामायणकार इस दृष्टिकोण से युक्त कवि हैं, किन्तु तिक्कनामात्य ने राम के धीरोदात्त नृपत्व का चित्रण किया है। 'कुमारसम्भव' में नन्नेचोड़ ने महादेवजी को सभी देवताओं के अधिपति अर्थात् परमतत्व के रूप में चित्रित किया है। मर्यादामार्गी तुलसी के पात्र सामाजिक-नैतिक मूल्यों का प्रतिनिधित्व करते हैं। गोस्वामी जी ने इसलिये स्रोत-ग्रंथों में प्राप्त अनुचित अंशों का परिष्कार करके चरित्रचित्रण को आदर्शमय बना दिया है। जिन काव्यों में कवियों की दृष्टि अलंकार-प्रयोग एवं वर्णनात्मकता पर विशेष रूप से लगी रही वहाँ चरित्रचित्रण पर पर्याप्त ध्यान नहीं दिया गया। रीतिप्रियता और श्रृंगारी मनोवृत्ति के बावजूद कुछ प्रतिभाशाली कवियों ने सजीव रूप में पात्र परिकल्पना की है।

चरित्रचित्रण की मनोवैज्ञानिक, आलंकारिक, प्रतीकात्मक आदि विविध शैलियाँ होती हैं। एक ही महाकाव्य में एकाधिक शैलियों का प्रयोग संभव है। गोस्वामी तुलसीदास, तिक्कनामात्य, तिम्मनार्य और सूरनार्य के महाकाव्यों में मनोवैज्ञानिक रीति से किया गया चरित्रचित्रण मिलता है।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

षष्ठ अध्याय

रसव्यंजना

हिन्दी के महाकाव्य-स्रष्टाओं में तुलसी, केशव, जायसी, चन्द आदि ने तथा तेलुगु के नन्नेचोड, पेद्दना, रामराजभूषण आदि महाकवियों ने विविध घटनाओं और वर्णनों का निर्वाह रसात्मक रीति से करके अपनी भावुकता एवं संवेदनशीलता का परिचय दिया है। वास्तव में भारतीय काव्य-दृष्टि ने काव्य में रस को अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान दिया है। आचार्य विश्वनाथ के मत में—"रस एवात्मा साररूपतया जीवनाधायको यस्य। तेन विना तस्य काव्यत्वा-भावस्य प्रतिपादितवात्।"[1] ध्वनिकार के शब्दों में भी—"नहि कवेरितिवृत्तमात्र निर्वहणेनात्मपद लाभः। इतिहासादेव तत्सिद्धेः"[2] इस प्रकार भारतीय मत में कथा की निर्वहण-चातुरी की अपेक्षा रस का महत्त्व हजारों गुना है।

आलोच्य भाषाओं के महाकाव्यों में कवियों ने रससम्बन्धी अपनी दृष्टि का परिचय प्रायः दिया है। नन्नेचोड ने अपनी कृति को 'नवरसभावभरित' और 'रसबन्धुर' स्वीकार किया है।[3] काव्यरस के आस्वादन में अक्षम अरसिकों को लक्ष्य करके इस कवि ने लिखा—"अल्प व्यक्ति रसयुक्त काव्य की प्रशंसा नहीं करके नीरस काव्य को ही उत्कृष्ट मानते हैं, जैसे मक्खियों का समुदाय गन्ने के रस को छोड़कर खोई पर भिनभिनाता है।"[4] रामराजभूषण अपने महाकाव्य को 'रसोचित चमत्क्रियाकल्प भव्यरूप' में रचने में प्रवणचित्त थे।[5] तिक्कनामात्य ने कुकवि को बेमेल शब्दों की योजना से रसभंग करनेवाला कहा।[6] प्रकारान्तर से कवि ने सूचित किया है कि काव्य में रस का अतीव महत्त्व है और रस के अपकर्षक दोषों से बचने की नितान्त आवश्यकता है।

स्वर्गीय काटूरि वेंकटेश्वरराव जी ने तेलुगु काव्यधारा को कालक्रम की दृष्टि से तीन भागों में विभक्त करते हुए ईस्वी 1500–1850 के कालखण्ड में रचित काव्यों के संबंध में लिखा—"पूर्ववर्ती महाभारत आदि रचनाओं की भांति धर्मोपदेश या कथाकथन इस युग के काव्यों में मुख्य नहीं है। विभाव, अनुभाव आदि से परिपुष्ट रस ही इन काव्यों में प्रधान है।"[7] तेलुगु के अधिकांश महाकाव्य इस समयावधि में विरचित हैं। सोलहवीं शती तो महाकाव्य-विधा का उत्कर्षकाल है। कहने का यही तात्पर्य है कि तेलुगु के महाकाव्यों में रस की व्यंजन के प्रति कविगण दत्तचित थे।

---

1. साहित्यदर्पण-प्रथम परिच्छेद, पृ. 19
2. वही, पृ. 18
3. कुमारसम्भव, 1–45–47
4. वही, 1–30
5. वसुचरित्र, 1–12
6. निर्वचनोत्तर रामायण, 1–16
7. तेलुगु काव्यमाला–निवेदन, पृ. 7

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

हिन्दी के महाकवि काव्यजगत में प्रतिष्ठा-प्राप्त रससिद्धान्त से और उस विषय में सम्पन्न विचारमंथन की चेतना से अवगत थे। तुलसी के महाकाव्य में रसविषयक संकेत प्राप्त होते हैं, यथा—

'वर्णानामर्थसंधानां रसानां छन्दसामपि'[1]

'भावभेद रसभेद अपारा। कवित दोष गुन विविध प्रकारा।।[2]

'नवरस जप तप जोग विरागा। ते सब जलचर चारु तड़ागा।।'[3]

मानस में कथा-प्रसंगों के माध्यम से अप्रत्यक्ष रूप से प्रकट उद्‌गारों के आधार पर श्री वैद्यनाथ सिंह ने अनुमान किया है कि—"गोस्वामी जो भी रस को व्यंजना का व्यापार मानते हैं। जैसे मिट्टी के नये बरतन में गन्ध पहले ही से रहती है, पर जल का संयोग होते ही वह तुरन्त व्यक्त हो जाती है और अनुभूत होने लगती है, वैसे ही सहृदय सामाजिक के अन्तःकरण में रति आदि वासनाएँ पहले ही से अव्यक्त रूप से स्थित रहती हैं और नाटकादि के विभाव आदि व्यंजकों के संयोग से व्यक्त हो जाती हैं। वासना का जागना ही रसास्वाद है। गोस्वामी जी का यही मत जान पड़ता है।"[4]

'पृथ्वीराजरासो' में व्यंजित रस के विषय में कवि ने कहा है—

"रासउ असंभु नवरस सरस छन्दु चंदु किअ अविय सम
श्रृंगार वीर करुणा विभामय अद मुत्तहसंतसम।"[5]

अतः स्पष्ट है कि हिन्दी के आदि महाकाव्य में यथास्थान नवरसों की योजना की गयी है। सूफी कवि जायसी के महाकाव्य में—

"कवि बियास कँवला रस पूरी। दूरि सो नियर, नियर सो दूरी।।
नियरे दूर, फूल जस काँटा। दूरि जो नियरे, जस गुड़ चाँटा।"[6]

अर्थात् कवि और व्यास की कृति में रस का कटोरा भरा हुआ है। दूरस्थ रसिक के लिये वह पास है, किन्तु निकटस्थ अरसिक के लिये वह दूर है। निकटवाले के लिये दूर ऐसे जैसे फूल के संग काँटे के लिये पुष्प का रस दूर रहता है। दूरवाले के लिये निकट ऐसे जैसे चींटे के लिये गुड़। यहाँ पर कवि द्वारा प्रयुक्त रस शब्द का तात्पर्य अलौकिक सौन्दर्य भी है। केशवदास हिन्दी के प्रमुख आचार्यों में गणनीय हैं और उनकी 'कविप्रिया' में रस को अलंकार के अन्तर्गत मानकर रसवद् अलंकार का निरूपण किया गया है।

---

1. मानस—बालकाण्ड, श्लोक—1
2. वही, 9—5
3. वही, 37—5
4. मानस में रीतितत्व, पृ. 127
5. पृथ्वीराजरासउ, पृ. 327
6. पद्मावत—स्तुतिखण्ड, 24

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

'रसिकप्रिया' में कवि ने नवरसों को उदाहरण सहित निरूपित करके शृंगार को रसराज माना है।

"नवहू रस के भाव बहु, तिनके भिन्न विचार।
सब को केशवदास हरि, नायक है सिंगार ॥"[1]

इस प्रकार हिन्दी और तेलुगु के महाकाव्य-प्रणेताओं ने काव्य में रस के महत्त्व को स्वीकार किया है और अपनी कृतियों में रस-व्यंजना की है।

अंगीरस तथा अंगरस

विश्वनाथ के अनुसार महाकाव्य में शृंगार, वीर, शान्त में से कोई एक अंगीरस होता है और शेष अंगरस। तेलुगु के अधिकांश महाकाव्यों में अंगीरस शृंगार है, जैसे वसुचरित्र, कलापूर्णोदय, कुमारसंभव आदि में। 'श्रीकालहस्ति-माहात्म्य' का प्रधान रस शान्त है। 'आमुक्तमाल्यदा' में गोदादेवी नायिका है, अतः प्रधान रस शृंगार है। यह शृंगार देवता विषयक रति में परिणत होने के कारण शान्तरस के अन्तर्गत माना जा सकता है। किन्तु भक्ति की रसरूप में अलग सत्ता माननेवाले आचार्यों के मतानुसार यहाँ भक्तिरस है।

चन्दबरदाई, जोधराज, मान, सूदन, गोरेलाल आदि के महाकाव्यों में प्रधान रस वीर है, जो आदि से अन्त तक के समस्त वर्णनों एवं घटनाओं में ओतप्रोत है। रामचन्द्रिका में मुख्यतः संयोग शृंगार, विप्रलंभ शृंगार तथा रामकृत राज्यनिन्दा आदि प्रसंगों में शान्त रस दिखाई पड़ता है। तो भी "राम के चरित्र में वीरत्व की प्रधानता होने तथा अन्य पात्रों में भी वीर भावनाओं के बाहुल्य के कारण रामचन्द्रिका का अंगीरस वीर है। आधिकारिक कथा की दृष्टि से भी इसका प्रधान रस वीर ही है, क्योंकि नायक राम असीम साहस तथा वीरता का प्रदर्शन करने के अनन्तर राज्यफल को प्राप्त करते हैं।"[2] किन्तु स्मरणीय है कि वाल्मीकि रामायण में करुण को अंगीरस माना जाता है। विश्वनाथ के अनुसार—"मालतीमाधवे रतिः, लटकमेखले हासः, रामायणे शोकः, महाभारते शमः"[3]

रामचरितमानस के अंगीरस के विषय में मतभेद हो सकता है। यदि भक्ति को स्वतन्त्र रस माना जाय तो कह सकते हैं कि इस महाकाव्य का अंगीरस भक्ति है। क्योंकि मानस में दास्यभावरूपी भगवद्‌रति की व्यंजना

---

1. रसिकप्रिया, 1—19
2. रामकाव्य की परम्परा में रामचन्द्रिका का विशिष्ट अध्ययन, पृ. 375
3. साहित्यदर्पण-तृतीय परिच्छेद, पृ. 105

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

बहुत हुई है। किन्तु स्थान-स्थान पर की गयी विषय-सुखों की निन्दा एवं मुख्यत: उत्तरकाण्ड के आधार पर मानस को शान्तरस-प्रधान महाकाव्य मान सकते हैं। आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र के अनुसार भक्ति को शान्तरस के अन्तर्गत नहीं माननेवाले आलंकारिक पण्डितराज जगन्नाथ हैं। उनकी मान्यता का यही आधार है कि शान्त का स्थायी भाव विराग है और भक्ति तो परानुरक्ति होती है।[1]

इस प्रकार हिन्दी के अधिकांश महाकाव्यों में वीररस अंगीरूप में प्रतिष्ठित है। शान्त और शृंगार-प्रधान महाकाव्य भी हैं। तेलुगु साहित्य में बाहुल्य शृंगारप्रधान महाकाव्यों का है।

अब क्रमश: शृंगार, वीर, करुण आदि नवरसों की व्यंजना से संबन्धित स्थलों पर विचार किया जायेगा।

शृंगाररस

पृथ्वीराजरासो में नायक के द्वारा संयोगिता, इच्छिनी आदि नायिकाओं के प्रति किये गये प्रणय-व्यवहारों के वर्णन के द्वारा शृंगार की अच्छी व्यंजना हुई है। विवाह से पूर्व और उसके उपरान्त के नख-शिख वर्णन, अनंग-क्रीड़ा और विहार ऐसे स्थल हैं जिनमें संयोग शृंगार की व्यंजना की गयी है। जायसी ने पद्मावती और रत्नसेन के मिलन-प्रसंग को लेकर संयोग शृंगार का अच्छा परिपाक किया है और इस परिपाक में षट्ऋतु-वर्णन उद्दीपन रूप में प्रयुक्त हैं। जायसी ने नख-शिख वर्णत की योजना करके नायिका के सौन्दर्य को प्रत्यक्ष किया है। 'पद्मावत' के काव्य-वैभव के विधायक अंशों में विप्रलंभ शृंगार की मनोहर व्यंजना भी एक है। पद्मावती तथा नागमती को आश्रय बनाकर कवि ने विरह-वर्णन किया है। इस सिलसिले में बारहमासा का विधान है। आचार्य रामचन्द्रशुक्ल के अनुसार नागमती का विरह-वर्णन हिन्दी साहित्य में एक अद्वितीय वस्तु है।[2]

'मानस' में शृंगार के दोनों पक्षों की व्यंजना राम और सीता को परस्पर आलंबन और आश्रय बनाकर की गयी है। किन्तु कवि की मर्यादित दृष्टि के कारण शृंगार को पवित्र तथा संक्षिप्त रूप में वर्णित किया गया है। अपभ्रंश के चरितकाव्यों एवं चन्द, जायसी, केशव आदि की भांति का नग्न शृंगार का मानस में पूर्ण अभाव है। पुष्पवाटिका प्रसंग में तथा विवाह-प्रसंग में संयोग शृंगार का रमणीय विधान है। इसके उपरान्त—

---

1. मानस में रीतितत्व, पृ. 128   2. जायसी ग्रन्थावली की भूमिका, पृ. 39

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

"हे खग मृग हे मधुकरश्रेणी। तुम देखी सीता मृगनयनी।"[1]

आदि उक्तियों में वियोग श्रृंगार की सुन्दर व्यंजना है।

केशव ने सीता-राम के वाटिका-विहार, विलास-क्रीडा आदि वर्णनों में संयोग श्रृंगार की तथा सीता-हरण के उपरान्त के प्रसंगों में वियोग श्रृंगार की व्यंजना की है। मानस की भांति 'रामचन्द्रिका' में भी प्रकृति को उद्दीपन विभाव के रूप में उपस्थित किया गया है। कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

"धाम को राम समीप महाबल सीतहिं लागत है अति शीतल।[2]

"हिमांशु सूर सो लगै सो बात वज्र सी बहै।
दिशा लगैं कृसानु ज्यों, विलेप अंग को दहैं।"[3]

देखि राम वर्षाऋतु आई। रोम रोम बहुधा दुःखदायी॥[4]

नन्नेचोड ने सती-शिव की विलास क्रीड़ाओं में संयोग श्रृंगार, शिव-पार्वती के विरह-वर्णन में विप्रलंभ श्रृंगार, शिव-पार्वती-विवाह और उनके आनन्द-भोग में संयोग श्रृंगार का सुन्दर विधान किया है। उद्दीपन विभाव के रूप में प्रकृति का चित्रण करके रसोचित वातावरण उपस्थित किया गया है। वसुचरित्र, पारिजातापहरण, मनुचरित्र, रामाभ्युदय आदि प्रमुख काव्यों में श्रृंगार की व्यंजना पर कवियों ने विशेष ध्यान दिया है। नायिकाओं का रूपचित्रण नखशिख-वर्णन के माध्यम से इन काव्यों में किया गया है। विरहिणी नायिकाओं ने मलयानिल, चन्द्रमा एवं कामदेव को उपालंभ दिये हैं। वसुचरित्र आदि में नायिकाओं के वीणावादन के सुन्दर चित्र प्राप्त होते हैं। इस प्रकार आलोच्य भाषाओं के महाकाव्यों में श्रृंगार रस का अच्छा परिपाक किया गया है। उभय क्षेत्रों के कवियों ने नख-शिख वर्णन, उद्दीपन रूप में प्रकृति-चित्रण आदि समान उपादानों का अवलम्ब ग्रहण किया है।

वीररस

हिन्दी के महाकाव्य-वाङ्मय में वीररसात्मक स्थल यथेष्ट रूप में उपलब्ध होते हैं। चन्द, सूदन, लाल, मान आदि के द्वारा वीर रस को काव्यजगत् में समुन्नत स्थान प्राप्त हुआ है। पृथ्वीराज, छत्रसाल आदि नरेशों की युद्धवीरता, धर्मवीरता तथा दयावीरता का चित्रण किया गया है। उत्तम प्रकृतिवाले नरेशों का उत्साह इन काव्यों में भली भांति चित्रित है। पद्मावत में युद्ध के प्रसंगों में वीररस की अवतारणा है। रामचरितमानस का लंकाकाण्ड

1. मानस—अरण्यकाण्ड, 30—5
3. वही, 12—42
3. रामचन्द्रिका, 9-37
4. वही, 13—11

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

युद्ध वर्णनों से भरा हुआ है। राम-रावण-युद्ध, लक्ष्मण-परशुराम-संवाद, धनर्भंग के अवसर पर लक्ष्मण के वचन आदि मानस के वीररसात्मक स्थल हैं। राम की दानवीरता, धर्मवीरता एवं दयावीरता के व्यंजक स्थल भी मानस में प्राप्त होते हैं। रामचन्द्रिका में स्थान-स्थान पर रस की व्यंजक उक्तियों का समावेश है।

तेलुगु के महाकाव्यों में यद्यपि वीररसात्मक प्रसंगों का अभाव नहीं है, तो भी हिन्दी की तुलना में ऐसे स्थल कम हैं। 'कुमारसंभव' में षडानन-तारक युद्धों में वीररस की अच्छी योजना है। 'रामाभ्युदय', 'निर्वचनोत्तर रामायण' आदि रामकाव्यों में भी युद्ध संबंधी उत्साह का अच्छा चित्रण है। वास्तव में नाचन सोमनाथ के 'उत्तर हरिवंश' नामक काव्य में वीरों के युद्धोत्साह संबंधी बड़े ही मार्मिक चित्र उपलब्ध होते हैं।

रौद्ररस

यह रस युद्ध के प्रसंगों में अधिकतर दिखाया जा सकता है। युद्ध-वर्णनों में वीररस के सहायक के रूप में रौद्ररस की व्यंजना होती है। नन्नेचोड कृत 'कुमारसंभव' के दक्षयज्ञध्वंस के प्रसंग में तथा तारकासुर-कार्तिकेय युद्ध के अवसर पर रौद्ररसात्मक स्थल संयोजित हैं। 'रंगनाथ रामायण', 'भास्कर रामायण', 'रामाभ्युदय' आदि रामकथात्मक महाकाव्यों में धनुर्भंग के प्रसंग में परशुराम का क्रोध, समुद्र पर ब्रह्मास्त्र का प्रयोग करनेवाले राम का क्रोध तथा रावण से लड़ते समय राम का क्रोध वर्णित करके रौद्ररस की योजना की गयी है। मानस में भी इन प्रसंगों में रौद्ररस की अवतारणा है। इनके अतिरिक्त चित्रकूट में सेनासहित आगत भरत को देखकर लक्ष्मण की प्रतिक्रिया तथा जनक की बातों पर लक्ष्मण का रोष रौद्ररसात्मक हैं। रासो में कैंवासवध में पृथ्वीराज की क्रोधपूर्ण मुद्रा भी इस सन्दर्भ में उल्लेखनीय है।

करुणरस

रामकथा में कई शोकभावनायुक्त प्रसंग हैं। आदिकाव्य को काव्य शास्त्रियों ने करुणरस-प्रधान माना ही है। हिन्दी एवं तेलुगु के रामकथात्मक महाकाव्यों में यद्यपि करुण अंगीरस नहीं है तथापि रामवन-गमन, दशरथ की मृत्यु, सुमन्त का पश्चात्ताप, लक्ष्मण शक्तिवाला प्रसंग, मन्दोदरी का विलाप आदि स्थलों में करुणरस का पोषण किया गया है। 'रामाभ्युदय' में चित्रकूट-स्थित सीता-राम का, दशरथ मृत्यु की खबर पाकर शोक करना, राममुद्रिका को देखकर सीता जी का विलाप और राम के लिए दशरथ-विलाप ऐसे स्थल हैं जो करुणरस की व्यंजना में रामभद्र कवि की समर्थता को

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

प्रमाणित करते हैं। 'मानस' में करुणरस की मंदाकिनी कतिपय स्थलों में प्रवाहित है। निम्नोक्त पंक्तियाँ उदाहरण के तौर पर द्रष्टव्य हैं—

"सहि न सके रघुवर बिरहागी। चले लोग सब व्याकुल भागी॥
करि बिलाप सब रोवहिं रानी। महाविपत किमि जाइ बखानी॥
सुनि विलाप दुःखहू दुःख लागा। धीरज हू कर धीरज भागा॥[1]"

और

"गृह सारथिहिं फिरेउ पहुँचाई। बिरहु विषाद बरनि नहिं जाई॥
अहह मंदमनु अवसर चूका। अजहुं न हृदय होत दुइ टूका॥
मीजि हाथ सिर धुनि पछिताई। मनहुं कृपन धनराशि गंवाई॥[2]॥

केशव ने सीता-परित्याग के सन्दर्भ में तथा लक्ष्मण-शक्ति के अवसर पर अत्यन्त मार्मिक अभिव्यक्ति की है, जो करुण रस का श्रेष्ठ उदाहरण है। कंकंटि पापराज एवं तिक्कनामात्य ने सीता विलाप के प्रसंगों में, करुणरस का अच्छा परिपाक किया है। 'कुमारसंभव' में शिव की नेत्राग्नि में भस्मीभूत कामदेव के लिए रतीविलाप, समरभूमि से तिरोगमन करनेवाले तारकासुर का वर्णन ऐसे स्थल हैं, जिनमें करुणरस का सुन्दर विधान दृष्टिगत होता है।

भयानकरस

युद्ध वर्णन के अवसर पर भयानक रस की व्यंजना के लिए पर्याप्त अवसर मिलता है। रामचरितमानस में परशुराम से भयभीत राजाओं के वर्णन में इस रस की व्यंजना की गयी है—

"देखत भृगुपति बेषु कराला। उठे सकल भय बिकल भुआला॥
पितु समेत कहि निज नामा। लगे करन सब दण्ड प्रनामा॥[1]

इसी प्रसंग में रामचन्द्रिकाकार ने और सुन्दर ढंग से भयानक रस की व्यंजना की है। क्योंकि परशुराम के आगमन पर मस्त हाथियों का मद उतर जाता है, दुन्दुभी-ध्वनि समाप्त की जाती है और क्षत्रिय लोग भीति के कारण कवच काटकर नारी-वेष धारण कर लेते हैं और हथियार डालकर पलायन करते हैं। केशव की पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

"मत्त दंति असत्त ह्वै गये देखि देखि न गज्जहीं।
ठौर ठौर सुदेस केसव दुन्दुभी नहिं बज्जहीं॥

---

1. मानस-अयोध्याकाण्ड, 152-4
2. वही, 144-4
3. मानस—बालकण्ड, 269—1

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

डारि डारि हथ्यार सूरज जीव लै लै भज्जहीं।
काटिकै तन त्रान एकहि नारि भेषन सज्जहीं ।।[1]

तुलसी ने शिव विवाह, राम-धनुर्भंग, कैकेयी-क्रोध, राम का समुद्र पर क्रोध, राम के बनगमन के बाद अयोध्या की दशा आदि स्थलों पर भयानक रस की योजना की है। तेलुगु के रामकथात्मक महाकाव्यों में इन अवसरों पर इस रस का पोषण हुआ है। उदाहरणस्वरूप रंगनाथ रामायण में युद्धकाण्ड के अन्तर्गत राम के क्रोध की प्रतिक्रिया के रूप में समुद्र की भीति को प्रकट करनेवाली पंक्तियाँ द्रष्टिव्य हैं। 'रामाभ्युदय' में राम की समरसन्नद्धता का आतंक कपिवरों, दिग्गजों, ब्रह्मलोक-निवासियों तथा वैकुण्ठ पर दिखाया गया है। कुमारसंभव में नन्नेचोड ने कार्तिकेय के युद्ध के सन्दर्भ में नाचनेवाली प्रेतात्माओं, भ्रमण करनेवाले गिद्धों, लड़ने-झगड़नेवाले पिशाचों, भूतों और शृगालों से युक्त रणभूमि का वर्णन किया है। इससे भयानक रस की निष्पत्ति होती है। पृथ्वीराजरासो, हम्मीररासो आदि वीर-काव्यों में युद्धवर्णन के दौरान इस रस की व्यंजना हुई है।

बीभत्सरस

कवियों ने युद्ध के प्रसंगों के अन्तर्गत वीर, रौद्र और भयानक रसों के साथ बीभत्सरस के लिए अवकाश निकाल लिया है। नन्नेचोड ने रणभूमि की तुलना यमराज के रसोईघर से करते हुए मृतवीरों के शरीर-खण्डों का वर्णन किया है। कवि ने यह भी कल्पना की है कि मरे हुए सैनिकों के कटे हुए अंग एक दूसरे से इस रीति से मिले हुए थे, मानों यमराज ने भोजन करके वमन कर दिया हो। 'मानस' में युद्ध संबंधी प्रसंगों के अन्त में बीभत्स रस को स्थान मिला है। 'रंगनाथ रामायण' में भी ऐसे वर्णन हैं, जिनमें जुगुप्सा भाव की योजना की गयी है। केशव ने लवकुश-युद्ध प्रसंग में रक्त की नदियों के प्रवाहित होने और अनेक मृत शरीरो का वर्णन करके बीभत्स रस की अवतारणा की है। पृथ्वीराजरासो में युद्धों के अन्तर्गत योगिनियो का रुधिरपान, गिद्धों का चिल्लाना आदि दृश्यों की योजना करके बीभत्स रस को स्थान दिया है। जोधराजकृत हम्मीरदेव युद्ध-प्रसंग की निम्न पंक्तियाँ इस दृष्टि से उदाहरणीय हैं—

'परे मीर एते दुहू खेत सूरं।
बहे नीर ज्यों रक्त वाहंत कूरं ।।

---

1. रामचन्द्रिका, 7–2

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

नची जुग्गनी और भैरव सु नच्चैं ।
भखै गिद्ध आमिष्ष जंबू सु रच्चैं ।।"[1]

अद्‌भुतरस

जहाँ पर अलौकिक वस्तु का आलंबन रूप में तथा उसके गुणों का वर्णन उद्दीपन रूप में किया जाता है, जहाँ विस्मय स्थायीभाव है, वहाँ अद्‌भुत रस की स्थिति मानी गयी है । तुलसी ने राम की शिशुलीला के वर्णन के अवसर पर इस रस की अवतारणा की है ।

"एक बार जननी अन्हवाए । करि सिंगार पलना पौढ़ाए ।।
....
इहाँ उहाँ दुइ बालक देखा । मति भ्रम मोर कि आन बिसेखा ।।[2]

इसके अतिरिक्त सती के द्वारा राम की परीक्षा लेना, राम का पराक्रम देखकर परशुराम का आश्चर्यचकित होना, हनुमान जी का रूप-विस्तार तथा संकोच आदि प्रसंगों में अद्‌भुत रस की योजना है । केशव ने भरद्वाज ऋषि के आश्रम में बाघनियों का स्तन्यपान करनेवाले मृगों, हाथी के दाँतों पर बैठे सिंहों, सर्प के फनों पर नृत्य करनेवाले मयूरों आदि का वर्णन किया है । 'कलापूर्णोदय' में तपोवन-वर्णन के सन्दर्भ में बाघनियों को चाटनेवाली गायों और बाघनियों का स्तन्यपान करनेवाले मृगों का वर्णन किया गया है । कविवर धूर्जटी ने ब्रह्मा एवं वशिष्ठ की तपस्या-वर्णन के प्रसंगों में अद्‌भुत रस की सृष्टि की है । नन्नेचोड ने अपूर्व वस्तुओं का वर्णन करके इस रस का समावेश किया है । तारकासुर का मायायुद्ध और राक्षसों के कार्य नन्नेचोड के महाकाव्य में अद्‌भुत रसात्मक स्थल हैं ।

हास्यरस

विकृत आकार, वेष, भूषा तथा चेष्टाओं से हास्य उत्पन्न होता है और हास इस रस का स्थायी भाव है । 'कुमारसम्भव' में शिव जी का संकेत पाकर देवांगनाओं ने जब इन्द्र पर सुगन्धित जल की वृष्टि की, उस समय के देवराज के चित्रण में सुकुमार हास्य की सृष्टि की गयी है । दक्षयज्ञ के सन्दर्भ में भयभीत होकर पलायन करनेवाले देवताओं के वर्णन में हास्यरस का अच्छा परिपाक हुआ है । निर्वचनोत्तर रामायण में तिक्कनामात्य ने सीता-राम के वनविहार के सन्दर्भ में मृदु हास्य का अच्छा उदाहरण उपस्थित किया है ।

---

1. हम्मीररासो, पृ. 917
2. मानस—बालकाण्ड, 201—1—4

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

रामभद्र कवि ने ऋष्यशृंग और वेश्याओं के वार्तालाप के आधार पर हास्यरस की मनोहर योजना की है।

मानस में शिवजी के बरात के वर्णन में हास्यरस की अवतारणा है। नारदमोह-प्रसंग में भी हास्यरस है। आचार्य शुक्ल ने इसे शिष्ट हास्य कहा है। रामचन्द्रिका में केशव ने एक प्रसंग की योजना की है, जिसमें मन्दोदरी तथा उसकी सखियाँ अंगद को मूर्ख बनाती हैं। अंगद चित्रों को यथार्थ स्त्रियाँ समझकर पकड़ता है तो हास्यरस का उदाहरण उपस्थित हो जाता है। जायसी ने पद्मावती के द्वारा रत्नसेन के परिहास की योजना करके इस रस की प्रतीति करायी है।

शान्तरस

शान्तरस को कुछ आलोचकों ने अन्य रसों की तुलना में उत्कृष्ट माना है। इस मान्यता का कारण बताया जाता है कि यह मूलभूत रस और प्रकृतिरस है, जबकि अन्य रस विकृतिरस हैं। विकृतियाँ प्रकृति से उत्पन्न होती हैं और फिर प्रकृति में ही विलीन हो जाती हैं। किसी निमित्त को लेकर रत्यादि स्थायीभाव प्रकट होते हैं और उस निमित्त के दूर होने से फिर शान्तरस ही प्रकाशित होता है। शान्तरस को प्रधान रस माननेवाले आचार्य हैं आनन्दवर्धन, अभिनव गुप्त तथा भट्टतौत।[1]

तुलसी ने शान्तरस की व्यंजना मानस में कई स्थानों पर की है। संसार की असारता का कथन और विषय-सुखों की भर्त्सना के कारण इस रस का समावेश हुआ है। इतना ही नहीं मानस के अंगीरस के रूप में भी शान्त ही सुप्रतिष्ठित है। शान्तरस का एक उदाहरण नीचे उद्धृत किया गया है।

"क्षिति जल पावक गगन समीरा। पंचरचित अति अधम सरीरा॥
प्रगट सो तनु तव आगे सोवा। जीव नित्य केहि लगि तुम्ह रोवा॥[2]

केशव ने इस प्रकृतिरस की अवतारणा रामकृत राज्य-श्री निन्दा, बचपन के व्यवहार-जन्य दुःख, यौवन तथा बुढ़ापे के कष्टों का वर्णन आदि स्थलों में की है। जायसी ने पद्मावत के समूचे काव्य-शरीर में शृंगार के साथ साथ शान्तरस की भी प्रतिष्ठा की है। इस काव्य के अन्तिम भाग में अलाउद्दीन जब एक मुट्ठी राख उठा लेता है और कहता है कि यह पृथ्वी झूठी है तो यहाँ पर निर्वेद-भाव ही प्रधान है।

तेलुगु महाकाव्यों में विशिष्ट 'कुमारसंभव' में कवि ने अपने दार्शनिक

---

1. नन्नेचोडुनि वस्तुकविता, पृ. 55

2. मानस-किष्किंधाकाण्ड, 11–2, 3

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

दृष्टिकोण तथा स्वीकृत इतिवृत्त के अनुरूप शान्तरस को समुचित स्थान प्रदान किया है। मनुचरित्र में पेद्दनार्य ने वर्णित किया है कि स्वारोचिष मनु ने शांति दान्ति, दया, सत्य तथा शुचित्व में निरत तथा अकामी होकर चिरकाल तक तपस्या की। इस मनु ने अपने सम्मुख प्रत्यक्ष नारायण की स्तुति विविध प्रकार से की, अन्य सुखों से अपनी विमुखता बताकर केवल दास्यसुख की याचना की।[1] उक्त प्रसंग शान्तरस का अच्छा उदाहरण है। मनु के वैराग्य को काव्यान्त में निबद्ध करने के कारण इस महाकाव्य को शान्तरस-पर्यवसायी मान सकते हैं।

रसाभास

अनौचित्य से प्रवृत्त रस को रसाभास माना जाता है। हिन्दी तथा तेलुगु के रामकथात्मक महाकाव्यों में राम-लक्ष्मण पर मोहित शूर्पणखा के प्रसंग में तथा सीता जी पर रावण के मोहित होने के प्रसंग में शृंगार आभास है। क्योंकि वहाँ रति भाव उभयनिष्ठ नहीं है और धर्म-विरोधी भी है। रामायण के उत्तरकाण्ड की कथा लेकर तेलुगु में रचित महाकाव्यों में रंभा-रावण संवाद की योजना है। इस प्रसंग में रंभा रावण में अनुरक्त नहीं है, अतः शृंगाररस का आभास है। 'मनुचरित्र' के वरूथिनी-प्रवर प्रसंग में अनुराग केवल वरूथिनी की ओर से ही है, प्रवर की ओर से नहीं। अतः यह रसाभास का उदाहरण है। पेद्दनार्य ने इस महाकाव्य में एक स्थान पर विरहिणी चक्रवाक पक्षी का वर्णन किया है और यह वर्णन बहुत सुन्दर भी है। किन्तु तिर्यक-निष्ठ प्रणयभाव की व्यंजना के कारण इसको भी रसाभास माना जाता है। रामराजभूषण ने अपने महाकाव्य 'वसुचरित्र' में शुक्तिमती नदी तथा कोलाहल पर्वत के माध्यम से एकत्रनिष्ठ अनुराग का वर्णन किया है। अतः यह भी रसाभास का उदाहरण है।

मिश्रित रस

रसमैत्री और रसविरोध का निरूपण काव्यशास्त्र में किया गया है। "वीर और शृंगाररस एक आलम्बन में होने से विरुद्ध होते हैं।......हास्य, रौद्र और बीभत्सरस के साथ विप्रलंभ शृंगार का विरोध होता है। वीर और भयानक रसों का एक आश्रय में समावेश करना निषिद्ध है।......शांत और शृंगार रस नैरन्तर्य से एक के बाद ही दूसरे के आने से विरोधी हैं।"[2] काव्य-शास्त्र के इस अंकुश को स्वतन्त्र प्रकृति की काव्य-प्रतिभा ने स्वीकार नहीं किया। परिणामतः विरोधी रसों के एक साथ संयोजन के कुछ स्थल चन्दबरदाई, जायसी, नन्नेचोड आदि के महाकाव्यों में प्राप्त होते हैं।

कविवर नन्नेचोड ने 'कुमारसंभव' में एक स्थान पर युद्ध की परिकल्पना

---

1. मनुचरित 6—101, 118

2. काव्यप्रदीप, पृ. 91, 92

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

अगना के रूप में की है। उस रणांगना के हाथ, कटि, भ्रूलता, दृष्टि, मुख-मण्डल, उत्तुंग स्तन, नखक्षत आदि के रूप में पाश, चक्र, बाण, धनुष, हाथियों के कुंभस्थल आदि का वर्णन कवि ने किया है।[1] यहाँ पर युद्ध की विभीषिका के साथ अंगना की शृंगार-भंगिमा का संयोजन बड़ा ही सुन्दर है। तेलुगु साहित्य में नाचन सोमनाथ तथा पोतनामात्य ने सत्यभामा के आलंबन में श्रीकृष्ण के लिए शृंगार के उपादानों तथा नरकासुर के लिए वीररस के उपादानों का समावेश किया है।

'पृथ्वीराजरासो' में उत्साह और रति के मेल के कई स्थल हैं। कुछ प्रसंगों में कवि ने नायक-नायिका की मदनक्रीड़ा को युद्ध के रूप में वर्णित किया है। एक स्थान पर नायिका की रोमावली, पीन कुच और उसकी कटि पर जंगल, पर्वत, हाथी और सिह का आरोप करके सिह से विनती की गयी है कि वह नायिका को हाथी से बचाये।[2] जायसी ने पद्मावत में रत्नसेन और पद्मावती की रतिक्रीड़ा पर युद्ध का आरोप करके शृंगार और वीररस का अच्छा मिश्रण बनाया है। यह मिश्रण निम्नलिखित पंक्तियों में द्रष्टव्य है।

"कहौं जूझि जस रावन रामा। सेज विधंसि बिरह संग्रामा।
लीन्ह लंक कंचन गढ़ टूटा। कीन्ह सिंगार अहा सब लूटा॥[3]"

इस प्रकार दोनों साहित्यों के महाकाव्यों में रसात्मक स्थलों की योजना के कारण सरसता का समावेश हुआ है। इन प्रसंगों के द्वारा कवियों की भावकता तथा संवेदनशीलता का परियच हमें मिलता है। तेलुगु के महाकाव्यों में शृंगाररस के प्रसंग प्रभूत मात्रा में मिलते हैं। अधिकांश महाकाव्यों में शृंगार को अंगीरस का स्थान प्राप्त है। इसका मुख्य कारण संस्कृत महाकाव्यों का प्रभाव तथा तत्कालीन शासकों के भोगवादी दृष्टिकोण को समझ सकते हैं। मर्यादावादी सन्त महात्मा तुलसी ने शृंगार का अत्यन्त पवित्र रूप में विधान किया है। इस दृष्टि से अपभ्रंश के चरितकाव्यों, हिन्दी के रासो, पद्मावत और तेलुगु के अधिकांश महाकाव्यों के शृंगारवर्णन से मानस में व्यंजित शृंगार भिन्न है। हिन्दी के महाकाव्यों में वीररसात्मक स्थल अपेक्षाकृत अधिक हैं, यद्यपि तेलुगु महाकाव्यों में वीररस का अभाव नहीं है। शृंगाररस के परिपाक के अन्तर्गत हिन्दी तथा तेलुगु के कवियों ने नख-शिख वर्णन, प्रकृति का उद्दीपन रूप में चित्रण आदि समान उपादानों का अवलम्ब ग्रहण किया है। दोनों क्षेत्रों के महाकाव्य वाङ्मय में नवरसों के अतिरिक्त रसाभास तथा मिश्रित रसों के उदाहरण भी प्राप्त होते हैं।

---

1. कुमारसंभव, 11–180
2. पृथ्वीराजरासउ, पृ. 250
3. पद्मावत–पद्मावती रत्नसेन भेंट खण्ड, 318

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

सप्तम अध्याय

अलंकार-विधान

तेलुगु के महाकाव्यों में प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष, इन दो रूपों में कवियों की अलंकार-विषयक दृष्टि प्रकट हुई है। प्रत्यक्ष उसको मान सकते हैं, जहाँ कवियों ने अलंकार के सम्बन्ध में भूमिका-भाग में अपना मत प्रकट किया। काव्यगत पात्र या काव्यगत प्रसंगों के माध्यम से अभिव्यक्त विचार अप्रत्यक्ष की कोटि में आते हैं। कविवर नन्नेचोड के अनुसार उनका महाकाव्य 'षट्त्रिंशत् अलंकारों से अलंकृत है।'[1] एक अन्य स्थान पर इस कवि ने 'काव्यरूपी रत्नवीथी' की मृदुरीति से संयोजित सूक्तियों, रसव्यंजना आदि विशेषताओं के साथ अलंकारों से अलंकृत होना भी बताया है।[2] श्रीकृष्णदेवराय के स्वप्न में दर्शन देकर आन्ध्रविष्णु ने इस राजा की गीर्वाण-कृतियों की प्रशंसा करते हुए कहा—'तुमने उपमा, उत्प्रेक्षा और जाति (स्वभावोक्ति से) मनोहर तथा रसिकों को सन्तुष्ट करनेवाला काव्य मदालसचरित की रचना की।"[3] अतुलित माधुरी महिमा से मण्डित वाणी के लिए विख्यात धूर्जटी के काव्य में, महेश-रचित छन्द में नत्कीर कवि के दोष दिखाने पर यह मीमांसा की गयी कि वह दोष रस के विषय में है, अलंकार के विषय में है अथवा शब्दयोजना के विषय में।[4] इस प्रकार हम देखते हैं कि तेलुगु के प्रमुख महाकाव्यों में कविगण अलंकार-प्रयोग से अपने काव्य-शिल्प को पूर्ण बनाने में दत्तचित्त थे।

नन्नेचोड के मत में काव्यालंकारों की संख्या छत्तीस है। तेलुगु के महा-काव्य-स्रष्टाओं में नन्नेचोड को छोड़कर किसी ने अलंकारों की संख्या की ओर निर्देश नहीं किया। वास्तव में अलंकार "वर्णन करने की अनेक प्रकार की चमत्कारपूर्ण शैलियाँ हैं, जिन्हें काव्यों से चुनकर प्राचीन आचार्यों ने नाम रखे और लक्षण बनाये। ये शैलियाँ न जाने कितनी हो सकती हैं। अतः यह नहीं कहा जा सकता कि जितने अलंकारों के नाम ग्रन्थों में मिलते हैं, उतने ही अलंकार हो सकते हैं।"[5] नाट्यशास्त्रकार भरत से लेकर कुवलयानन्दकार अप्पय्य दीक्षित तक अलंकारों की संख्या क्रमशः 3 से 121 तक बढ़ गई। प्राचीन आलंकारिकों में भामह ने छत्तीस अलंकारों का निरूपण किया। चूंकि कविवर नन्नेचोड ने भी अलंकारों की इतनी ही संख्या मानी है, कहा जा सकता है कि इस कवि ने भामह के मत का अनुगमन किया।

---

1. कुमारसम्भव, 1–45
2. वही, 1–36
3. आमुक्तमाल्यदा, 1–13
4. श्रीकालहस्तिमाहात्म्यमु, 3–167
5. जायसी ग्रन्थावली की भूमिका, पृ. 114, 115

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

अलंकार-विधान की दृष्टि से तेलुगु महाकाव्यों के मुख्यत: दो वर्ग परिलक्षित होते हैं। 'निर्वचनोत्तर रामायण' 'रंगनाथ रामायण' 'भास्कर रामायण' आदि को प्रथम वर्ग में तथा 'मनुचरित्र' 'वसुचरित्र' 'कुमारसम्भव' आदि को द्वितीय वर्ग में रख सकते हैं। प्रथम वर्ग के महाकाव्यों में कवियों का ध्यान अलंकारों पर उतना नहीं गया है जितना इतिवृत्त-निर्वहण एवं चरित्र-चित्रण पर गया है। इन काव्यों में अलंकार सहज रूप से कथावस्तु के अनुकूल रूप में अपने आप आ गये हैं, किन्तु कवियों के सजग प्रयास के फलस्वरूप नहीं। प्राचुर्य की दृष्टि से भी इन रचनाओं में अलंकारों का प्रयोग कम है। किन्तु दूसरे वर्ग के महाकाव्यों में स्वल्प कथानक और वर्णन की अधिकता के कारण कवि अलंकारशिल्प के प्रति सचेष्ट रहे है। ये महाकाव्य रचनाविधान की दृष्टि से संस्कृत के परवर्ती महाकाव्य 'नैषधीयचरित' आदि से प्रभावित हैं, जिनमें प्राय: प्रत्येक छन्द में कवि अपनी कलाचातुरी प्रदर्शित करने में सजग हैं। चेमकूर वेंकटकवि की प्रशंसा में उनके आश्रयदाता रघुनाथ-भूपाल ने कहा था—"आप प्रत्येक पद्य में चमत्कार उत्पन्न करते हुए काव्य-रचना करने में समर्थ हैं। हर प्रकार से सुन्दर काव्य आपसे हम सुन सके हैं। इस भूमण्डल में आपका मार्ग अन्य कवि नहीं पा सकते।"[1] प्रत्येक पद्य में चमत्कारोत्पादन की यह विशेषता इस दिशा में कवियों के सचेष्ट प्रयास को द्योतित कर रही है। वास्तव में विजयनगर नरेशों एवं दक्षिण के नायक राजाओं का समय सामाजिक जीवन में भी वैभवकाल रहा है। अलंकरण की, कारीगरी की अथवा शिल्पकारिता की यह प्रवृत्ति तत्कालीन राजसी वातावरण में है और साहित्यसृजन के प्रेरक तथा संरक्षक राजाओं के दृष्टिकोण में है। तत्कालीन महाकाव्यों में इसका प्रतिफलन हुआ है। तेलुगु के आलोचकों ने इस द्वितीय वर्ग के महाकाव्यों या अनन्तर कालीन महाकाव्यों के लिये प्रबन्ध नामक काव्यविधा की परिकल्पना की है। आचार्य लक्ष्मीकांतम् जी के अनुसार आलंकारिक शैली इस 'प्रबन्धकाव्य' का जीवन है अर्थात् प्राणभूत तत्व है।[2] इस प्रकार तेलुगु के पूर्वकालीन तथा अनन्तरकालीन महाकाव्यों में अलंकारविधान की दृष्टि से अन्तर है।

शाब्दिक चमत्कार और अर्थ की चारुता के आधार पर आचार्यों ने अलंकारों के दो वर्ग माने हैं—शब्दालंकार तथा अर्थालंकार। आचार्य विद्यानाथ ने चक्रबन्ध, नागबन्ध आदि चित्रालंकारों का निरूपण भी शब्दा लंकार-प्रकरण

1. विजयविलास 1–50
2. तेलुगु विज्ञानसर्वस्वमु—तृतीय भाग, पृ. 608

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

में किया है। आचार्य केशव की कविप्रिया के अन्तर्गत सोलहवें प्रभाव में चित्रालंकारों के लक्षण-उदाहरण प्रस्तुत किये गये हैं। किन्तु काव्य की मनोहरता शब्दालंकारों तथा चित्रालंकारों की अपेक्षा अर्थालंकारों के समुचित प्रयोग पर आधारित होती है।

आचार्य रुय्यक ने अर्थालंकारों का विभाजन पाँच वर्गों के अन्तर्गत किया है, जैसे (1) सादृश्यगर्भ (2) विरोधगर्भ (3) श्रृंखलाबद्ध (4) न्यायमूलक और (5) गूढ़ार्थ-प्रतीतिमूलक। इनके कई अवान्तर भेद किये गये हैं, जिनके भीतर अन्य अलंकारों का समाहार होता है।[1] सादृश्यमूलक अलंकारों में सहजता एवं भावानुरूपता अधिक होती है। आचार्य शुक्ल का यह मत है कि श्लेष, परिसंख्या आदि कृत्रिमता लानेवाले अलंकार हैं और यमक, मुद्रा आदि खेलवाड़ अर्थात् उक्ति-चमत्कार के साधन हैं।[2] यहाँ पर स्मरणीय है कि काव्य में रस या रसध्वनि प्रधान है और अन्य सब साधन उस चारुता के सहायक रूप में प्रयुक्त होने चाहिये। अलंकार साधन मात्र हैं। उन्हें साध्य मान लेने पर काव्य के सौन्दर्य में व्याघात उत्पन्न होगा। अतिशय मात्रा में शब्दालंकारों का प्रयोग रस के लिये बाधक हो सकता है। किन्तु, कुशल कवि रस और औचित्य की रक्षा करते हुए शब्दालंकारों का भी प्रयोग करें तो उसको दोष मानना ठीक नहीं है। तेलुगु साहित्य में रामराजभूषण तथा चेमकूर वेंकट कवि ने श्लेष तथा अनुप्रास आदि का प्रयोग रस के सहायक रूप में ही किया है।

आचार्य विश्वनाथ ने 'अनुप्रास' शब्द का अक्षरार्थ बताते हुए कहा—"रसात् अनुगतत्वेन प्रकर्षेण न्यासो अनुप्रासः।[3] अर्थात् रस, भावादि के अनुगत प्रकृष्ट न्यास को अनुप्रास कहते हैं। यहाँ पर रस की अनुगामिनी प्रकृष्ट रचना को अनुप्रास मानने से सिद्ध हो जाता है कि रस के प्रतिकूल वर्णों की योजना को अलंकार नहीं माना जाता। आचार्य शुक्ल के शब्दों में भी—"अलंकार चाहे अप्रस्तुत वस्तु-योजना के रूप में हों (जैसे उपमा, रुपक, उत्प्रेक्षा इत्यादि में) चाहे वाक्य-वक्रता के रूप में (जैसे अप्रस्तुतप्रशंसा, परिसंख्या, व्याजस्तुति, विरोध इत्यादि में), चाहे वर्ण-विन्यास के रूप में (जैसे अनुप्रास में) लाये जाते हों, वे प्रस्तुत भाव या भावना के उत्कर्ष-साधन के लिए ही।"[4]

---

1. हिन्दी साहित्यकोश (पहला भाग), पृ. 63
2. गोस्वामी तुलसीदास, पृ. 143
3. साहित्यदर्पण-दशम परिच्छेद, पृ. 275
4. चिन्तामणि-पहला भाग, पृ. 181

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

जैसे पहले कहा गया है, तेलुगु के पूर्वकालीन महाकाव्यों में उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक आदि सादृश्यमूलक अलंकारों का प्रयोग मुख्य रूप से हुआ है। प्राय: सभी परवर्ती महाकाव्यों में अलंकरण की प्रवृत्ति सामान्य विशेषता है। फिर भी कवियों के व्यक्तित्व एवं रुचि के अनुरूप अलंकार-योजना में अन्तर दिखाई पड़ता है। रामराजभूषण के व्यक्तित्व में 'संगीतकला-रहस्यनिधित्व' एवं विविध शास्त्र पांडित्य की विशेषताएँ है। इसलिए उनके महाकाव्य में अनुप्रास, मुक्तपदग्रस्त आदि श्रुतिरंजक शब्दालंकारों तथा कतिपय स्थानों पर श्लेष का सुन्दर विधान है। वास्तव में इनका 'वसुचरित्र' तथा श्लेष एवं ध्वनि की मनोहरता के लिए विख्यात रहा है। यद्यपि कई पद्यों में शब्दालंकारों का बहुल प्रयोग हुआ है, तो भी इन अलंकारों के कारण काव्य-सौन्दर्य में कोई बाधा नहीं पड़ी। क्योंकि ये अलंकार रामराजभूषण की वाणी के अभिन्न अंग हैं। श्रीकृष्णदेवराय के महाकाव्य में साधारणतया शब्दालंकारों का चमत्कार दृष्टिगत नहीं होता। इस कवि ने बहुत दूर की कल्पनाओं में अपनी रुचि दिखाई है। अत: इनकी कविता में उत्प्रेक्षाओं की बहुलता है। श्रीकृष्णदेवराय की एक अन्य कृति मदालसचरित के संबंध में कवि ने स्वयं कहा कि उसमें उत्प्रेक्षा, उपमा और स्वभावोक्ति की योजना के कारण रसिकों ने उसकी बहुत प्रशंसा की। 'आमुक्तमाल्यदा' में भी स्वभावोक्ति-प्रयोग के स्थल कम नहीं हैं।

'मनूचरित्र' तथा 'पारिजातापहरण' में कवियों ने अलंकार संबंधी अपनी निपुणता का प्रदर्शन वर्णन के अवसर पर किया है। इन काव्यों में शब्दालंकारों पर कवियों का विशेष अनुराग दृष्टिगत नहीं होता, सरस प्रसंगों में अलंकार-मोह के कारण बाधा उपस्थित नहीं होती। 'पारिजातापहरण' में चित्रालंकार हैं, किन्तु काव्य के अन्त में उनकी स्थिति है। इस प्रकार कवियों की व्यक्तिगत रुचि के अनुसार महाकाव्यों के अलंकार-विधान में अन्तर उपस्थित हुआ है। यह भी स्पष्ट है कि प्रथम वर्ग के महाकाव्यों में सादृश्यमूलक अलंकारों की प्रधानता है और दूसरे में परिसंख्या, विभावना आदि का बहुल प्रयोग भी दिखाई पड़ता है।

अब तेलुगु महाकाव्यों में प्रयुक्त शब्दालंकारों के औचित्य की मीमांसा की जायेगी। वसुचरित्र, विजयविलास, रामाभ्युदय आदि महाकाव्यों में शब्दालंकारों का प्रयोग मिलता है। इस अलंकार-प्रयोग के कारण रस तथा भाव की पुष्टि की गयी है, हानि नहीं। मधुमास के वर्णन के सन्दर्भ में प्राप्त यह छन्द संगीत-सौन्दर्य के लिए उदाहरणीय है—

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

ललना जनापांग वलनावस दनंग
तुलनाभिकाभंग दो : प्रसंग
मलसानिज विलोलदलसास वरसाल
फलसादर शुकाल पन विशाल
....
कलित कलकंठ कुलकंठ काकलीवि
भासुरमु बोल्चु मधुमास वासरंबु"[1]

उपर्युक्त छन्द में अभिव्यक्त मधुमास के वैभव में ललनाओं के कटाक्ष, मन्द पवन, रसाल-पल्लव, शुकों का आलाप, चक्रवाक रमणियाँ, कोयलों का अव्यक्त मधुर नाद आदि सभी उपादान हैं। 'अनुप्रास' अलंकार इस हर्षोल्लसित वातावरण के उत्कर्ष में योगदान कर रहा है। इसी प्रकार कोलाहल पर्वत पर विभिन्न पक्षियों तथा अप्सराओं के मधुर गान के वर्णन में प्रयुक्त अनुप्रास की छटा द्रष्टव्य है।

"ओकचाय ननपाय पिकगेय समुदाय
मोकसीम नाना मयूरनिनद
मोक्रवंक नकलंक मकरांक हयहेष......।"[2]

सीता-राम-विवाह के अवसर पर 'रामाभ्युदय' में अनुप्रास का सरस प्रयोग किया गया है–

"मुत्तियंबुलु दोयिल्ल मुंचि मुंचि
कांचुवारल हर्षाब्धि मुंचि मुंचि
मिंचि तनचेयि मीदुगाविंचि मिंचि
विभुडु तलब्रालुबोसे नव्वेलदि मीद।"[3]

अनुस्वारयुक्त मकार एवं चकार की बार बार आवृत्ति के कारण सीता के सिर पर 'तलब्रालु' डालनेवाले राम की त्वरा एवं हर्ष का द्योतन हो रहा है। चेमकूर वेंकटकवि ने 'विजयविलास' में कई स्थानों पर वृत्यनुप्रास, छेकानुप्रास, यमक आदि के सुन्दर प्रयोग किये हैं। श्लेष को शब्दालंकार माना जाय अथवा अर्थालंकार—इस विषय में काव्यशास्त्र के आचार्यों में मतभेद है। तेलुगु साहित्य में रचित 'राघव पाण्डवीय' एवं 'हरिश्चन्द्र-नलोपाख्यान' आदि बहु-अर्थक महाकाव्यों में प्रायः प्रत्येक छन्द में श्लेष का निर्वाह किया गया है।

---

1. वसुचरित्र, 1–126
2. वही, 2–7
3. रामाभ्युदय, 4–120

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

'वसुचरित्र' महाकाव्य में कई स्थानों पर अन्य अलंकारों के मूल में श्लेष का ही विधान है, यानी श्लेष के अभाव में दूसरे अलंकारों का अस्तित्व असम्भव है।

इस महाकाव्य के मंगलाचरणवाले छन्दों में से एक में पूर्व-कवि-स्तुति की गयी है। इसमें कवि की श्लिष्ट शब्द-प्रयोग-सम्बन्धी चातुरी को देखा जा सकता है। वह छन्द इस प्रकार है—

"महिमुन् वागनुशासनुंडु सृजियिंपं कुंडलीन्द्रुंडु त
न्महनीयस्थिति मूलमैनिलुव श्रीनाथुंडु प्रोवन्महा
महुलै सोमुडु भास्करुंडु वेलयिंपन् सोंपु वाटिंचुनी
बहुलांध्रोक्तिमयप्रपंचमुन तत्प्रागल्भ्यमूर्हिंचेदन्।"[1]

इसमें वागनुशासन, कुंडलीन्द्र, श्रीनाथ, सोम और भास्कर शब्दों से तेलुगु के महाकवि नन्नया, तिक्कना, श्रीनाथ, सोमनाथ और भास्कर का बोध होता है। विश्व के पक्ष में इन्हीं शब्दों से ब्रह्मा, शेषनाग, विष्णु, चन्द्रमा एवं सूर्य का बोध होता है। वास्तव में इस पद्य के द्वारा कवि ने तेलुगु वाङ्मयरूपी विश्व के स्रष्टा, स्थितिकर्ता, संरक्षक तथा उज्जवल प्रकाश देनेवाले महाकवियों की वन्दना की है। अतः इन शब्दों के द्वारा तेलुगु के महाकवियों और देवताओं की एक साथ प्रतीति रमणीय है।

तेलुगु के अधिकांश महाकाव्यों में श्रृंगाररस की प्रतिष्ठा अंगीरूप में हुई है। प्राकृतिक सुषमा का वर्णन उद्दीपन विभाव के रूप में तथा उस रस के अनुकूल वातावरण उपस्थित करने में सहायक सिद्ध हुआ है। उन अवसरों पर प्रयुक्त अलंकार कवि के कल्पना-वैभव को प्रमाणित करते हैं और साथ ही बाह्यप्रकृति पर मानवीय क्रिया-कलापों के आरोप के कारण बिंबविधान सुन्दर बन पड़ा है। इन स्थलों पर यद्यपि उपमान परम्पराभुक्त ही हैं, उन उपमानों को संजोने में कवि की प्रौढ़ प्रतिभा झलकती है। कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं।

"कामदेव नामक भगवान ने चैत्रमास में मीनध्वज के वैभव से युक्त होकर मलयपवन के रथ पर आगमन किया। तब लतारूपी रमणियों ने वृक्ष शिखररूपी सौधों के ऊपर चढ़कर पल्लवरूपी अंजलि भरकर उल्लासपूर्वक नवविकसित पुष्पों की वृष्टि की।"[2]

दक्षिण भारत में मन्दिर के देवताओं को रथ पर बिठाकर बड़े धूमधाम से नगरभ्रमण कराया जाता है। इस सांस्कृतिक परम्परा के आलोक में उपर्युक्त अलंकार का सौन्दर्य अनुभव किया जा सकता है।

---

1. वसुचरित्र 1—10 2. वसुचरित्र, 1—132

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

"दक्षिण समीर नामक नायक ने नूतन लतारूपी लतांगियों के हिमरूपी अवगुंठनों को दूर किया। कस्तूरिका पत्ररचनाओं के हटने से लज्जावश अतिशय कंपित होकर वे रमणियाँ अपने कलीरूपी स्तनों को पल्लव-हस्तों से ढक रही थीं। इस दक्षिण नायक ने उन नवोढ़ाओं को मोतियों के हार प्रदान कर परिमलरूपी कला स्थानों को छूते हुए आलिंगन में प्रवृत्त किया।"[1]

रूपक अलंकार की सुन्दर योजना के उदाहरण-स्वरूप एक और छन्द का भाव प्रस्तुत है–

"रसालशाखारूपी नायिका ने अपने पल्लव-हस्तों से वसुराज का स्पर्श किया। तिलकलतिका ने भ्रमररूपी वीक्षणों से अवलोकन किया। प्रियालुलता ने कोयल-कूजन का गीत गाया। कर्णिकार शाखा ने पिक-वचनों से प्रिय भाषण किया। चम्पकलता ने राग (लाल रंग, अनुराग) प्रकट किया। कदम्ब वृक्ष ने पुष्प-सुषमा रूपी मंदहास किया। सिंधुकवल्ली ने परिमलयुक्त निश्वास निकाला। कुरवक शाखा ने सौरभरूपी कलास्थानों से आलिंगन किया। इस प्रकार विभिन्न वृक्षांगनाओं ने वसुराजरूपी कल्पवृक्ष के लिये करस्पर्श, वीक्षण, गान, संलाप, मुखराग, हास, निश्वास और आलिंगन की दोहद-क्रियाएँ कीं।"[2]

उपर्युक्त उदाहरण में वृक्षसमूह पर मानवीय चेष्टाओं का आरोप है तथा वसुराज पर कल्पवृक्ष का आरोप है। एक ही छन्द में वृक्षजगत और मानव-जगत दोनों का प्रस्तुत तथा अप्रस्तुत दोनों रूपों में विधान अत्यंत रमणीय है। वृक्षों के लिये दोहद-क्रियाओं की पद्धति कविसमय है।

कुशल कवि के हाथ में पड़कर भ्रांति और उत्प्रेक्षालंकार कोरे उक्ति-चमत्कार नहीं रह जाते, प्रत्युत् चित्रात्मक वर्णन प्रस्तुत करते हुए सरस बन जाते हैं। श्रीकृष्णदेवराय, नन्नेचोड, रामराजभूषण आदि इस कोटि के प्रतिभा-सम्पन्न कवि हैं। उनके महाकाव्यों में से नीचे कुछ उदाहरण प्रस्तुत किये जा रहे हैं–'श्री विल्लिपुत्तूर के धानवाले खेतों के समीप प्रवाहित नहरों के पास जलपक्षी अपने सिर पंखों में लगाकर सुन्दर मुद्रा में सोते हैं। उन्हें देखकर नगररक्षा करनेवाले सिपाही समझते हैं कि उषःकाल में स्नानार्थ आगत ब्रह्मण अपने वस्त्रों को धोकर भूल से यहाँ रखकर चले गये। वस्त्रों को फिर ब्राह्मणों के पास ले जाने की इच्छा से घाट में उतरनेवाले सिपाहियों से डरकर बतख जल्दी दौड़ने लगते हैं। इस दृश्य को देखकर खेतों में धान की रखवाली करने-वाली अंगनाएँ सिपाहियों के भ्रम पर खिलखिलाकर हँस पड़ती हैं।[3] उपर्युक्त

1. वसुचरित्र, 1–142 2. वसुचरित्र, 1–158 3. आमुक्तमाल्यदा 1–65

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

अवतरण में बड़े ही स्वाभाविक ढंग से नहरों, बतखों, खेतों आदि का चित्रांकन किया गया है। उस नगर की जलसमृद्धि, धान्यसमृद्धि, ब्राह्मणों की नियम-निष्ठा तथा सिपाहियों की कर्तव्य-बुद्धि की एक साथ व्यंजना भी है। इसमें भ्रांतिमान तथा स्वभावोक्ति अलंकारों की योजना है।

मुद्रा अलंकार को आचार्य शुक्ल ने खेलवाड़ मात्र समझा है, जो हम पहले देख आये हैं। कुवलयानन्दकार अप्पय दीक्षित ने इस अलंकार का उल्लेख प्रथम बार किया है और परिभाषा इस प्रकार की है—"मुख्यार्थ समन्वित, शब्दों के द्वारा जब सूच्य कथावस्तु की सूचना हो तो मुद्रालंकार होता है।"[1] नन्नेचोड़ के 'कुमारसंभव' में प्रसंगोचित रूप में इस अलंकार का सार्थक प्रयोग कई स्थलों में मिलता है। श्री निडदवोलु वेंकटराव के अनुसार छन्दों के नाम कथा के बीच में यथास्थान उन्हीं छन्दों में संयोजित करने की परंपरा का श्रीगणेश तेलुगु में नन्नेचोड ने किया और इस पद्धति को जयदेव आदि नवीन आलंकारिकों ने एक अलंकार के रूप में परिगणित किया।[2]

नन्नेचोड ने हाथियों के वर्णन के सन्दर्भ में मत्तेभविक्रीड़ित छन्द का प्रयोग करते हुए उस पद्य में मत्तेभविक्रीड़ित शब्द भी प्रयुक्त किया है। इसी प्रकार वसन्तवर्णन के अवसर पर प्रयुक्त 'मत्तकोकिल' छन्द में 'मत्तकोकिल' शब्द का प्रयोग, वटुरूपी शिव के स्वागत में 'स्वागत' छन्द के साथ स्वागत शब्द का प्रयोग, पार्वती-वर्णन में 'मानिनी' छन्द में मानिनी शब्द का प्रयोग, पुत्रोदय के उत्साह की व्यंजना के साथ उत्साह छन्द में उत्साह शब्द का प्रयोग नन्नेचोड ने किया। ये सब स्थल मुद्रा अलंकार के प्रसंगोचित विधान के लिए उदाहरण हैं।

तेलुगु साहित्य के महाकाव्यों में कतिपय स्थलों पर अलंकार-योजना के माध्यम से भावी कथा की सूचना दी गयी है। प्रायः प्रकृति-वर्णन के अवसर पर सूर्य, चन्द्रमा, मलयानिल आदि प्रस्तुत हैं और इन प्रस्तुत वस्तुओं को स्पष्ट बनाने के लिए कथा के अंशों को अप्रस्तुत बनाया जाता है। इस प्रकार की योजना में वर्णन के अंश तथा कथा के अंश दोनों को परस्पर जोड़ने में अलंकार साधन बनते हैं। कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं। "प्राची दिशा में चन्द्रोदय से पहले धवल प्रकाश दिखाई पड़ा, मानों देवेन्द्र की राज्यलक्ष्मो के मुखमण्डल पर इस

1. हिन्दी साहित्य कोश (पहला भाग), पृ. 602
2. कुमारसंभव, भूमिका, पृ. 29

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

बात के दुःख से कि श्रीकृष्ण सत्यभामा के लिए पारिजात वृक्ष का अपहरण करेगा, विवर्णता फैल गयी हो।"[1]

"सायंकालीन सूर्य का रक्तिम वर्ण इस प्रकार दिखाई दे रहा था मानों सूरज उस अहंकारी अधम ब्राह्मण प्रवर के प्रति आग-बबूला हो गया हो, क्योंकि प्रवर अनन्य भाव से प्रेम करनेवाली उस तरूणी वरूधिनी को अति भयंकर पुष्प-बाण की व्यथा में छोड़कर निर्दयता से चला गया।"[2]

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने तुलसी के अलंकार-विधान की समीक्षा करते हुए अलंकारों को चार वर्गों के अन्तर्गत विभक्त किया है—(1) भावों की उत्कर्ष-व्यंजना में सहायक (2) वस्तुओं के रूप का अनुभव तीव्र करने में सहायक (3) गुण का अनुभव तीव्र करने में सहायक (4) क्रिया का अनुभव तीव्र करने में सहायक। तेलुगु महाकाव्यों में प्रयुक्त अलंकारों का विवेचन इस वर्गीकरण की दृष्टि से प्रस्तुत है।

भाव की उत्कर्ष-व्यंजना में सहायक अलंकार

कोलाहल पर्वत पर गिरिका के विरह में वसुराज अतीव संतप्त होकर हंसों, शुकों, भ्रमरों तथा मयूरों की धन्यता और अपनी भाग्यहीनता का कथन करके लंबे निश्वास लेता है—

"यहाँ के हंस-समूह ने शुचि-वृत्ति से न जाने कितने दिन का तीर्थ-संवास किया है, तभी तो इस सुन्दरी का अनुगमन कर रहे हैं। यहाँ के शुक-समुदाय ने कल्पवृक्षों से कितने श्रेष्ठ फल प्राप्त किये हैं, तभी तो इस कमलनयनी के प्यार-भरे अधरों की रुचि पा रहे हैं। इस रमणी के मुख-सौरभ को प्राप्त करने के लिए मदमत्त भ्रमरों ने सुमनों पर अनुरक्ति से किस तरह के महासुख प्राप्त किये। इस कन्या के कंकण-निनाद-गर्जन से रीझने के लिए कैसी तपस्या मयूरों ने की होगी।"[3]

प्रस्तुत अवतरण में 'व्याज-स्तुति' अलंकार के माध्यम से वसुराज की विरह-वेदना की तीव्रता प्रतीयमान हो रही है। साथ ही गिरिका की चाल में सजातीय गमन का भ्रम हंसों को होने, शुकों के द्वारा गिरिका के ओठों को अरुण फल समझे जाने, भ्रमरों का गिरिका मुख-सौरभ को कमल-गंध समझने और कंकण-ध्वनि को मेघ-गर्जन समझनेवाले मयूरों की भ्रांति की व्यंजना हुई। अत: भ्रांतिमान अलंकार व्यंग्य रूप में है। वसुकार की वाणी से अभिन्न

---

1. पारिजातापहरण, 2—38
2. मनुचरित्र, 3—10
3. वसुचरित्र, 3—85

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

श्लेष अलंकार यहाँ हंसों का कासार-जल-निवास, शुकों का रसाल-फल-भक्षण, भ्रमरों की पुष्पानुरक्ति आदि में क्रमशः पुण्य-क्षेत्र-निवास, कल्प-वृक्षों के वरदान, देवताओं में प्रीति आदि का अभेद-अध्यवसाय करने में सहायक हो रहा है।

निम्नोक्त उदाहरण में कविवर धूर्जटी ने प्रतिवस्तूपमा अलंकार-प्रयोग के चातुर्य से ऐहिक सुख-भोग की क्षुद्रता दिखाकर निर्वेद भाव को परिपुष्ट बनाया है।

"अमृतपान करनेवाली जिह्वा को शहद में स्वाद मिलता है ? अपने घर में कल्पवृक्ष हो तो कोई मनुष्य राजा से याचना करता है ? संयमियों के भाग्यरूप आदिम तत्व कालहस्तीश्वर को भजनेवाला मानस वेश्याओं के संसर्ग में सुख पाता है ?"[1]

रूप का अनुभव तीव्र करने में सहायक अलंकार

"रूप का अनुभव प्रधानतः चार प्रकार का होता है—अनुरंजक, भयावह, आश्चर्यकारक या घृणोत्पादक। इस प्रकार के अनुभव में सहायक होने के लिए आवश्यक है कि प्रस्तुत वस्तु और आलंकारिक वस्तु में बिम्ब-प्रतिबिंब भाव हो अर्थात् अप्रस्तुत वस्तु से रूप-रंग आदि में मिलती-जुलती हो और उसमें उसी भाव के उत्पन्न होने की संभावना हो, जो प्रस्तुत से उत्पन्न हो रहा हो।"[2] इस दृष्टि से तेलुगु के महाकाव्यों में प्रभूत मात्रा में उपलब्ध अलंकारों में से कुछ उदाहरण प्रस्तुत किये जा रहे हैं।

"रसाल वृक्ष की कलियाँ वज्रों की भांति, पुष्प मोतियों के समान, लाल लाल पल्लव पद्मरागों के सदृश, कीरसमुदाय मरकतों की तरह और भौंरे इन्द्रनील मणियों के जैसे शोभित हो रहे हैं। इस प्रकार चूत-वृक्ष बड़े ही अभिराम लग रहे हैं मानों वसंत के अधिपति कामदेव के लिए पाँच प्रकार की मणियों से निर्मित सुन्दर प्रासाद हों।"[3]

वनवास के उपरान्त सीता की अग्नि-परीक्षा का वर्णन करते हुए रंगनाथ रामायणकार ने अग्नि पर सरोवर का आरोप करके रूपक की योजना की है। यह अलंकार सीता जी के रूप-सौन्दर्य के चित्रण के साथ अग्नि के शीतल होने की व्यंजना भी करता है। "पावक-सरोवर में सीता बड़ी ही निरुपाय स्थिति में खड़ी होकर कमलिनी की भांति सोह रही थीं। उनके कर, चरण एवं वदन

1. श्रीकालहस्ति माहात्म्यमु, 4-43
2. गोस्वामी तुलसीदास पृ. 133
3. कुमारसंभव, 4—99

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

भी कमल थे। कुच चक्रवाक पक्षी थे। कोमल बाहुलताएँ कमल की डण्डियाँ थीं। विमल त्रिवलियां तरंगें बनीं। सुन्दर नेत्ररूपी मछलियाँ थीं। नीली अलकें शैवाल (काई) बनीं।"[1]

गुण का अनुभव तीव्र करने में सहायक अलंकार

तेनालि रामकृष्ण कवि रत्नहार को उठा ले जानेवाले एक तोते के चातुर्य की व्यंजना इस प्रकार करते हैं—

"धाई स्नान करने के लिए जरा-सा बाहर चली गयी तो सुग्गा मौका पाकर डिबिया के ढक्कन पर रखे रत्नहार को चोंच में उठा ले भागा, जैसे कोई प्रगल्भ विट किसी मुग्धा बाला के मन को अपने साथ ले जाता है।"[2]

उपर्युक्त उदाहरण में विट की चतुराई यही है कि वह नायिका का मन कई सामाजिक बन्धनों के बावजूद अपनी ओर आकर्षित कर लेता है। इस अप्रस्तुत-योजना के कारण प्रस्तुत वस्तु में रमणीयता का संचार होता है और उस पक्षी की चतुरता का अनुभव होता है।

पिंगलि सूरनार्य उत्तम कोटि के सज्जनों के स्वभाव के विषय में कहते हैं—

"विद्वान लोग अपनी विद्या को उसी मात्रा में प्रकट करते हैं, जो उस विद्या का अनुभव करनेवालों की योग्यता की होती है। उत्तमों की महिमा जल के अनुसार कमल है।"[3]

उपर्युक्त अवतरण में लोक-विख्यात कहावत के अनुकरण से लोकोक्ति अलंकार है। वस्तुओं के समान धर्म का कथन, बिम्ब प्रतिबिंब भाव के रूप में होने के कारण दृष्टान्त अलंकार भी है। इस क्रम में चेमकूर वेंकट कवि के एक पद्य का भावार्थ द्रष्टव्य है।

"पृथ्वी पर, सूखे वृक्षों को पल्लवित करके वसन्त ने उनमें सरस सुगन्ध भर दी तो इस नैपुण्य से सन्तुष्ट न होकर आकाश में चन्द्रमा ने प्रसन्नता प्रकट करते हुए पत्थरों को पिघला दिया। चाहे जितनी कुशलता से कोई रचना करे, समकालीन लोग उससे असन्तुष्ट रहते हैं।"[4]

उपर्युक्त अवतरण में वसन्तवर्णन सामान्य कथन है और उसका समर्थन समकालीन लोगों की ईर्ष्यारूपी विशेष कथन से किया गया है। अतः अर्थान्तरन्यास अलंकार है। वसन्त की रचना की प्रशंसा न करनेवाले चन्द्रमा

---

1. रंगनाथ रामायण, पृ. 127
2. पांडुरंग माहात्म्य, 4-23
3. कलापूर्णोदय, 2—95
4. विजयविलास, 1—145

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

की ईर्ष्या और समकालीन समाज की ईर्ष्या समान गुण हैं। चन्द्रमा की किरणों से चन्द्रकान्त शिलाओं का पिघलना कवि-समय है।

क्रिया का अनुभव तीव्र करने में सहायक अलंकार

लक्ष्मण के मुँह से राम के द्वारा अपने परित्याग का दुखद समाचार सुनकर "सीता कील निकाले गये यन्त्र की भांति जमीन पर तुरन्त गिर पड़ी।"[1] यहाँ पर केवल क्रिया की तीव्रता का अनुभव कराने के लिए उपमा अलंकार का प्रयोग किया गया है। इस अलंकार-प्रयोग में प्रस्तुत सीता जी और अप्रस्तुत यन्त्र में रूप आदि का कोई सादृश्य नहीं है।

यामुनाचार्य का उपदेश सुनकर पाण्ड्य नरेश की रानी उसी प्रकार प्रसन्न हो गई जैसे—"ग्रीष्म-समय-निरुत्साहित केकिरमणी नवघन-ध्वनि से आनंदित होती है।"[2] श्रीकृष्णदेवराय की इस उपमा में प्रसन्न होने की क्रिया को लेकर ही प्रस्तुत-अप्रस्तुत में सादृश्य है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार "क्रिया और गुण का अनुभव कराने के लिए अलंकार के लिए लाई हुई वस्तु और प्रसंग प्राप्त वस्तु का धर्म या तो एक ही होता है या अलग-अलग कहे जाने पर भी दोनों के धर्म समान होते हैं अथवा एक के धर्म का उपचार दूसरे पर किया जाता है।"[3]

अप्रस्तुत-विधान

प्रस्तुत वस्तु का स्वरूप-साक्षात्कार, भावों की पुष्टि आदि प्रयोजनों की सिद्धि के हेतु कविगण काव्यों में अप्रस्तुत लाते हैं। कवि का अनुभव, ज्ञान का वैविध्य, लोकनिरीक्षण की क्षमता, शास्त्र संबंधी वैदुष्य आदि को अप्रस्तुत-विधान की पृष्ठभूमि कह सकते हैं। इसलिए काव्य में संयोजित अप्रस्तुतों के आधार पर कवि के व्यक्तित्व को समझा जा सकता है। साधारणतया कवियों के द्वारा प्रयुक्त अधिकांश अप्रस्तुत परम्परा-प्राप्त तथा कविसमय-सिद्ध होते हैं। इस संबंध में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का मन्तव्य इस प्रकार है—"अप्रसिद्धि मात्र उपमा का कोई दोष नहीं है, पर नई उपमाओं की सारी जिम्मेदारी कवि पर होती है। ......किसी पात्र के लिए जो उपमान लाया जाय वह उस भाव के अनुरूप हो जो कवि ने उस पात्र के संबंध में अपने हृदय में प्रतिष्ठित किया है और पाठक के हृदय में भी प्रतिष्ठित करना चाहता है।"[4]

---

1. निर्वचनोत्तर रामायण, 9—17
2. आमुक्तमाल्यदा, 3—54
3. गोस्वामी तुलसीदास, पृ. 137
4. जायसी ग्रन्थावली की भूमिका, पृ. 102

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

तेलुगु के महाकाव्यों में कवियों ने अप्रस्तुतों का संचयन जीवन के विविध क्षेत्रों से किया है। मूलस्रोत की दृष्टि से अप्रस्तुतों का विभाजन इस प्रकार हो सकता है—

(1) लोकजीवन (2) प्रकृति (3) पौराणिक विश्वास (4) संगीत, दर्शन आदि साहित्येतर विद्याएँ (5) काव्य तथा काव्यशास्त्र। प्रत्येक के लिए कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं।

लोकजीवन

"विष्णुचित्त को अन्तरिक्ष से देखने के लिए आगत राक्षसों एवं पिशाचों के झुण्ड गरुड के पंखों की हवा लगते ही इस प्रकार भाग गये, जैसे खलिहान में सूप की हवा के कारण धान से अलग होकर भूसा निकल जाता है।"[1]

"वलयाकार में ऊपर निकलकर कोंपलों से युक्त होकर, पुष्पित होने के कारण सर्वत्र पराग से सुगन्धित, सब से ऊपर की शाखा पर कोयल को धारण करनेवाला यह छोटा-सा आम्रवृक्ष मुक्ताहारों से चन्दन के अंगराग से तथा काले चूचुक से शोभित वनलक्ष्मी के स्तन की तरह दिखाई पड़ता है।"[2]

प्रकृति

"कोलाहल ने शुक्तिमती के कमल-समूह रूपी रेशमी वस्त्र को प्रबल तथा दीर्घ भुजशाखा से पकड़ा।"[3]

"सरोवर के जल में शीतकाल के समय बैठकर तपस्या करनेवाली शैलजा का मुख इस तरह शोभित हो रहा था मानों हेमन्त में सभी पद्मों के नष्ट हो जाने पर तालाब ने बीज के लिए एक कमल सुरक्षित रखा हो।"[4]

पौराणिक विश्वास

"शालि-मंजरियाँ (धान की बालियाँ) इस तरह शोभित हैं, मानों भगवान विष्णु ने शरत्काल में नींद से जागकर अपने चरण पृथ्वी पर रखे हों और इस कारण पृथ्वी के शरीर में पुलकांकुर उत्पन्न हुए हों।"[5]

"शरत्कालीन कमलों की छवि इस प्रकार शोभित है, मानों जल निवासी विष्णु और लक्ष्मी वर्षाकाल के बाद निद्रा से उठकर आँखें खोलकर देख रहे हों।"[6]

साहित्येतर अन्य विद्याएँ

"चन्द्रिका से पूर्ण ब्रह्माण्ड में चन्द्र इस तरह शोभित हो रहा था, मानों

---

1. आमुक्तमाल्यदा, 4–13 2. मनुचरित्र, 3*75 3. वसुचरित्र, 2–137
4. कुमारसंभव, 6–126 5. आमुक्तमाल्यदा, 4–144 6. कुमारसंभव, 6–113

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

कालरूपी वैद्य ने कामी जनों में कामोद्रेक को बढ़ाने के लिए रस को वृक्ष-मूलिकाओं से मिश्रित करके दुग्ध-भाजन में औषध-घुटिका बनाकर रखा हो।"[1] (वैद्यक)

"हंस समुदाय की अभीष्ट विहार-भूमि, जल समृद्धि से सुन्दर अप्रतर्क्य और अद्वन्द्व वह सरोवर ब्रह्म की भांति परिपूर्ण था।" [2] (दर्शन)

काव्य तथा काव्यशास्त्र

"हे बाला! तुम्हारी वेणी को कालसर्प समझकर मलयानिल तुम्हारी तरफ नहीं आता। हे कमलमुखी! तुम्हारी आँखों को चकोर समझकर चान्दनी तुम्हारे पास प्रवेश नहीं करती। हे अबला! तुम्हारा स्वर पिकध्वनि समझकर रसाल-वृक्ष अपनी शाखाएँ नहीं दिखाता। हे चपलाक्षी! तुम्हारी नाक को चम्पक समझकर भौंरे तुमको देखते ही भाग जाते हैं।[3]

"मन्द मलयानिल कमल-सरोवर की तरंगों पर राजहंस की भांति विचरण करता है। सहकार-वृक्ष के पल्लव-समुदाय को उन्मत्त कोयल कुमार की तरह विचलित करता है। पुष्पित नवलतापुंज में मस्त भ्रमरसम्राट की तरह विहार करता है। उद्यान को नवागत वसन्त के समान सौन्दर्यमण्डित करता है।"[4]

अब तक तेलुगु महाकाव्यों में परिलक्षित अलंकार विषयक दृष्टि, अलंकार प्रयोग में पूर्वकालीन महाकाव्यों तथा अनन्तरकालीन महाकाव्यों का अन्तर, कवियों की व्यक्तित्व-भिन्नता के अनुरूप वैविध्य, शब्दालंकार-विधान का औचित्य, भाव, रूप, गुण और क्रिया के उत्कर्ष में सहायक अलंकार-विधान तथा अप्रस्तुत-संचयन के स्रोतों का विवेचन किया गया है। अब हिन्दी क्षेत्र के महाकाव्यों का परिशीलन इन्हीं आधारों पर किया जायेगा और दोनों की तुलना उपस्थित की जायगी।

हिन्दी के महाकाव्यों में अलंकार-सम्बन्धी दो प्रकार की दृष्टि परिलक्षित होती है। एक में साधारण जनता के स्तर के अनुरूप स्वाभाविक रूप में अलंकार-प्रयोग की विशेषता प्रमुख है तो दूसरे में अपनी वाग्विदग्धता, चमत्कार और पाण्डित्य को प्रदर्शित करते हुए नरेशों, विशेषज्ञों और उसी राजसी वातावरण तक सीमित पंडितों को प्रसन्न करने की प्रवृत्ति प्रधान है। प्रथम को लोकदृष्टि और द्वितीय को शास्त्रीय दृष्टि कह सकते हैं। प्रथम का

1. मनुचरित्र, 3–25
2. श्रीकालहस्तिमाहात्म्य, 3–195
3. कुमारसम्भव, 5–165
4. निर्वचनोत्तर रामायण, 1–63

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

प्रतिनिधित्व चन्द और जायसी करते हैं तो दूसरे का केशव। यद्यपि तुलसी में 'प्राकृत जन गुणगान' की प्रवृत्ति का नितान्त अभाव है, सर्वजनहित में उनकी काव्य-कला प्रवृत्त है, तथापि परम्परागत तत्वों के सम्यक् उपयोग के कारण अलंकार-विधान की दृष्टि से तुलसी इस दूसरे वर्ग में गणनीय हैं।

डॉ. ओमप्रकाश के अनुसार "हिन्दी साहित्य में सब से सजीव तथा स्वाभाविकतापूर्ण काव्य वीरकाव्य ही है। उसमें चमत्कार भी मिलेगा, परन्तु केवल उसी स्तर तक जिसको सामान्य जनता भी समझ सके। वीरकाव्य ने संस्कृतकाव्य-परम्परा को न अपनाकर असंस्कृत काव्यशैली को अपनाया। इसके अनेक कारण हो सकते हैं, जिनमें मुख्य यह था कि वीरकाव्य लोककाव्य था, परन्तु संस्कृत काव्य केवल विशेषज्ञों का ही विषय बन चुका था।"[1]

चन्दबरदायी का काव्य कालक्रम की दृष्टि से अपभ्रंश काव्य के अत्यन्त सन्निकट है। अतः अपभ्रंश काव्य की लोकोन्मुखी प्रवृत्ति का, चन्द के अलंकार-विधान में प्रतिफलित होना स्वाभाविक है।

कवियों की व्यक्तिगत रुचि एवं प्रेरक परिस्थितियों के अनुसार उनके अलंकार-विधान में अन्तर है। केशवदास जी केवल कवि ही नहीं थे, बल्कि काव्यशास्त्र के आचार्य भी थे। अतः उनके काव्य में शास्त्रपक्ष भी काफी मुखर रहा है। उनकी तो यह स्पष्टोक्ति है—

"जदपि सुजाति सुलच्छनी, सुबरन सरस सुवृत्त।
भूषण बिन न बिराजई, कबिता वनिता मित्त॥"[2]

आचार्य शुक्ल के अनुसार "ये काव्य में अलंकार का स्थान प्रधान समझनेवाले चमत्कारवादी कवि थे।"[3] केशव के महाकाव्य में उपमा, उत्प्रेक्षा आदि सादृश्यमूलक अलंकारों के साथ विरोधाभास, विभावना, परिसंख्या आदि विरोधमूलक और उक्तिचमत्कार-प्रधान अलंकारों का विशेष प्रयोग दिखाई पड़ता है। उनकी दृष्टि चरित्र-चित्रण, भाव, वस्तु आदि के सहायक रूप में अलंकार-प्रयोग करने की अपेक्षा अलंकार को ही साध्य मानने की है। डॉ. ओमप्रकाश के अनुसार "रामचन्द्रिका में शब्दसादृश्य के स्वस्थ उदाहरण अनेक हैं······केशव को परिसंख्या तथा विरोधाभास का विशेष मोह था और इसमें मतभेद को स्थान नहीं कि इनका सौन्दर्य केशव के हाथ से जितना खिला है, उतना किसी अन्य हिन्दी कवि के प्रयत्न से नहीं।·········अपना बनाकर

1. हिन्दी काव्य और उसका सौन्दर्य, पृ. 18
2. कविप्रिया, 5–1
3. हिन्दी साहित्य का इतिहास, प. 192

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

इस कवि ने श्लेष को खिला दिया।······परिसंख्या केशव से अलग पनप ही नहीं सकी और विरोधाभास अन्यत्र हरा-भरा न रह सका।"[1] इस प्रकार रामचन्द्रिका में अलंकार-विधान अन्य महाकाव्यों की तुलना में विलक्षण है।

केशव की इस प्रवृत्ति के ठीक विपरीत तुलसी दिखाई पड़ते हैं। तुलसी में भाव, चरित्र, वस्तु आदि का समुचित निर्वाह भी है और साथ-साथ अलंकारों का सजग प्रयोग भी। दोनों के सम्यक् निर्वाह में तुलसी सिद्धहस्त थे। वे काव्य में अलंकार के महत्त्व से पूर्ण अवगत दिखाई पड़ते हैं। मानस में मुख्यत: सादृश्यमूलक अलंकारों का प्रयोग है और रूपक अलंकारों की बहुलता से इस अलंकार के प्रति कवि की विशेष प्रीति प्रकट होती है। डॉ. शंभूनाथ सिंह के अनुसार—"मानस में उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक, दृष्टान्त, रूपकातिशयोक्ति आदि अलंकारों की ही अधिकता है, किन्तु उनमें भी रूपक की जैसी स्वाभाविकता, अधिकता और पूर्णता मानस में मिलती है, वैसी हिन्दी के किसी अन्य महाकाव्य में नहीं मिलती। उपमाओं तथा सांग और परम्परित रूपक के कारण मानस में चित्रात्मकता भी बहुत अधिक दिखाई पड़ती है। नीति और उपदेश संबंधी वर्णन तथा प्रकृतिचित्रण में अधिकतर दृष्टन्त और उदाहरण का सहारा लिया गया है और रूपचित्रण में उप्रेत्क्षा का। इस तरह स्वाभाविक और सौन्दर्यवर्धक अलंकारों के प्रचुर प्रयोग के कारण रामचरितमानस की शैली में वह उदात्तता आई है, जो महाकाव्य के लिए अपेक्षित है।"[2]

पद्मावत में प्राय: सभी प्रसिद्ध अलंकारों के उदाहरण मिलते हैं, फिर भी जायसी ने सादृश्यमूलक अलंकारों का ही आश्रय अधिक लिया है। हेतूत्प्रेक्षा और रूपकातिशयोक्ति पद्मावत में अत्यन्त सुन्दर हैं। 'पृथ्वीराजरासो' में उत्प्रेक्षाओं की बहुलता है और हम्मीररासो की भी यही विशेषता है। इस प्रकार हिन्दी के महाकाव्यों में अलंकार-विधान वैविध्यपूर्ण है।

हिन्दी महाकाव्यों में बहुधा शब्दालंकारों का संयमित प्रयोग दिखाई पड़ता है। तुलसी, जायसी, गोरेलाल, चन्द आदि ने भाव-सौन्दर्य की वृद्धि हेतु इन अलंकारों का प्रयोग किया है। तुलसी के विषय में शुक्ल जी का कथन है—"ओज, माधुर्य आदि का विधान करनेवाले वर्ण-विन्यास का आश्रय उन्होंने लिया है। उनकी रचना शब्दसौन्दर्यपूर्ण है। अनुप्रास के तो वे बादशाह थे।"[3] कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं।

---

1. हिन्दी काव्य और उसका सौन्दर्य, पृ. 214
2. हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप-विकास, पृ. 5·8
3. गोस्वामी तुलसीदास, पृ. 143

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

"कंकन किंकिनि नूपुर धुनि सुनि। कहत लखन सन राम हृदय गुनि ॥
मानहु मदन दुंदुभी दीन्हीं। मनसा बिस्व बिजय कहँ कीन्हीं ॥[1]

"कहुं किन्नरी किन्नरी लै बजावै"[2]

"बहु भांति चमेलिय फूलि रही।
लखि मार सुमार सुदेह दही ॥
वन राम विलास सुबास भरै"[3]

उपर्युक्त प्रथम उदाहरण में अनुप्रास अलंकार की छटा वाटिका में सीता जी के कंकणों की ध्वनि तथा राम के मन पर उसके प्रभाव की व्यंजना के कारण बहुत रमणीय है। मान, सूदन आदि के वीरकाव्यों में वीररस की व्यंजना के लिए निरर्थक शब्दों की बार-बार आवृत्ति का कृत्रिम विधान किया गया है, जिसको शब्दनाद कहा जाता है। यह विधान काव्य-सौन्दर्य में कोई योगदान नहीं देता।

तेलुगु महाकाव्यों के अलंकार-प्रयोग का विवेचन करते हुए यह बताया जा चुका है कि कुछ कुशल कवियों ने अलंकार के द्वारा भावी कथा की सूचना पहले ही दे दी है। हिन्दी के महाकाव्यों में भी यह विधान दृष्टिगत होता है। केशव ने अंगद-रावण संवाद के अवसर पर लिखा है—

अंगद रावण को मुकुट, लै करि उडो सुजान।
मनो चल्यो यमलोक को, दस सिर को प्रस्थान ॥[4]

यहाँ पर रावण-वध की सूचना पहले ही मिल जाती है।

तुलसी कैकेयी के सबंध में लिखते हैं—

"कुमतिहि कसि कुबेषता फाबी। अन अहि वातु सूच जनु भावी ॥"[5]

इन पंक्तियों के द्वारा कैकेयी के वर माँगने से पूर्व ही पाठकों को दशरथ-मरण की सूचना मिल जाती है। प्राकृतिक दृश्यों के वर्णन के समय भी कवियों ने यह विधान अपनाया है, जैसे—

"अरुनोदय सकुचे कुमुद उडगन जोति मलीन।
जिमि तुम्हार आगमन सुनि, भए नृपति बलहीन ॥"[6]

हिन्दी महाकाव्यों के अलंकार-विधान में कवियों के रुचि-भेद के कारण जो विभिन्नता आ गई है, उसकी चर्चा के सन्दर्भ में तुलसी के चित्रात्मक

---

1. मानस-बालकाण्ड, 230—1
2. रामचन्द्रिका, 13—50
3. हम्मीररासो, पृ. 118
4. रामचन्द्रिका, 16—34
5. मानस—अयोध्याकाण्ड, 25—3
6. वही—बालकाण्ड, 238

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

सांग एवं परम्परित रूपकों, जायसी की हेतूत्प्रेक्षाओं, केशव की परिसंख्या श्लेष और विरोधाभासों तथा चन्दबरदाई की स्वरूपोत्प्रेक्षा का उल्लेख हो चुका है। अब इन अलंकारों के प्रयोग में उक्त कवियों के चातुर्य को उदाहरणों के द्वारा स्पष्ट किया जायेगा। पहले तुलसी को ही लिया जाय।

"कौसिक रूप पयोनिधि पावन। प्रेम बारि अवगाहु सुहावन॥
राम रूप राकेसु निहारी। बढ़ती बीचि पुलकावलि भारी॥"[1]

इस उदाहरण में पयोनिधि, वारि, राकेसु, बीचि—इन उपमाओं का आरोप क्रमशः कौशिक, प्रेम, राम और पुलकावली पर किया गया है। धनुष भंग के कारण राम के प्रति विश्वामित्र के मन में उद्वेलित प्रेमभाव का द्योतन यह सांगरूपक कर रहा है। निम्नांकित उदाहरण में मंच पर अवतरित राम को बालसूर्य के रूप में वर्णित करके सांगरूपक की योजना की गयी है।

"उदित उदयगिरि मंच पर, रघुवर बाल पतंग।
बिकसे संत सरोज सब, हरषे लोचन भृंग॥"[2]

इस प्रकार मानस में रूपक अलंकार का प्रयोग चित्रात्मक तथा विशिष्ट रुचिपूर्ण है। मानस में समूचे काव्य पर मानसरोवर का आरोप करके विस्तृत और पूर्ण सांगरूपक बाँधा गया है। इस पर स्वयंभूकृत 'पउमचरिउ' का प्रभाव माना जाता है।

पद्मावत में अन्य प्रमुख अलंकारों के प्रयोग के बावजूद उत्प्रेक्षा की योजना विशेष रूप से आकर्षक है। रूप-सौन्दर्य और भाव के उत्कर्ष के लिये अप्रस्तुत वस्तुओं के विषय में काल्पनिक हेतु को भी वास्तविक हेतु कहा गया है। यही हेतूत्प्रेक्षा अलंकार है। जायसी के महाकाव्य में से कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं—

"तेहि दुख डहे परास निपाते। लोहू बूडि उठे परभाते॥
राते बिब भये तेहि लोहू। परवर पाक फाट हिय गेहूँ॥"[3]

इस उदाहरण में पलाश के पत्तों के झड़ने, पुष्पित होने, कुंदुरू के लाल होने, परवल के पकने और गेहूँ के हृदय के फटने के हेतुरूप में नागमती की विरहवेदना की संभावना की गयी है। इसी प्रकार निम्नांकित पंक्तियों में नागमती-वियोग के लोकव्यापी प्रभाव को वर्णित किया गया है।

"पियसो कहेहु संदेसरा, ए भंवरा ए काग।
सो धनि बिरहें जरि गई। तेहिक धुआँ हम्ह लाग।"[4]

---

1. मानस-बालकाण्ड, 262—1
2. मानस-बालकाण्ड, 254
3. पद्मावत—नागमतीसन्देश खण्ड, 359
4. वही

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

चन्द के महाकाव्य में उत्प्रेक्षाओं की बहुलता है। परन्तु वहाँ हेतूत्प्रेक्षा के नहीं, बल्कि स्वरूपोत्प्रेक्षाओं के दर्शन होते हैं, जैसे–

"एहि अपुब्ब कविचन्द पेक्खउ।
तरणी समतेज दुजराज देक्खउ॥"[1]
चीर सम्मीर उड्डुति तुट्टइ
मनहु रितुराज द्रुमपत्त छुट्टइ॥"[2]

जायसी की मनोहर रूपकातिशयोक्तियों के लिये भी कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं–

केहि कहं कंवल विगासा को मधुकर रस लेइ।[3]
पन्नग पंकज मुख गहे खंजन तहाँ बईठ॥[4]
आजु मिली अनिरुध को ऊखा।[5]

उपर्युक्त पंक्तियों में कमल पद्मावती के लिये, मधुकर उसके पति के लिये पन्नग वेणी के लिये, पंकज मुख के लिये, खंजन नेत्रों के लिये, अनिरुद्ध रत्नसेन के लिये तथा ऊखा पद्मावती के लिये प्रयुक्त उपमान हैं।

केशव के प्रिय अलंकारों जैसे परिसंख्या और विरोधाभास के लिये उदाहरण प्रस्तुत हैं। ये दोनों अलंकार प्रायः श्लेष से अनुप्राणित होते हैं। पहले परिसंख्या के उदाहरण द्रष्टव्य हैं।

"मूलनहीं को जहाँ अधोगति केशव गाइय।
होम हुताशन धूम नगर एकै मलिनाइय।
दुर्गति दुर्गनिहिं जु कुटिल गति सरितन ही में।
श्रीफल को अभिलाष प्रकट कविकुल के जी में॥"[6]
"कुटिल कटाक्ष कठोर कुच, एकै दुख अदेय।
द्विस्वभाव है श्लेष में, ब्राह्मण जाति अजेय॥"[7]

केशव के विरोधाभास के प्रयोग के दो उदाहरण इस प्रकार हैं–

विषमय यह गोदावरी, अमृत के फल देति।
केशव जीवन हार को, दुःख अशेष हरि लेति॥[8]

---

1. पृथ्वीराजरासउ, पृ. 145
2. वही, पृ. 26
3. पद्मावत–नखशिख खण्ड, 106
4. वही, 115
5. वही–रत्नसेनसूली खण्ड, 274
6. रामचन्द्रिका, 1–48
7. वही, 28–16
8. वही, 11–26

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

पुनि गर्भ संयोगी रतिरस भोगी जग जन लीन कहावै ।
गुणि जग जन लीना नगर प्रवीना अति पति के मन भावै ।।[1]

इस प्रकार रामचन्द्रिका का अलंकार-विधान विशेषतः शब्द-सादृश्य पर आधारित है और कवि की शास्त्रीय दृष्टि को व्यक्त करता है ।

हिन्दी महाकाव्यों के अलंकारों को भी शुक्ल जी की वर्गीकरण-पद्धति के अनुसार–(1) भावों की उत्कर्ष-व्यंजना में सहायक अलंकार । (2) रूप का अनुभव तीव्र करने में सहायक अलंकार । (3) गुण का अनुभव तीव्र करने में सहायक अलंकार । (4) क्रिया का अनुभव तीव्र करने में सहायक अलंकार–इन चार भागों में विभाजित करके समझा जा सकता है । प्रत्येक वर्ग के लिये उदाहरण भी दिये जा रहे हैं ।

भाव की उत्कर्ष-व्यंजना में सहायक अलंकार :

"हे खग मृग हे मधुकर श्रेणी । तुम देखी सीता मृगनयनी ।।
खंजन सुक कपोत मृग मीना । मधुप निकर कोकिला प्रवीना ।।
कुंद कली दाडिम दामिनी । कमल सरद ससि अहि भामिनी ।।
वरुण पाश मनोज धनु हंसा । गज केहरि निज सुनत प्रशंसा ।।"[2]

उपर्युक्त पंक्तियों में सीताहरण के बाद राम के विरहजन्य उन्माद भाव की व्यंजना है । इसमें रूपकातिशयोक्ति अलंकार सहायक हुआ है ।

नागमती की वियोग-वेदना के सृष्टि-व्यापी प्रभाव को व्यंजित करने वाले जायसी की पंक्तियाँ इस प्रकार हैं–

कुहुकि कुहुकि जसि कोयल रोई । रक्त आँसु घुंघची बन बोई ।
पै करमुखी नैन तन राती । कौ सिरात विरहा दुख ताती ।।
जंह जंह ठाढि होइ बनवासी । तंह तंह होइ घुंघचिन्ह के रासी ।।
बुंद बुंद मंह जानहुं जीऊ । कुंजा गुंजि करहिं पिउ पीऊ ।।[3]

इसमें जासी की प्रिय हेतूत्प्रेक्षा का सौन्दर्य द्रष्टव्य है ।

रूप का अनुभव तीव्र करने में सहायक अलंकार

पुष्पवाटिका-प्रसंग में राम-लक्ष्मण को गोस्वामी जी उत्प्रेक्षा अलंकार के प्रयोग से प्रत्यक्ष दर्शाते हैं–

"लता भवन ते प्रगट भे, तेहि अवसर दोउ भाई ।
निकसे जनु जुग विमल विधु, जलद पटल बिलगाई ।।"[4]

---

1. रामचन्द्रिका, 1–35
2. मानस–अरण्यकाण्ड, 30–5
3. पद्मावत–नागमती वियोग खण्ड, 359
4. मानस–बालकाण्ड, 232

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

चन्द कवि रूपक अलंकार के प्रयोग से पृथ्वीराज-संयोगिता-विवाह के रीति-रस्मों का चित्रण इन प्रकार करते हैं—

"करिस्स काम कंकनं सु पानि बंध बंधये।
जु भावरी सषी सलज्ज रूझि तुरय वज्जये।
आचारु चारु देव सब्ब दोइ पष्प जंपहिं।
गंठि दिट्ठ इक्क चित्त लोक लोक चंपही।।"[1]

गुण का अनुभव तीव्र करने में सहायक अलंकार

"गंगा त्रिपथ गामिनी जैसी। छत्रसाल की कीरति तैसी।
सब सुर नर नागन की बानी। गावत विमल पवित्र बखानी।।"[2]

प्रस्तुत छत्रसाल के यश एवं अप्रस्तुत त्रिपथगामिनी गंगा में सर्व-व्यापकता, पवित्रता तथा स्वच्छता के गुण समान हैं। तुलसी सन्तों एवं हंसों में अभेद की स्थापना सारग्राहिणी प्रवृत्ति को समान धर्म बताते हुए करते हैं।

"जड़ चेतन गुन दोषमय, बिस्व कीन्ह करतार।
संत हंस गुन गहहिं पय, परिहरि वारि विकार।।"[3]

संयोगिता दूती से कहती है कि यौवन धन तो अस्थिर रहता है। क्या अंजलि में पानी स्थिर रहता है? संयोगिता के इस कथन में यौवन-धन की तुलना अंजलिगत जल से की गयी है। प्रस्तुत-अप्रस्तुत में सादृश्य 'अस्थिरता' गुण को लेकर है। चंद के शब्द इस प्रकार हैं—

"जुव्वन धन अस्थिर रहै अंभु कि अंजुरिया है"[4]

इन सब उदाहरणों में कवियों ने गुण का अनुभव तीव्र करने में सहायक रूप में अलंकार-प्रयोग किया है।

क्रिया का अनुभव तीव्र करने में सहायक अलंकार

उपमा और रूपक से परिपुष्ट संदेह अलंकार का प्रयोग करते हुए केशवदास जी हनुमान के समुद्र-लंघन का वर्णन करते हैं—

"हरि कैसौ वाहन कि विधि कैसो हेम हंस,
लीक सी लिखत नभ पाहन के अंक को।
तेज को निधान राम मुद्रिका विमान कैंधो,
लच्छन को बाण छूट्यो रावण निशंक को।

---

1. पृथ्वीराजरासउ, पृ. 154
2. छत्रप्रकाश, 3–44
3. मानस–बालकाण्ड, 6
4. पृथ्वीरारासउ, पृ. 40

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

गिरिराज गंड ते उडान्यो सुबरन अलि,
सीता पद-पंकज सदा कलंक रंक को।
हवाई से छुटी केशोदास आसमान में,
कमान कैसो गोला हनुमान चल्यो लंक को।"[1]

उपर्युक्त छन्द में शीघ्रता से छलांग मारनेवाले हनुमान जी की उड्डयन-क्रिया का अनुभव हवाई, कमान का गोला, गरुड़ और हंस आदि अप्रस्तुतों के कारण उत्कर्ष को प्राप्त करता है। 'गिरिराज गंड' और 'सुवरन अलि' कहने से क्रिया के साथ रूप के अनुभव में भी सहायता पहुँचती है।

छत्रसाल के पराक्रम के विषय में गोरेलाल का कथन है—

"बैरी भगे मनि भय भारी। परँ बिडर ज्यों बाघ बिडारी"[2]

यहाँ प्रस्तुत शत्रुओं एवं अप्रस्तुत बिल्ली में भयभीत होकर भागने के सिवा रूप, रंग आदि का कोई साधर्म्य नहीं है।

इस प्रकार हिन्दी के महाकाव्यों में विविध रूपों में कवियों ने अलंकार-प्रयोग किया है। इसमें यह विशेषता भी दिखाई पड़ती है कि कवियों ने विविध क्षेत्रों से अप्रस्तुत ग्रहण किये हैं। स्रोत की दृष्टि से इन अप्रस्तुतों को पाँच भागों में विभक्त कर सकते हैं, यथा—(1) लोक जीवन (2) प्रकृति (3) पौराणिक मान्यताएँ (4) साहित्येतर विद्याएँ (5) काव्य तथा काव्यशास्त्र। इन सबके लिए उदाहरण प्रस्तुत किये जा रहे हैं।

लोकजीवन

"भरें जुग्गनी खप्परे सूर लोही
मनो ग्राम बामा पनीहार सोही।"[3]
"मुक्कइ न लीह लज्जा सु रत्त
निद्धनिय धनुहु जानु गहइ हथ्थ"[4]
"बंदउं संत समान चित, हित अनहित नहिं कोइ।
अंजलिगत सुभ सुमन जिमि, सम सुगंध कर दोइ॥"[5]
"लागिउं जरे जरे जस भारु। बहुरि जो भूंजसि तजौंन बारु।"[6]

प्रकृति

"दिन दिन बढ़े बढ़ाइ अनंदा। जैसे सुकुल पक्ष को चंदा।"[7]

---

1. रामचन्द्रिका, 23-24 2. छत्रप्रकाश, 10—6 3. वही, पृ. 21
4. पृथ्वीराजरासउ, पृ. 909 5. मानस-बालकाण्ड, 3 (क)
6. पद्मावत-नागमती वियोग खण्ड, 354 7. छत्रप्रकाश, 4—3

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

"इक्कदंत छविधाम अरुण सिंदुरमय सोहै ।
मनों प्रात रवि उदित कहत उपमा कवि को है ।।"[1]

"चले सहस पथ मतंग सु गज्जं
मनो पावसं मेघमाला सुरज्जं"[2]

"मुख सरोज मकरंद छवि करइ मधुप इव पान ।"[3]

पौराणिक मान्यताएँ

"पुनर जन्ममेजय ते जानि जग्गे
रहे संकि ते सेस ते पूठि लग्गे"[4]

"कटारी वहैं वार पारं निहारैं ।
मनो स्याम उर मांझ कौस्तुभ सम्हारै ।।"[5]

"षोडस बरष स मुच्चि ग्रह ले सब दासि सुजान
मनहु सभा सुरलोक भइ चली अच्छरी समान ।"[6]

साहित्येतर अन्य विद्याएँ

"कहहु नाथ सुंदर दोउ बालक । मुनिकुल तिलक कि नृपकुल पालक ।।
ब्रह्म जो निगम नेति कहि गावा । उभय वेष धरि की सोई आवा ।।"[7]

"राम आगे चले मध्य सीता चली ।
बंधु पाछे भये सोभ सोभै भली ।
देखि देही सबै कोटिधा कै मनो ।
जीव जोवेश के बीच माया मनो ।"[8]

"जथा सुअंजन अंजि दृग, साधक सिद्ध सुजान ।
कौतुक देखत सैलबन, भूतल भूरि निधान ।।"[9]

"परा प्रीति कंचन महं सीसा । बिथरि न मिलै स्यामपै दीसा ।।
कहाँ सोनार पास जेहि जाऊँ । देइ सोहाग करै एक ठाऊँ ।।"[10]

काव्य तथा काव्यशास्त्र

"नैन लागु तेहि मारग पदुमावति जेहि दीप ।
जैस सेवाती सेवहि वन चातक जल सीप ।।"[11]

---

1. हम्मीररासो, 2
2. वही, 379
3. मानस-बालकाण्ड, 231
4. पृथ्वीराजरासउ, पृ. 91
5. हम्मीररासो, 773
6. पृथ्वीराजरासउ, 121
7. मानस-बालकाण्ड, 216-1
8. रामचन्द्रिका, 11-7
9. मानस-बालकाण्ड, 1
10. पद्मावत-नागमती सुआखण्ड, 89
11. वही-जोगीखण्ड, 139

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

निष्कर्ष

दोनों क्षेत्रों के महाकाव्यों में परिलक्षित अलंकार-विधान का विविध दृष्टियों से परिशीलन करने के उपरान्त निश्चित रूप से कह सकते हैं कि इन साहित्यों के महाकाव्य-निर्माताओं की कल्पना-शक्ति वैविध्यपूर्ण और उच्च कोटि की है। जीवन के विविध क्षेत्रों से गृहीत अप्रस्तुत कवियों के व्यापक अनुभव और पारदर्शी काव्य-प्रतिभा को प्रकट करते हैं। कवियों की व्यक्तित्व-भिन्नता के कारण स्तर-भेद और रुचि-भेद स्वाभाविक हैं। किन्तु समूह-रूप में विचार किया जाय तो यह कहना पड़ेगा कि हिन्दी और तेलुगु के महाकाव्य अलंकार-प्रयोग के आयाम में भी समृद्ध तथा सौन्दर्यपूर्ण हैं। सांस्कृतिक पृष्ठभूमि की समानता के कारण कविसमय-सिद्ध उपमान भी दोनों क्षेत्रों में समान हैं। मुख के लिए कमल और चन्द्रमा, केशों के लिए भ्रमर और काले सर्प, वीक्षणों के लिए कमल-श्रेणी, सारग्राहिणी प्रवृत्ति के लिए हंस इत्यादि कविसमय-प्रसिद्ध उपमान हैं। सजग प्रयास से और अनायास आगत शब्दालंकार इस परिणति के लिए उत्तरदायी कवियों की शब्दसाधना को प्रकट करते हैं। दोनों क्षेत्रों में प्रयुक्त अलंकार भाव, रूप, गुण, क्रिया तथा उक्ति के उत्कर्ष में सहायक होकर काव्य-सौन्दर्य का संवर्धन करते हैं। अलंकार के द्वारा भावी कथा को सूचित करने की योजना भी दोनों में समान है।

इन समानताओं के अतिरिक्त अन्तर भी दृष्टिगत होता है। हिन्दी की अपेक्षा तेलुगु क्षेत्र में शास्त्रीय दृष्टि की अधिकता दिखाई पड़ती है। इसका यही कारण प्रतीत होता है कि हिन्दी महाकाव्य पर प्राकृत-अपभ्रंश की लोकोन्मुखी प्रवृत्तियों का प्रभाव है तो तेलुगु महाकाव्य पर संस्कृत की शास्त्रीय मान्यताओं का प्रभाव है। चन्दबरदाई, जायसी आदि हिन्दी कवियों के सामने श्रोता के रूप में जन-साधारण था तो तेलुगु के प्रायः सभी महाकाव्य प्रबुद्ध एवं विशेषज्ञ पंडितों को दृष्टि में रखकर रचे गये। अप्रस्तुत-सामग्री हिन्दी महाकाव्य में संस्कृत साहित्यरूपी उद्गम-स्थान से गृहीत है, क्योंकि संस्कृत में पंडित-परंपरा से सौन्दर्यसंबंधी ऐसे नियम बने हुए थे, जिनका पालन कवियों का कर्तव्य हो जाता था। उदाहरण के लिए, किसी अंग के वर्णन के लिए किस अप्रस्तुत का उपयोग होना चाहिए, यह निश्चित था। किन्तु उन्हीं अप्रस्तुतों को लेकर जिस सजगता और कला-कुशलता से अलंकारों का निर्वाह किया गया है, उनमें तेलुगु महाकाव्य अपेक्षाकृत अधिक शास्त्रीय दृष्टि-संपन्न हैं।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

अष्टम अध्याय

छन्दयोजना

आदिकाल एवं मध्यकाल का हिन्दी साहित्य मुख्य रूप से पद्यसाहित्य है और इस साहित्य के सौन्दर्य में विविध प्रकार के छन्दों ने योगदान दिया है। हिन्दी महाकाव्यों में प्रयुक्त छन्द संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश के स्रोतों से आगत तथा हिन्दी कवियों की प्रतिभा से संवर्धित हैं। इनको वर्णिक छन्द तथा मात्रिक छंद, इन दो वर्गों में विभाजित किया गया है। वर्णिक का 'वृत्त' एवं मात्रिक का 'जाति' अधिधान भी प्रचलित है।

"छन्द अहहिं द्वविध जग माहीं। मात्रिक वर्णिक सुनत सुहाहीं।
मत्रिक छंदहि जाती कहिये। वर्णिक वृत्त कहत मुद लहिये।।"[1]

मात्रिक छन्द का यह लक्षण है कि उसके प्रत्येक चरण में मात्रिक संख्या एक समान होती है, परन्तु वर्णों का क्रम एक-सा नहीं होता। वर्णिक छन्दों में वर्णगणना प्रधान होती है, अर्थात् वर्णों का क्रम समान होता है और वर्णों की संख्या भी समान होती है।

"पद्यं चतुष्पदं तच्च वृत्तं जातिरिति द्विधा।
वृत्तमक्षर संख्यात्र जातिर्मात्राकृता भवेत्।।[2]

इन्हीं दो भेदों को संस्कृत छन्द एवं प्राकृत छन्द कहा गया है।[3] हिन्दी के महाकाव्यों में व्यवहृत मात्रिक छन्दों में प्रमुख हैं—दोहा, चौपाई, सोरठा, हरिगीतिका, त्रिभंगी, चौपैया, तोमर, अरिल्ल, कवित्त, सवैया, झूलना, छप्पय, कुण्डलिया, पद्धरी, दोहरा, गाथा, रोला आदि। वर्णिक छन्दों में अनुष्टुप, इन्द्रवज्रा, त्रोटक, भुजंगप्रयात, मालिनी, रथोद्धता, वसन्ततिलका, वंशस्थ, शार्दूलविक्रीडित, स्रग्धरा, नगस्वरूपिणी, मोतीदाम, नाराच, चंचला, सुन्दरी आदि प्रयुक्त हुए हैं। केशव के महाकाव्य में सर्वाधिक वैविध्य दिखाई पड़ता है, क्योंकि वे प्रतिज्ञाबद्ध होकर इस दिशा में सचेष्ट रूप से प्रवृत्त हुए। परम्परागत छन्दों के अतिरिक्त केशव ने कुछ मौलिक छन्दों की भी योजना की है, क्योंकि वे कवित्व के साथ आचार्यत्व को भी प्रदर्शित करना चाहते थे।

छन्दविधान की दृष्टि से मानस, पद्मावत और छत्रप्रकाश को एक वर्ग में तथा पृथ्वीराजरासो, हम्मीररासो, राजविलास और रामचन्द्रिका को दूसरे वर्ग में रख सकते हैं। प्रथम वर्ग में मुख्यतः दोहा-चौपाई शैली का विधान है तो दूसरे में छन्द-वैविध्य की परम्परा का निर्वाह हुआ है। कवियों के व्यक्तिगत

---

1. छन्दप्रभाकर, पृ. 5 2. वही
3. चन्दबरदाई और उनका काव्य, पृ. 213

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

वैशिष्ट्य के अनुरूप इन दो भेदों के और भी अवान्तर भेद बन सकते हैं। पद्मावत में अर्धालियों के उपरान्त एक दोहा रखने की प्रवृत्ति सामान्य रूप से मिलती है। मानस में इसका भी वैविध्य दृष्टिगत होता है। मानस में चौपाइयों के बाद दो दो दोहों की योजना भी मिलती है। अभिज्ञों का यह निष्कर्ष है कि हिन्दी काव्यों में प्रयुक्त दोहा-चौपाई शैली का मूलस्रोत अपभ्रंश साहित्य में है।[1] डॉ. रामसिंह तोमर के शब्दों में पद्धडिया-घत्ता शैली का ही परिवर्तित रूप दोहा-चौपाई शैली को कहा जा सकता है।[2] अपभ्रंश की यह छन्दशैली कडवक नाम से विख्यात है। डॉ. हरिवंश कोछड के अनुसार कडवकों में पद्धरी, पज्झटिका, पद्धडिया, पादाकुलक, अलिल्लह आदि सोलह मात्रावाले छन्दों का प्रयोग किया गया और कहीं कहीं चौपाई भी मिल जाती है। इस शैली की दृष्टि से अपभ्रंश और हिन्दी में "अन्तर केवल यह है कि हिन्दी काव्य में व्यवधान दोहा अथवा सोरठा द्वारा होता है और अपभ्रंश काव्य में सोलह मात्राओं के छन्दों में व्यवधान घत्ता का है।[3] तुलसी ने मानस में प्रधानतः चौपाई-दोहा शैली का प्रयोग करते हुए काण्डों के आरम्भ में तथा उत्तरकाण्ड के अन्त में संस्कृत श्लोकों की योजना की है। बीच बीच में प्रसंगोचित रूप में सोरठा, हरिगीतिका, त्रिभंगी, तोमर आदि की भी योजना की गयी है। किन्तु पद्मावत में दोहा और चौपाई के अतिरिक्त अन्य किसी छन्द के दर्शन नहीं होते। डॉ. सरला शुक्ल ने सूफी काव्यों में छन्दवैविध्य नहीं होने का कारण मसनवी काव्य-शैली बताया है।[4] इसके अलावा "जायसी का भारतीय छन्द-शास्त्र से सीमित परिचय है और ऐसा जान पड़ता है कि इन्होंने अपने दोहे को सन्तों की साखियों के माध्यम से ग्रहण किया है, अतः उनके इस छन्द के प्रयोग में भी अस्थिरता है।"[5] इस प्रकार तुलसी और जायसी के महाकाव्यों में छन्दयोजना का अन्तर है। छत्रप्रकाशकार गोरेलाल ने जायसी की भांति दोहों और चौपाइयों के अतिरिक्त अन्य किसी छन्द का प्रयोग नहीं किया।

पृथ्वीराजरासो, हम्मीररासो, सुजानसिंहचरित आदि वीरकाव्यों में विविध छन्दों का प्रयोग किया गया है। डॉ. रामसिंह तोमर के अनुसार केशवदास और

1. हिन्दी साहित्य (प्रथम खण्ड), पृ. 427
2. प्राकृत और अपभ्रंश साहित्य तथा उनका हिन्दी साहित्य पर प्रभाव, पृ. 234
3. अपभ्रंश साहित्य, पृ. 397
4. हिन्दी सूफी कवि और काव्य, पृ. 204
5. हिन्दी साहित्यकोश (पहला भाग), पृ. 343

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

सूदन की कृतियों को छन्दशास्त्र की अपूर्व कृतियाँ कहा जा सकता है ।[1] विविध प्रकार के छन्दों की यह परम्परा भी हिन्दी कवियों को अपभ्रंश साहित्य से प्राप्त है । अपभ्रंश को छन्दों की दृष्टि से एक समृद्ध भाषा माना गया है । पृथ्वीराजरासो के छन्दों के विषय में डॉ. विपिनबिहारी त्रिवेदी का मत है– "इस काव्य के अधिकांश छन्द प्राकृत और अपभ्रंश के हैं, जिनमें से कुछ का प्रयोग परवर्ती हिन्दी साहित्य में जोधराजकृत हम्मीररासो और सूदनकृत सुजानचरित प्रभृति वीर प्रबन्धकाव्यों के अतिरिक्त अपेक्षाकृत कम देखा जाता है ।"[2] डॉ. रामसिंह तोमर ने रामचन्द्रिका-जैसे छन्दविधान के दो अपभ्रंश काव्य, जिनदत्तचरिउ एवं सुदर्शनचरिउ का उल्लेख किया और यह अनुमान लगाया कि केशव के सामने विविध तुकान्त अपभ्रंश छन्दों के प्रयोग से युक्त कुछ इस प्रकार की कृतियाँ रही होंगी ।[3] इस प्रकार इन काव्यों में व्यवहृत बहुत से छन्द तथा उनके संयोजन की वैविध्यपूर्ण परम्परा दोनों अपभ्रंश की ही देन हैं । इसके अलावा यह भी उल्लेखनीय तथ्य है कि संस्कृत से प्राकृत और प्राकृत से अपभ्रंश तक आते-आते महाकाव्य के भिन्न सर्गों में भिन्न-भिन्न छन्दों की प्रथा धीरे-धीरे लुप्त होती गयी और छन्दोवैविध्यपरक काव्यों का सृजन होने लगा ।[4] हिन्दी में इस प्रवृत्ति का प्रतिफलन हुआ ।

हिन्दी के महाकाव्यों में प्राचुर्य की दृष्टि से वर्णिक छन्दों की अपेक्षा मात्रिक छन्दों का प्रयोग अधिक है । केवल केशव ही इस प्रवृत्ति के अपवाद हैं, क्योंकि 'रामचन्द्रिका' में 24 मात्रिक छन्दों तथा 58 वर्णिक छन्दों का प्रयोग किया गया है ।[5] मानस के वर्णिक छन्दों में, अधिकांश, काण्डों के आदि में संयोजित संस्कृत श्लोकों के लिए प्रयुक्त हैं । वास्तव में वर्णिक छन्दों की अपेक्षा मात्रिक छन्दों में गेयत्वगुण और प्रवाह की मात्रा अधिक होती है, क्योंकि वर्णवृत्तों में वर्णों का क्रम पहले ही से बंधा रहता है, जिसमें कवि अपनी ओर से परिवर्तन नहीं कर सकता । किन्तु मात्रिक छन्दों में मात्राओं की संख्या ही मुख्य रूप से नियत है, गणों का क्रम नहीं और इसलिए कवि स्वेच्छापूर्वक अपने भावों को पद्यमय रूप दे सकता है । साथ ही मात्रिक छन्द संगीत के लिए भी उपयुक्त होते हैं । संगीत में ताल का विधान प्रधान है और ताल का विचार

1. प्राकृत और अपभ्रंश साहित्य तथा उनका हिन्दी साहित्य पर प्रभाव, पृ. 266
2. चन्दबरदाई और उनका काव्य, पृ. 286
3. प्राकृत और अपभ्रंश साहित्य तथा उनका हिन्दी साहित्य पर प्रभाव, पृ. 235
4. अपभ्रंश साहित्य, पृ. 286
5. केशवदास, पृ. 203

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

मात्राओं पर अवलंबित है, न कि वर्णों पर।[1] इस प्रकार हिन्दी के महाकाव्यों में प्राकृत-अपभ्रंश की स्वच्छन्द प्रवृत्ति को ग्रहण किया गया। अपभ्रंश छन्दों की संगीतमयता का यह कारण है कि उनका सृजन सर्वसाधारण के लिए हुआ था। अपभ्रंश छन्दों की संगीतमयता एवं नृत्य में उनकी उपयोगिता के विषय में डॉ. विपिन बिहारी त्रिवेदी ने लिखा—"ये संगीतमय हैं और इन्हें एक डफली पर गा सकने योग्य बना दिया गया है। पज्झटिका छन्द में आठ मात्राओं के बाद ताल लगने लगती है।.........कुछ ऐसे छन्द भी हैं, जिनका प्रयोग नृत्य में किया जाता है। घत्ता और मदनगृह ऐसे ही छन्द हैं, जिनके गाये जाने पर नर्तकों के एक विशेष क्षण पर गति-परिवर्तन का रहस्य भली भांति समझ में आ जाता है।"[2]

जायसी और तुलसी की दोहा-चौपाई शैली कथा-कथन के लिए अत्यन्त उपयुक्त सिद्ध हुई है। चौपाइयों का लगातार क्रम आख्यान की निरन्तरता के लिए समर्थ रहा है तो दोहे कथाभाग को आरम्भ और अग्रसर करने में सहायक सिद्ध हुए हैं। तुलसी का हरिगीतिका छन्द कथांशों के बीच भावातिरेक से पूर्ण निदर्शन के लिए पुष्टि या सारांश-कथन के रूप में व्यवहृत है। उदाहरणार्थ वाटिका-प्रसंग में संयोजित निम्नोक्त छन्द द्रष्टव्य है।

"मनु जाहि राचेउ मिलिहि सो बरु सहज सुंदर सांवरो।
करुणानिधान सुजान सील सनेह जानत रावरो॥
एहि भांति गौरि असीस सुनि सिय सहित हिय हरषीं अली।
तुलसी भवानिहि पूजि पुनि पुनि मुदित मन मंदिर चली॥"[3]

तुलसी ने त्रिभंगी और चौपय्या छन्दों को स्तोत्र के वातावरण में तथा तोमर को युद्ध की विभीषिका प्रदर्शित करने के लिए प्रयुक्त किया है। मानस का भुजंगप्रयात शिवस्तुति के प्रसंग में औचित्यपूर्ण है। पृथ्वीराजरासो में 'साटिका' छन्द विशेषतः कोमल प्रसंगों में दृष्टिगत होता है, जैसे पृथ्वीराज-संयोगिता का केलिविलास और षड्ऋतु वर्णन। यह साटिका छन्द संस्कृत का 'शार्दूलविक्रीड़ित' है। संस्कृत साहित्य में भी इस छन्द का प्रयोग अकसर कोमल प्रसंगों में हुआ है।

केशव ने भी वर्ण्यविषय के अनुसार प्रसंगोचित रूप में छन्दों का विधान

---

1. चन्द्रबरदाई और उनका काव्य, पृ. 213
2. वही, पृ. 214
3. मानस—बालकाण्ड, 236

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

किया है, जैसे प्रातःकाल में राम को जगाते समय चारण 'हरिप्रिया' छन्द में उनकी स्तुति करते हैं—

"जागिये त्रिलोकदेव, देव देव रामदेव।
भोर भयो, भूमिदेव भक्त दरस पावैं॥"[1]

केशव ने चंचला छन्द का प्रयोग वाटिका-विहार के समय राम की सवारी के वर्णन में किया है। अश्वगति का प्रत्यक्षीकरण कवि की छन्दगति कर रही है। इस छन्द में 'चंचला' शब्द के प्रयोग के कारण यहाँ पर मुद्रा अलंकार की स्थिति मानी जा सकती है। तेलुगु के नन्नेचोड ने भी मुद्रालंकार के ऐसे सुन्दर प्रयोग किये हैं। केशव का चंचला छन्द इस प्रकार है—

"भोर होत ही गयो सु राजलोक मध्य बाण।
बाजि आनियो सु एक इंगितज्ञ सानुराग।
शुभ्र शुभ चारिहून अंश रेणु के उदार।
सीखि सीखि लेत है ते चित्त चंचला प्रकार।"[2]

केशव के छन्दप्रयोग की एक और विशेषता है कि उन्होंने जहाँ कथा द्रुतगति से आगे बढ़ती है वहाँ छोटे आकार के छन्दों तथा कथा की मंथरगति के अवसरों पर लंबे-लंबे छन्दों का प्रयोग किया है। इस प्रकार हिन्दी के महाकाव्यों में वर्ण्य-विषय के अनुरूप प्रसंगोचित रूप में छन्दयोजना दिखाई पड़ती है।

सर्गान्त में छन्दपरिवर्तन का विधान संस्कृत महाकाव्यों में है, जिसका निरूपण आचार्य विश्वनाथ ने किया है। मानस के काण्डों के अन्त में दोहा-चौपाई से भिन्न छन्दों की योजना मिलती है। पृथ्वीराजरासो जैसे छन्दो-वैविध्यपरक महाकाव्यों तथा छत्रप्रकाश और पद्मावत में सर्गान्त में छन्द परिवर्तन की प्रवृत्ति के लिए कोई अवकाश नहीं है। अतः संस्कृत की शास्त्रीय परम्परा का पालन केवल मानस में ही मिलता है।

हिन्दी महाकाव्यों के छन्दों में तुक या अन्त्यानुप्रास सामान्य विशेषता है। हिन्दी में अतुकान्त छन्दों का प्रयोग अपवाद रूप में हुआ है। रामचन्द्रिका में अतुकान्त छन्दों के कुछ उदाहरण मिलते हैं। संस्कृत साहित्य में तुकान्त छन्दों का प्रायः अभाव समझ सकते हैं। प्राकृत में भी छन्दों में तुक मिलना आवश्यक नहीं है। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने अनुमान किया कि छन्दों में तुक मिलाने की नवीन प्रथा भारतवर्ष के साथ उत्तर-पश्चिम सीमान्त से आगत

1. रामचन्द्रिका, 30–18 2. वही, 31–1

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

विदेशी जातियों के सम्पर्क का फल है।[1] केवल अपभ्रंश साहित्य में ही पहली बार छन्दों की तुकान्तता नियत लक्षण बन गयी। अपभ्रंश की इस प्रवृत्ति का अबाध प्रवेश हिन्दी साहित्य में उत्तराधिकार के रूप में हुआ। वास्तव में हिन्दी छन्दों के इस अन्त्यानुप्रास के कारण काव्यों में श्रवण-सुभगता एवं गेयता का समावेश हो गया है।

इस प्रकार छन्दविधान की मीमांसा के उपरान्त निष्कर्ष रूप में कह सकते हैं कि हिन्दी महाकाव्यों में वर्णिक तथा मात्रिक दोनों प्रकार के छन्दों का प्रयोग हुआ है, परन्तु प्राचुर्य की दृष्टि से मात्रिक छन्द ही अधिक हैं। दोहा-चौपाई शैली एवं विविध छन्दों के प्रयोग की शैली, इन दोनों को हिन्दी में देख सकते हैं और इनके पूर्वरूप अपभ्रंश साहित्य में उपलब्ध होते हैं। मात्रिक छन्दों की अधिकता के कारण काव्यों में सहज प्रवाह एवं गेयत्वगुण का समावेश हो गया है। वर्णिक छन्दों की अपेक्षा मात्रिक छन्दों के अतिशय प्रयोग की प्रवृत्ति प्राकृत-अपभ्रंश की है। इसके अलावा हिन्दी महाकाव्यों के अधिकांश छन्द प्राकृत-अपभ्रंश के छन्दों के आधार पर विकसित किये गये हैं। वर्ण्यविषय के अनुरूप प्रसंगोचित रूप में कवियों ने छन्दप्रयोग किया है। सर्गान्त में छन्द-परिवर्तन का पालन केवल तुलसी ने किया है। और कवियों की कृतियों में इसका अभाव है। हिन्दी की यह प्रवृत्ति संस्कृत परंपरा की नहीं, बल्कि प्राकृत परम्परा की है। छन्दों में तुक का विधान अपभ्रंश-काल में ही आरंभ हुआ था, जिसे हिन्दी महाकाव्यों ने परंपरागत रूप में प्राप्त किया। अतुकान्त छन्दों का अभाव नहीं है, किन्तु उनका बहुत ही विरल प्रयोग हुआ है। अतः कह सकते हैं कि छन्दविधान की दृष्टि से हिन्दी महाकाव्य अपभ्रंश महाकाव्यों के अत्यन्त निकट हैं।

तेलुगु महाकाव्यों में प्रयुक्त छन्द तीन प्रकार के हैं—वर्णवृत्त, जाति और उपजाति। असल में उपजाति जाति का ही भेद है। तेलुगु के छन्दशास्त्रों के अनुसार वृत्त गणबद्ध होते हैं और जाति मात्रायत्त होते हैं।[2] अर्थात् वृत्त वर्णिक छन्द हैं और जाति मात्रिक छन्द। जाति और उपजाति का अन्तर यही है कि जाति के प्रथम चरण में प्रयुक्त प्रथमाक्षर यदि गुरु हो तो, अन्य चरणों के प्रथमाक्षर भी गुरु होंगे। यदि प्रथम चरण का प्रथम वर्ण लघु हो तो अन्य चरणों के प्रथमाक्षर भी लघु ही होंगे। इस विषय में सांकर्य नहीं हो सकता।

1. हिन्दी साहित्य का आदिकाल, पृ. 100
2. छन्दोदर्पण-संज्ञा प्रकरण, 7

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

किन्तु उपजाति में चरणों के प्रथम वर्ण कवि की इच्छा के अनुसार गुरु लघु में कोई हो सकते हैं, अर्थात् बन्धन नहीं है। जाति में यति के स्थान पर प्रासयति का प्रयोग निषिद्ध है, पर उपजाति में यह नियम नहीं है। जाति में प्रास नियम अनिवार्य है, किन्तु उपजाति में प्रास का कोई प्रतिबन्ध नहीं है।[1]

सामान्यत: उत्पलमाला, चम्पकमाला, शार्दूलविक्रीडित, मत्तेभविक्रीडित—इन वर्णिक छन्दों, कंद नामक जाति तथा सीसमु, तेटगीति, आटवेलदि नामक उपजातियों का प्रयोग तेलुगु महाकाव्यों में किया गया है। समूचे काव्य को केवल द्विपद छन्द में ही रचने की प्रवृत्ति भी दिखाई पड़ती है। यह द्विपद छन्द मात्रिक छन्द है जिसमें प्रास-नियम एवं यति-नियम दोनों का पालन किया जाता है। प्रास-नियम से रहित द्विपद को मंजरी द्विपद कहा गया। 'पलनाटि वीरचरित' नामक वीरकाव्य मंजरी द्विपद में ही रचा गया है। इन छन्दों के अलावा भुजंगप्रयात, मानिनी, मालिनी, महास्रग्धरा, स्रग्विणी, स्रग्धरा, मत्त-कोकिल, तोटक, उत्साह, कविराजविराजित, पंचचामर, पृथ्वी, लयविभाति, लयग्राही, वनमयूर, वसन्ततिलक, स्वागत, मंगलमहाश्री आदि विशेष छन्दों का प्रयोग भी दृष्टिगत होता है। इन छन्दों का बहुत ही विरल प्रयोग महाकाव्य-गत कुछ विशेष स्थितियों में ही किया गया है। इनमें से कुछ का लक्षण जगन्नाथ प्रसाद भानु ने निरूपित किया है। भानुकवि के द्वारा निरूपित छन्द हैं चम्पकमाला, शार्दूलविक्रीडित, मत्तेभविक्रीडित, स्वागत, वसन्ततिलक, पृथ्वी, पंचचामर, तोटक, स्रग्धरा, महास्रग्धरा, स्रग्विणी, मालिनी एवं भुजंगप्रयात। चम्पकमाला के लिए भानु जी का लक्षण है, भ म स ग।[2] तेलुगु में व्यवहृत चम्पकमाला इस से भिन्न है। भानु जी ने वर्णवृत्तों के अन्तर्गत एक 'कन्द' का लक्षण बताया है। किन्तु तेलुगु का 'कन्द' मात्रावृत्त है। तेलुगु छन्दों का वर्गीकरण मूलस्रोत की दृष्टि से दो रूपों में हो सकता है, यथा (1) संस्कृत छन्द (2) देशीय छन्द। प्राय: सभी वर्णिक छन्द संस्कृत साहित्य से तेलुगु में आये हैं। देशीय छन्द तेलुगु के अपने हैं जो कन्नड, तमिल आदि भाषाओं के छन्दों से मेल खाते हैं। द्विपद, रगड, तेटगीति, आटवेलदि, सीसमु देशीय छन्द हैं।

तेलुगु में व्यवहृत वर्णिक छन्दों में चार प्रमुख हैं और इन चारों में से एक 'शार्दूलविक्रीडित' का संस्कृत साहित्य में विपुल प्रचार है। विशेषकर प्राच्य प्रदेश के निवासी गौडीयों का यह अत्यन्त प्रिय छन्द है, जिसका पता नाट्य शास्त्र के 'शार्दूललीला प्राच्येषु' वाले कथन से लग जाता है। औचित्य

---

1. अप्पकवीयमु, 4—261, 262   2. छन्दप्रभाकर, पृ. 132

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

विचार के लिए प्रसिद्ध क्षेमेन्द्र के अनुसार यह शौर्यवर्णन के लिए अत्यन्त उपयुक्त है। "शौर्यस्तवे नृपादीनां शार्दूलविक्रीडितम् मतम्"[1] हिन्दी में चन्द, तुलसी और केशव ने इसका प्रयोग किया है। पृथ्वीराजरासो में इसको 'साटिका' नाम दिया गया है, किन्तु लक्षण में भिन्नता नहीं है। इस छन्द के अतिरिक्त मत्तेभविक्रीडित, चम्पकमाला और उत्पलमाला छन्दों का विस्तृत रूप में प्रयोग तेलुगु के महाकाव्यों में दृष्टिगत होता है। संस्कृत साहित्य में इन तीनों छन्दों का प्रयोग कदाचित् ही किसी कवि ने किया हो। हिन्दी में लक्षणकारों ने केवल मत्तेभविक्रीडित का निरूपण किया है और महाकाव्यों में इसका अभाव है। वर्णिक छन्दों को संस्कृत से ग्रहण करने के बावजूद उनको विशेष रूप से विकसित करके तेलुगु महाकाव्यों में प्रयुक्त किया गया है।

तेलुगु महाकाव्यों के सृजन से बहुत पहले, आदि कवि नन्नय भट्ट से भी पूर्व का साहित्य इस समय उपलब्ध नहीं है। अत: यह कहना कठिन है कि ईसा की ग्यारहवीं शताब्दी से पहले के तेलुगु काव्यों में छन्दयोजना की कौन-सी प्रवृत्ति वर्तमान थी। नन्नय ने जिन छन्दों का व्यवहार अपनी कृति में किया था, अविकल रूप से उनकी परंपरा परवर्ती काव्यों में गृहीत हुई। नन्नय से पूर्व के शिलालेख प्राप्त हुए हैं, जिनमें देशीय छन्दों का व्यवहार हुआ है, संस्कृत छन्द एक भी नहीं हैं। उदाहरणार्थ युद्धमल्ल के बेजवाड़ा शिलालेख में मध्याक्कर छन्द तथा पंडरंग के अद्दंकि शिलालेख में तरुवोज छन्द का प्रयोग किया गया है।[2] देशीय छन्दों के विषय में श्री कोराड रामकृष्णय्या जी का मत है कि संस्कृत और प्राकृत के लक्षणकारों ने दक्षिण में परंपरा रूप से प्रचलित अनेक प्राचीन गीतरचनाओं को मात्रिक छन्दों के रूप में ग्रहण किया और तेलुगु के देशीय छन्द भी नन्नय के समय में या उन से दो-तीन शताब्दी पूर्व के शिलालेखों में आकस्मिक रूप से उत्पन्न नहीं, बल्कि ईस्वी सन् के आरंभ के प्राचीन तमिल साहित्य एवं नाट्यशास्त्रकार भरत के युग के हैं।[3] नन्नय भट्ट ने परंपरा से प्राप्त देशीय छन्दों का संस्कार करके, संस्कृत के वर्णवृत्तों को तेलुगु छन्दों के अनुरूप यति एवं प्रास से विभूषित करके मार्ग प्रशस्त किया। तेलुगु कवियों ने अपूर्व रीति से इन छन्दों का विकास किया है। कहने का यही आशय है कि तेलुगु के छन्दसौन्दर्य के मूल में कम से कम एक हजार वर्ष की काव्यसाधना

---

1. आन्ध्रमहाभारतमु—छन्दशिल्पमु, पृ. 387
2. शासनपद्यमंजरी, पृ. 1–3
3. दक्षिणदेश भाषा-सारस्वतमुलु: देशि, पृ. 207

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

का रहस्य छिपा हुआ है। श्री गुंटूरि शेषेन्द्रशर्मा के अनुसार तेलुगु कवियों ने विशिष्ट रूप से पद्यशिल्प या छन्दशिल्प की अपूर्व सृष्टि की है और इस शिल्प-संपदा के आधार पर एक अलग शास्त्र रचने की आवश्यकता है।[1]

तेलुगु महाकाव्यों में प्रयुक्त मात्रिक छन्दों में एक 'कन्द' हिन्दी में प्रयुक्त गाहा छन्द से साम्य रखता है। इसका कारण यही है कि ये दोनों छन्द एक ही स्रोत से ग्रहण किये गये हैं और वह स्रोत प्राकृत साहित्य है। प्राकृत की गाथा या गाहा को ही संस्कृत में आर्या कहा जाता है। गाथा का यह लक्षण है—

"पादे द्वादश विषमे मात्राश्चाष्टा दश द्वितीयेहि ।
पंचदश चुत्तरीये कथिता गाथा तथैवार्या ॥"[2]

प्राकृतपैंगलम के अनुसार—

सत्त गणा दीहंता
जो णलहु चट्ट णेह जो विसमे
तह गाहे बिह अद्धे
छट्टं लहुअं बिआणेहु[3]

अर्थात्—"जिसके पहले और तीसरे चरण में बारह बारह, दूसरे में अट्ठारह और चौथें में पन्द्रह मात्राएँ हों, उसे आर्या कहते हैं। इसके विषम गणों में जगण का निषेध है और अन्त में गुरुवर्ण होता है।"[4] इस आर्या-परिवार का एक छन्द 'आर्यागीति' है जिसको स्कंधक, खंधा या साहिनी भी कहा गया है। प्राकृत का यह स्कंधक ही तेलुगु का बहुप्रचलित 'कन्दपद्य' है। इस छन्द में चतुष्कलात्मक (चार मात्रावाले) गणों का ही विधान है। उसके विषम चरणों में बारह तथा सम चरणों में बीस मात्राएँ होती हैं। विषम गणों में जगण नहीं होता और अन्त में गुरु होता है।[5] अत: स्पष्ट है कि गाथा और कन्द में प्रथम एवं तृतीय चरण समान मात्रासंख्यक हैं। उदाहरण के तौर पर हिन्दी का एक गाथा तथा तेलुगु का एक कन्द पद्य प्रस्तुत हैं।

"अबुधा अलीह बाला, वयउं उच्चरिय भिन्न रस एनम्
लाहु आ लुहार पुत्ता, तुं पुत्तीय राह संधीय।"[6]

---

1. साहित्य-कौमुदी, पृ. 33
2. हिन्दी साहित्यकोश (पहला भाग), पृ॰ 259
3. आन्ध्रमहाभारतमु : छन्दशिल्पमु, पृ. 437
4. छन्दप्रभाकर, पृ. 99
5. वही, पृ. 100
6. पृथ्वीराजरासउ, पृ. 35

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

"आन्ध्रीस्तनापहासुलु
संधृत मधुपाब्ज मुकुल सदृशलतिनी
रंध्रमुलु कुचमुलखिलपु
रंध्री जनतिलक मचलराजात्मजकुन्"[1]

तेलुगु के मात्रिक छन्दों की रचना मात्रागणों के आधार पर होती है और हिन्दी में यह पद्धति नहीं है। भानु जी ने ट, ठ, ड, ढ, ण—इन मात्रिक गणों का लक्षण उपभेद सहित बताया है। किन्तु न तो मात्रिक गणों का उतना प्रचलन ही हुआ और न वे उतने परिचित हो सके। तेलुगु क्षेत्र में स्थिति इससे बिलकुल भिन्न है। तेलुगु के लक्षणकारों ने इन्द्रगण, सूर्यगण तथा चन्द्रगण की परिकल्पना की है। हगण तथा नगण सूर्यगण हैं। नल, नग, सल, भ, र एवं त इन्द्रगण हैं। चन्द्रगणों में नगग, नह, सल, भल, भगुरु, मलघु, सव, सह, तल, रल, नव, नलल, रगुरु एवं तग की परिगणना होती है।[2] श्री कोराड रामकृष्णय्या के अनुसार दक्षिणदेशीय छन्दों का समन्वय संस्कृत और प्राकृत के मात्रा-छन्दों से करके तेलुगु के लक्षणकारों ने इन मात्रागणों की परिकल्पना की है।[3] हिन्दी में मात्रिक-छन्दों का रूप गठन मात्रागणों के आधार पर नहीं है, केवल मात्राओं की संख्या के आधार पर है, जैसे चौपाई छन्द में 16 मात्राएँ होती हैं।

तेलुगु महाकाव्यों में मात्रिक एवं वर्णिक छन्दों की आनुपातिक स्थिति को दो प्रतिनिधि महाकाव्यों के आधार पर समझा जा सकता है। श्री निडुदवोलु वेंकटराव की गणना के अनुसार कुमारसंभव में 895 मात्रिक छन्दों एवं 454 वर्णिक छन्दों की योजना की गयी है[4] 'रामाभ्युदय' में 1011 मात्रिक छन्दों एवं 465 वर्णिक छन्दों की योजना हुई है। इस प्रकार हम समझ सकते हैं कि तेलुगु महाकाव्यों में वर्णिक छन्दों के साथ मात्रिक छन्दों का भी प्रचुर प्रयोग किया गया है। फिर भी हिन्दी महाकाव्यों की तुलना में तेलुगु क्षेत्र में वर्णिक छन्दों की अधिकता असंदिग्ध है। इससे यही निष्कर्ष निकलता है कि हिन्दी महाकाव्य पर अपभ्रंश की स्वच्छन्द प्रवृत्ति का प्रभाव है और तेलुगु महाकाव्य संस्कृत की परम्परा से अपेक्षाकृत अधिक प्रभावित हैं।

---

1. कुमारसम्भव 3–54
2. छन्दोदर्पण, 1–19
3. दक्षिदेश भाषा सारस्वतमुलु-देशि, पृ. 155
4. कुमारसंभव, भूमिका, पृ. 17

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

छन्दविधान तेलुगु महाकाव्यों में दो प्रकार का दृष्टिगत होता है—(1) केवल 'द्विपद' छन्द में समूचे काव्य की रचना (2) संस्कृत छन्दों एवं देशी छन्दों के प्रयोग से छन्दोवैविध्ययुक्त रचना। तेलुगु के द्विपद-काव्य दोहा-चौपाई शैली में लिखित हिन्दी काव्यों से तुलनीय हैं। दोनों में यह साम्य है कि छन्दों की विविधता के अभाव में प्रवाह रूप से कथा-कथन इन काव्यों में भली भांति सम्पन्न हुआ है। दोनों मात्रिक छन्द होने के कारण गेयता और लोकतत्व का समावेश इन काव्यों में हो सका है। रामचरितमानस की लोक-प्रियता का एक कारण दोहों और चौपाइयों की गेयता भी है। उभय क्षेत्रों के काव्यों में यह अन्तर है कि हिन्दी में दो छन्दों का साथ-साथ प्रयोग हुआ है और तेलुगु में एक ही छन्द का प्रयोग। इस अन्तर का यह कारण है कि हिन्दी कवियों के सामने अपभ्रंश की कडवक शैली थी और तेलुगु कवियों के सम्मुख जनसाधारण में प्रचलित गीतों का परिष्कृत रूप द्विपद छन्द था। इसी प्रकार तेलुगु के छन्दोवैविध्यपरक महाकाव्य हिन्दी के पृथ्वीराजरासो, रामचन्द्रिका आदि से तुलनीय हैं। तेलुगु में आठ से अधिक प्रकार के छन्दों का प्रयोग बहुत ही कम है। किन्तु पृथ्वीराजरासो, रामचन्द्रिका, राजविलास, सुजानचरित आदि में कई प्रकार के छन्द दृष्टिगत होते हैं। अतः कह सकते हैं कि तेलुगु की अपेक्षा छन्दों की दृष्टि से हिन्दी महाकाव्यों में वैविध्य की मात्रा अधिक है।

सर्गान्त में छन्द-परिवर्तन की प्रवृत्ति तेलुगु के महाकाव्यों में दृष्टिगत होती है। इस क्षेत्र में सर्ग को आश्वास कहा गया है। आश्वासों में प्रायः बहु-प्रचलित सामान्य छन्दों और आश्वासों के अन्त में विशेष छन्दों का प्रयोग तेलुगु महाकाव्यों की विशेषता है। उदाहरणार्थ 'मनुचरित्र' के प्रथम आश्वास के अन्त में उत्साह, चतुर्थान्त में 'पृथ्वी', पंचमांत में मालिनी एवं छठे के अन्त में 'वनमयूर' का प्रयोग मिलता है। 'आमुक्तमाल्यदा' के आश्वासों के अन्त में 'भुजंगप्रयात' 'मालिनी', 'स्रग्विणी' 'मत्तकोकिल' एवं 'तोटक' की योजना की गयी है। हिन्दी क्षेत्र में केवल 'मानस' में ही यह प्रवृत्ति दिखाई पड़ती है। जायसी और लाल की कृतियों में दोहा, चौपाई को छोड़कर अन्य छन्द का प्रयोग हुआ ही नहीं। रासो, रामचन्द्रिका आदि में विविध प्रकार के छन्दों का सर्वत्र प्रयोग है। अतः इन काव्यों में सर्गान्त में छन्द-परिवर्तन का प्रश्न ही नहीं उठता।

वर्ण्यविषय एवं छन्द का सम्बन्ध एक जटिल विषय है, जिसके बारे में निश्चित रूप से कहना कठिन कार्य है। अमुक विषय के लिए अमुक छन्द उपयुक्त है—इस तरह का सिद्धान्त बनाया नहीं जा सकता है। क्योंकि कोमल,

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

परुष, उल्लासमय, विषादमय इत्यादि विविध प्रसंगों में एक ही प्रकार के छन्दों का प्रयोग कवियों ने किया है। कविसम्राट विश्वनाथ सत्यनारायण के अनुसार रसानुकूल रूप में छन्द-प्रयोग करने में कविकृत शिल्प अनन्त प्रकार का होता है। डॉ. माधवशर्मा के शब्दों में "रसप्रधान काव्य का छन्द नामक अंग विभाव, अनुभाव तथा सात्विक भाव के वर्णन और स्थायी एवं संचारी की व्यंजना के अनुकूल होना चाहिए, इसको सभी काव्य-रसिकों ने स्वीकार किया है। विशिष्ट विभाव एवं रस के लिए उचित छन्दों का उल्लेख अपनी-अपनी इच्छा के अनुसार किया गया है। अतः छन्दों के नाम के आधार पर की जानेवाली औचित्य-चर्चाओं को परमार्थ नहीं मान सकते हैं।"[1] फिर भी महाकाव्यों में दृष्टिगत कुछ छन्दों की विषयानुरूपता का कथन असंगत नहीं है। कविवर नन्नेचोड ने दक्ष के द्वारा परमेश्वर की स्तुति के सन्दर्भ में 'लयग्राही' एवं 'लयहारिणी' छन्दों का प्रयोग किया है जिनमें शिव की नृत्य-भंगिमा का वर्णन है।[2] रामभद्र कवि ने जलक्रीडा-वर्णन में लयग्राही छन्द का प्रयोग किया है।[3] अल्लसानि पेद्दनार्य ने देवांगनाओं के फूल तोड़ते हुए परस्पर वार्तालाप करने के प्रसंग में 'रगड' छन्द को प्रयुक्त किया है।[4] ये सब, छन्दों के प्रसंगोचित विधान के लिए उदाहरण हैं। हिन्दी क्षेत्र के महाकाव्यों की चर्चा के अवसर पर तुलसी और केशव की इस प्रवृत्ति को हम देख चुके हैं।

तेलुगु छन्दों की यति विलक्षण है जो किसी अन्य भाषा के काव्यों में दिखाई नहीं पड़ती। यति की परिकल्पना के विषय में तेलुगु काव्य अन्य भाषा-काव्यों से भिन्न हैं। संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश एवं हिन्दी में यति का अर्थ विराम है। "बहुत से छन्दों में बहुधा चरण के किसी स्थल पर रुकावट, विराम या विश्राम की भी आवश्यकता होती है। इसके लिए नियमित वर्णों या मात्राओं पर बहुत थोड़ी देर के लिए रुकना पड़ता है। इस रुकने की क्रिया को यति कहते हैं।"[5] तेलुगु के यति वर्णमैत्री रूप में है तो संस्कृत, हिन्दी आदि में पदच्छेद रूप में है। यति को तेलुगु के लक्षणकारों ने 'वलि' के नाम से व्यवहृत किया। नन्नयभट्ट के अनुसार—

> "आद्यो वलिर्द्वितीयो वर्णः प्रासोत्र पादपादेषु
> स्वस्वचरणेषु पूर्वः प्रासस्सर्वेषुचैक एव स्यात्"[6]

1. आन्ध्रमहाभारतमु : छन्दशिल्पमु, पृ. 104
2. कुमारसंभव, 2—97 से 100
3. रामाभ्युदय, 1—82
4. मनुचरित्र, 3—84
5. काव्यप्रदीप, पृ. 277
6. अप्पकवीयमु, 3—3

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

अर्थात्–आन्ध्र भाषा में पद्यों के प्रत्येक चरण का प्रथम वर्ण वलि (यति) है और द्वितीय वर्ण प्रास है। प्रथम चरण के दूसरे अक्षर को ही अन्य तीनों चरणों में द्वितीयाक्षर के रूप में दोहराना चाहिए। तेलुगु के छन्दों में चरण के प्रथम अक्षर को अथवा उससे मैत्री रखनेवाले अक्षर को यतिस्थान में संयोजित करना अनिवार्य है। यह नियम केवल देशीय छन्दों में ही नहीं, बल्कि संस्कृत से गृहीत वर्णवृत्तों में भी लागू होता है। वर्णमैत्री के आधार पर तेलुगु के काव्यग्रन्थों में यति की योजना विविध रूपों में की गयी है। इन विविध रूपों को सामने रखकर छन्द-शास्त्र के लक्षणकारों ने यति-भेदों का निरूपण किया है। संस्कृत काव्यशास्त्र में जिस प्रकार अलंकारों की संख्या में वृद्धि होती गयी, उसी प्रकार तेलुगु के छन्दोग्रन्थों में यति-भेदों की संख्या बढ़ती गयी। भीमन ने शुरू में 10 यति-भेदों का लक्षण बताया, बाद में अनन्तामात्य के छन्दोदर्पण में यतियों की संख्या 24 हो गयी। चित्रकवि पेद्दना ने 27 यतियों का तथा अप्पकवि ने 41 यति-भेदों का लक्षण बनाया।

वर्णमैत्री के रूप में संयोजित यति के कारण तेलुगु महाकाव्यगत छन्दों में श्रुतिरंजकता का समावेश हुआ। प्रास नियम के कारण छन्दों में वर्णों की आवृत्ति हुई जो उनकी संगीतात्मकता में सहायक सिद्ध हुई। इस प्रकार यति एवं प्रास के विशिष्ट आभूषणों से विभूषित छन्दों के कारण तेलुगु काव्य नाद-सौन्दर्य में संस्कृत काव्यों से आगे बढ़ गये हैं। तेलुगु महाकाव्यगत छन्दों के यति एवं प्रास हिन्दी छन्दों की तुकान्तता से तुलनीय हैं।

तेलुगु के महाकाव्यों में छन्दों के अतिरिक्त अलंकृत गद्यखण्डों का भी विधान दिखाई पड़ता है। ये गद्यखण्ड काव्य-सौन्दर्य की दृष्टि से 'कादम्बरी', 'दशकुमारचरित' आदि संस्कृत गद्यकाव्यों के टक्कर के हैं। विद्यापति के द्वारा अपभ्रंश में रचित 'कीर्तिलता' में अलंकृत गद्यखण्ड मिलते हैं। हिन्दी में रासोग्रन्थों में कुछ वचनिकाएँ मिल जाती हैं। ये वचनिकाएँ छन्द नहीं, बल्कि गद्य ही हैं। तेलुगु महाकाव्यों में प्रयुक्त अलंकृत गद्यखण्ड प्रायः वर्णनात्मक हैं। विजयविलास में अर्जुन के द्वारा देखे गये पुण्य-क्षेत्रों के वर्णन के लिए एक गद्यखण्ड प्रयुक्त है। लज्जा भाव के कारण रमणीय सुभद्रा के गमन-वर्णन में भी गद्य है। पारिजातापहरण में चन्द्रिका-विहार के वर्णन में तथा मनुचरित्र में आखेट-प्रसंग में गद्य का प्रयोग मिलता है।

आधुनिक युग से पूर्व के साहित्य में प्रायः सभी कवियों की यह मान्यता दिखाई पड़ती है कि कुछ गण और कुछ छन्द शुभदायक हैं। काव्य के आदि में उन शुभ गणों की योजना से युक्त छन्द के प्रयोग से काव्य की निर्विघ्न

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

परिसमाप्ति होगी, काव्यकर्ता और संरक्षक दोनों सुखी होंगे, इत्यादि । छन्द शास्त्र के ग्रन्थों में गणों के देवता तथा शुभाशुभ फल बताये गये हैं । कुमार-संभवकार नन्नेचोड को लक्ष्य करके अधर्वण नामक छन्दशास्त्री ने लिखा था— "मगण के साथ रगण का प्रयोग काव्य के आरंभ में करनेवाले कवि का मरण निश्चित है । पहले टेंकणादित्य ने इस प्रकार की योजना की थी । इसके फल स्वरूप युद्ध में उसकी मृत्यु हुई थी ।"[1] ऐसी मान्यताओं से परिचालित होने के कारण तेलुगु के महाकाव्यों में प्रथम छन्द के रूप में शार्दूलविक्रीडित या उत्पलमाला की योजना की गयी है । एक में मगण सर्वप्रथम गण है और दूसरे में भगण । कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं ।

"श्रीकांतामणि कन्मोरंगि मदि धात्रिन्मंचिनन् तत् क्षिति"[2] (मगण)

"श्रीमदि किं प्रियं बेसग जेंचिन उय्येल लील वेंजयं"[3] (भगण)

"श्रीभूपुत्रि विवाह वेल निजमंजोराग्र रत्नस्थली"[4] (मगण)

"श्रीकमनीय हारमणि चेन्नुग दानुनु कौस्तुभंबुनं"[5] (भगण)

हिन्दी क्षेत्र में तुलसी, चन्द और केशव के महाकाव्यों में शुभगण से काव्यारंभ की प्रवृत्ति दिखाई पड़ती है, यथा—

"वर्णानामर्थसंघानां रसानां छन्दसामपि"[6] (मगण)

"छत्रं यामद गंध घ्राण लुब्धा अलि भूरि आच्छादिता"[7] (मगण)

"यहि पहिले परकाश में मंगल चरण विशेष"[8] (नगण)

छन्दयोजना की दृष्टि से उभय क्षेत्रों के महाकाव्यों के तुलनात्मक अनु-शीलन के उपरान्त निष्कर्ष रूप में कह सकते हैं कि हिन्दी महाकाव्यों में प्राचुर्य की दृष्टि से मात्रिक छन्द वर्णिक छन्दों की अपेक्षा अधिक हैं । केवल केशव इस प्रवृत्ति के अपवाद हैं । तेलुगु के महाकाव्यों में मात्रिक छन्दों के साथ-साथ वर्णिक छन्दों का भी प्रचुर प्रयोग हुआ है । फिर भी हिन्दी की तुलना में तेलुगु में वर्णिक छन्दों का प्रयोग अधिक है । हिन्दी महाकाव्यों में मात्रिक छन्दों की अधिकता प्राकृत-अपभ्रंश की परंपरा का फल है । अपभ्रंश काव्यों में प्रयुक्त छन्दों में लोकोन्मुखी प्रवृत्ति उनके गेय गुण से तथा नृत्य की उपयुक्तता से प्रमाणित है । अपभ्रंश की परंपरा में लिखित होने के कारण हिन्दी महा-काव्यों में भी उपर्युक्त गुणों का समावेश हो गया है । आलोच्य भाषाओं के

---

1. नन्नेचोडुनि कवित्वमु, पृ. 87
2. पांडुरंगमाहात्म्य
3. पारिजातापहरण
4. वसुचरित्र
5. आमुक्तमाल्यदा
6. रामचरितमानस
7. पृथ्वीराजरासउ
8. रामचन्द्रिका

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

महाकाव्यों में सामान्यत: प्रयुक्त छन्दों में, आर्यागीति का तेलुगु संस्करण 'कंदमु' हिन्दी की 'गाथा' से साम्य रखता है। शार्दूलविक्रीडित छन्द दोनों क्षेत्रों में समान है किन्तु पृथ्वीराजरासो में उसका नाम साटिका है। हिन्दी महाकाव्यगत छन्दों में तुकान्तता के कारण श्रुतिरंजकता है। छन्दों की तुकान्तता संस्कृत और प्राकृत में नहीं थी, यह अपभ्रंश की प्रवृत्ति है। हिन्दी महाकाव्यों ने कतिपय अन्य प्रवृत्तियों के समान इसको भी अपभ्रंश से ग्रहण किया है। तेलुगु छन्दों में श्रवण-सुभगता यति एवं प्रास के कारण है। तेलुगु की यति वर्णमैत्री रूप में होने के कारण संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश एवं हिन्दी से विलक्षण प्रकार की है। हिन्दी में दोहा-चौपाई शैली के समान तेलुगु का द्विपद छन्द आख्यान-कथन के लिए उपयुक्त सिद्ध हुआ है। विविध छन्दों के प्रयोग की प्रवृत्ति भी दोनों साहित्यों में दृष्टिगत होती है, पर वैविध्य की मात्रा हिन्दी में अधिक है। प्रसंगोचित रूप में छन्दों का विधान एवं काव्यारंभ में मंगलदायक गणों का प्रयोग—ये दोनों प्रवृत्तियाँ उभय क्षेत्रों में समान हैं। हिन्दी में रासोकाव्यों को छोड़कर अन्य महाकाव्यों में गद्य का प्रयोग नहीं हुआ। किन्तु तेलुगु में अलंकृत गद्यखण्ड प्राय: सभी महाकाव्यों में स्वल्प संख्या में ही सही दिखाई पड़ते हैं। ये गद्यखण्ड काव्य-सौन्दर्य की दृष्टि से दशकुमारचरित एवं कादम्बरी के टक्कर के हैं।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

नवम अध्याय

भाषाप्रयोग

तेलुगु साहित्य में भाषा-प्रयोग संबंधी दृष्टि दो प्रकार की लक्षित होती हैं। संस्कृत गर्भित भाषा-शैली में कतिपय कवियों ने अपनी अनुरक्ति दिखाई तो कुछ कवि प्रसन्न एवं सर्वजन-संवेद्य तद्भव-देशज शब्दप्रधान शैली के प्रेमी रहे हैं। नन्नय एवं तिक्कना को क्रमशः इस प्रथम एवं द्वितीय पद्धति के आचार्य माना जाता है। पालकुरिकि सोमन एवं नन्नेचोड ने अपनी कृतियों में 'जानु तेनुगु' शब्द का प्रयोग करके यह आभास दिया कि तेलुगु भाषा की इस विशिष्ट शैली में प्रसन्नता नामक गुण है तथा सरल और सर्वसामान्य रूप में भावों की अभिव्यक्ति इसमें होती है।[1] इस 'जानु तेनुगु' शब्द के ठीक अभिप्राय के संबंध में आलोचकों में मतैक्य नहीं है। फिर भी स्थूल दृष्टि से इतना अवश्य कहा जा सकता है कि यह तेलुगु की अपेक्षाकृत सुलभ तथा प्रौढ़ संस्कृत समासों से रहित शैली है। तेलुगु कवियों से पहले 'जाण्' एवं 'जाण्णुडि' शब्दों का प्रयोग कन्नड भाषा के कवियों ने किया। श्री वेदम् वेंकटराय शास्त्री का मत है—"कन्नड कविता की रीतियों में से एक लता नन्नय के एक शताब्दी बाद आन्ध्र प्रान्त में फैलकर देशी रचना एवं जानु तेनुगु के मार्ग पर आरूढ़ होकर तिक्कन आदि में पुष्पित, पालकुरिकि सोमनाथ में विकसित और नन्नेचोड में फलवती हुई है।"[2] परिणाम यह हुआ है कि तेलुगु के महाकाव्यों में दोनों प्रवृत्तियाँ दृष्टिगत होती हैं। रंगनाथ रामायण आदि द्विपद काव्यों में देशीयता केवल छन्द में ही नहीं, बल्कि भाषा में भी है। तत्सम शब्दों का नितान्त बहिष्कार करके एक अभिनव प्रयोग के रूप में केवल देशज एवं तद्भव शब्दों की शैली में कुछ महाकाव्यों की रचना हुई, जिनको 'अच्च तेलुगु काव्य' या 'शुद्धान्ध्र-काव्य' कहा जाता है। किन्तु यह प्रयोग बहुत कृत्रिम होने के कारण सफल नहीं हो सका। प्रबुद्ध पाठकवर्ग को ध्यान में रखकर संस्कृत के विद्वानों के द्वारा रचित होने के कारण अधिकांश महाकाव्यों में प्रधानतः तत्सम-प्रधान शैली के दर्शन होते हैं। साथ ही सरल तथा लघु देशज शब्दों से युक्त छन्द भी दृष्टिगत होते हैं।

आन्ध्र महाकाव्यों में संस्कृत साहित्य की विविध रचना-पद्धतियों के साथ प्रचुर परिणाम में शब्द भी ग्रहण किये गये। अतः तेलुगु महाकाव्यों के स्वारस्य का अनुभव सम्यक् रूप से करने के लिए संस्कृत का ज्ञान आवश्यक है। इसी

---

1. कुमारसंभव 1—35 तथा बसवपुराण 1—65,67
2. नन्नेचोडुनि कवित्वमु, पृ. 114

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

बात को दूसरे ढंग से यों कहा जा सकता है कि तेलुगु महाकाव्यों का सुष्ठु अध्ययन करने से संस्कृत में भी पांडित्य मिल जाता है। आन्ध्रभाषा संस्कृत से शब्द यथावत् स्वीकार नहीं करती। अपनी प्रकृति के अनुसार बनाकर अपने कारकचिह्न जोड़कर तब अपनाती है। तत्सम शब्दों की रूप-निष्पादन-प्रक्रिया का विवरण तेलुगु के व्याकरण-ग्रन्थों में प्राप्त होता है। तेलुगु कवियों ने छोटे-छोटे तत्सम शब्दों का ही नहीं, प्रत्युत लम्बे-लम्बे समासों का भी प्रयोग अपनी कृतियों में किया है। उदाहरणार्थ दो छन्द प्रस्तुत हैं—

एव्वतेवीवु भीतहरिणेक्षण योंटि चरिंचेदोट ले
किव्वनभूमि भूसुरुड ने प्रवराख्युड त्रोव तप्पितिन्
क्रोव्वुन निम्नगाग्रमुनकुन् चनुदेंचि पुरंबु जेर नि
केव्विधि गांतु तेल्पगदवे तेरुवेद्दि शुभंबु नीकगुन्[1]

उपर्युक्त अवतरण में प्रयुक्त तत्सम शब्द हैं—भीतहरिणेक्षण, चरिंचु, वनभूमि, भूसुरुड, प्रवराख्युड, नगाग्रमु, पुरंबु, विधि, शुभंबु। इन नौ तत्सम शब्दों के साथ अठारह देशज शब्दों का प्रयोग इस छन्द में किया गया है। सर्वत्र इसी अनुपात में शब्द-योजना नहीं की गयी। सुदीर्घ समास के लिए निम्न-लिखित छन्द द्रष्टव्य है।

"कांचेन् वैष्णवु डर्धयोजन जटाघाटोत्थशाखोपशा
खांचज्झाट चरन्मरुत्रय दवीयः प्रेषितोद्यच्छदो
दंचत्कीट कृत व्रणच्छलन लिप्यापादिताध्वन्यनि
स्संचारात्त महाफलोपम फलस्फायद् वटक्ष्माजमुन्"[2]

यहाँ पर काचेन्, वैष्णवुडु—इन दो शब्दों को छोड़कर बाकी सब एक समास है जो छन्द के चारों चरणों में व्याप्त है।

संस्कृत का प्रभाव तेलुगु महाकाव्यों की भाषा पर सुदीर्घ समासों के प्रयोग में ही नहीं, बल्कि संस्कृत साहित्य से वाक्य उद्धृत करने में भी दिखाई पड़ता है, जैसे—'आनन्दो ब्रह्म'[3] ज्ञातिश्चेदनलेन किम्'।[4] और सब कवियों ने संस्कृत से शब्द लेकर अपने काव्यों में संयोजित किया, किन्तु श्रीकृष्ण देवराय ने स्वरचित संस्कृत वाक्यों की योजना तेलुगु छन्दों में की है, यथा—नास्तिशाक बहुता, नास्त्युष्णता, नास्त्योदन सौष्ठवम्, कृपया भोक्तव्यम्[5] वाक्य-रचना पर भी संस्कृत का प्रभाव 'आमुक्तमाल्यदा' में दिखाई पड़ता है।

---

1. मनुचरित्र 2–39
2. आमुक्तमाल्यदा, 6–15
3. मनुचरित्र, 2-62
4. वसुचरित्र, 3–101
5. आमुक्तमाल्यदा, 1–84

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

तत्सम शब्दों में लंबे-लंबे समास बनते हैं। तद्भव एवं देशज शब्दों की तेलुगु में शब्द छोटे होते हैं। ऐसी शैली में महाप्राण वर्णों का प्रयोग बिल्कुल नहीं होता। इसीलिए तो चिन्नय सूरि नामक वैयाकरण ने यह सूत्र बनाया—"तेलुगु के छत्तीस वर्ण हैं।" यहाँ पर स्मरणीय है कि संस्कृत में पचास वर्ण हैं और प्राकृत में पैंतालीस। संस्कृत के तत्सम शब्दों के कारण ही तेलुगु में पचपन वर्ण हो गये। तेलुगु महाकाव्यों में उच्चारण की दृष्टि से सरल तथा साधारण जनव्यहार के अपेक्षाकृत अधिक निकट भाषा-शैली का भी प्रयोग मिलता है।

> "चुरुकु जूपुन गालिन कोरत नुरुकु
> नुरुकु जूपुल बुट्टिचु नेरुकु वारि
> यिरुकु वलिगुब्ब पालिड्ल यिगुरु बोंड्ल
> सेव किच्चेद नीकु विच्चेयु मय्य"[1]

इस छन्द में सिर्फ एक तत्सम शब्द सेवा है। निम्नोक्त छन्द में एक भी तत्सम शब्द नहीं मिलता।

> "सोगसि नव्वक नव्वु नेम्मोगमु वाडु
> कलुमु लीनेडु तलकु ऋगंटि वाडु
> पेद सादल ब्रतिकिंचु पेंपु वाडु
> पालमुन्नीटि लोन चूपट्टे नपुडु"[2]

उपर्युक्त दोनों शैलियों के प्रयोग से तेलुगु महाकाव्यों की भाषा अतीव समृद्ध हुई है।

कवियों की व्यक्तिगत विशिष्टता के अनुरूप विविध कवियों के भाषा-प्रयोग में अन्तर आ जाता है। प्रत्येक मनुष्य के उच्चारण की भांति, आचरण-पद्धति की भांति, वाक्प्रवृत्ति की एक विशिष्ट शैली होती है, जो उसकी अपनी कही जा सकती है। कंठस्वर के आधार पर जिस प्रकार व्यक्तियों को अंधेरे में भी पहचाना जा सकता है, उसी प्रकार भाषा-शैली के आधार पर पारखी लोग झुण्ड में मिल जाने पर भी काव्य-विशेष को ढूंढ़ निकाल सकते हैं। तेलुगु महाकाव्यों में तत्सम शब्दों में कोमलकान्तता प्रायः बनी हुई है। पेद्दनार्य की अपेक्षा तिम्मनार्य में इस कोमलत्व की मात्रा अधिक है। इसलिए काव्य-रसिक 'मुक्कु तिम्मनार्यु मुद्दु पलुकु' (तिम्मन की प्यारी बोली) कहकर उस काव्य-भाषा की प्रशंसा करते आ रहे हैं। इसके विपरीत भाषा-रीति श्रीकृष्णदेवराय

---

1. श्रीकालहस्तिमाहात्म्यमु, 3-71
2. रामाभ्युदय 3-45

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

की है जो प्रधानतः गौड़ी रीति है। आचार्य लक्ष्मीकान्तम् जी के अनुसार "एक जगह मुक्कु तिम्मन की भांति मधुर रचना करने में समर्थ यह कवि दूसरी जगह गाढ़े नारिकेल पाक में अपनी अनुरक्ति दिखाता है। उन स्थानों पर कवि भावव्यक्ति के लिए छटपटाता हुआ-सा लगता है। सहज रूप से संस्कृत कवि होकर कालक्रम में संभवतः तेलुगु कवित्व का अभ्यास इस कवि ने किया हो—इस कथन के लिए ऐसे पद्य निदर्शन हैं।"[1]

रामराजभूषण के व्यक्तित्व में संगीत-कला के रहस्यों का ज्ञान निहित है। निम्नलिखित गद्यखण्ड में संगीततत्व की मनोहरता द्रष्टव्य है—"मरियु नक्कुलाचल संतानंबु संतान कुसुमवासना समागत सारंग संगीत भृंगी तरंगंबुलु-पांगंबुलुगा पाडु वेल्पुगाणील पाणीरित माणिक्यवीणा मधुर क्वाणामृतंबुल गरगि जरुगु कुरुविंद कंदलंबुल जलंबुल पदनैन गैरिकतलंबुल पोडमिन कारणगुणंबुन पगडंबु डंबु विडंबिचु निगनिगनि तोगरु निगुड नेगडु"[2] आचार्य के. वी. आर. नरसिंहम जी ने लिखा कि वसुकार के गद्य तथा पद्य दोनों को स्वरकल्पना करके गानेवाले आज भी हैं।[3] महाकाव्यों की शैली में निखार कार्य है और उसके लिए कवियों का निरन्तर अभ्यास कारण। शैली की इस परिणति को शय्या-सौभाग्य के नाम से व्यवहृत किया गया है। इस प्रकार कवियों की व्यक्तिगत विशिष्टता के अनुरूप तेलुगु महाकाव्यों की भाषा में वैविध्य दिखाई पड़ता है।

तेलुगु के महाकाव्यों में प्रसंगोचित रूप में भाषा का प्रयोग दिखाई पड़ता है। कोमल प्रसंगों की भाषा से उद्धत प्रसंगों की भाषा भिन्न है। वर्ण-संघटन, गुण और समास के आधार पर काव्याचार्यों ने रीतियों का निरूपण किया था। वैदर्भी रीति की यह विशेषता है कि वह 'बन्धपारुष्य' से रहित 'शब्दकाठिन्य' से वर्जित और अतिदीर्घ समासों से मुक्त होती है। गौडी रीति इसके विपरीत 'ओजः कान्ति गुणोपेत' है। वैदर्भी रीति के लिए निम्नोक्त छन्द उदाहरण है।

"चिन्नि वेन्नेलकंदु वेन्नुदन्नि सुधाब्धि
पोडमिन चेलुव तोबुट्टु माकु
रहिबुट्ट जंत्रगात्रमुल राल् गरगिचु
विमल गांधर्वंबु विद्य माकु"[4]

इसमें वरूधिनी नामक गंधर्वांगना प्रवर से वार्तालाप के अवसर पर

1. गौतमव्यासमुलु, पृ. 38
2. वसुचरित्र, 2–11
3. आन्ध्रप्रबन्धमु-अवतरण विकासमुलु, पृ. 123
4. मनुचरित्र, 2–43

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

अपना परिचय देती है। छोटे-छोटे शब्दों से युक्त यह बंधपारुष्य-रहित शैली प्रसंग के लिए सर्वथा अनुकूल है।

दक्षयज्ञ में सतीदेवी के भस्मीभूत होने पर शंकर की क्रोधाग्नि की व्यंजना में दीर्घसमास-बहुला, संयुक्ताक्षरों से युक्त भाषा-शैली का प्रयोग नन्नेचोड ने किया है, यथा—

"विविधास्त्रानीकजाताविरल बहुल सद्विस्फुलिंगाग्नि युंद
त्पथमानाहारवक्त्रप्रकटित विष विभ्राजितोग्रानलंबुन्
सविकारात्मानि कोपोज्ज्वलतरविपुल ज्वाल युंगूडि पर्वेन्
भवकालाभील नेत्रोद्भव शिखि शिखलन् पद्मजांडंबु दाकन्"[1]

हिन्दी महाकाव्यों में भाषा-विषयक दृष्टि अपभ्रंश काव्यों के समान प्राय: लोकोन्मुखी है। गोस्वामी तुलसीदास ने अपनी इसी दृष्टि का परिचय यों दिया है—

"कीरति भनिति भूति भलि सोई। सुरसरि सम सब कहँ हित होई"[2]

रासोकाव्य अपभ्रंश के अधिक निकट हैं, अत: जनसाधारण के स्तर के अनुरूप उनकी भाषा-शैली है। संस्कृत के वर्णवृत्तों में ही संस्कृताभास, तत्सम-बाहुल्य एवं समास-योजना की प्रवृत्ति मिलती है। किन्तु अन्यत्र भाषा में तत्सम शब्द बहुत कम हैं। डॉ. माताप्रसाद गुप्त का यह निष्कर्ष है कि रासो की भाषा में प्राकृत-अपभ्रंश के रूढ़ रूपों के अवशेष अधिक हैं और नव्य भारतीय आर्य भाषा के रूप कम हैं।[3] इस कथन से यही व्यजित होता है कि रासोकाव्यों में प्राकृत-अपभ्रंश की भाषा-विषयक प्रवृत्तियों का पालन हुआ है।

वास्तव में, भक्ति आन्दोलन के कारण ही हिन्दी में तत्सम शब्द बढ़ते गये। डॉ. हरदेव बाहरी के शब्दों में "हिन्दी प्रदेश की बोलियों में आनुपातिक दृष्टि से सब से अधिक संख्या तद्भव शब्दों की है। साहित्य में भी 19वीं शती से पहले तद्भव शब्दों की ही प्रधानता थी। सच तो यह है कि तब तक जनभाषा ही साहित्यिक भाषा थी।.........कबीर, जायसी, तुलसी, बिहारी, भारतेन्दु, महावीर प्रसाद द्विवेदी, प्रसाद और पन्त की भाषा में तद्भव शब्दों का क्रमिक ह्रास स्पष्ट लक्षित होता है। आज की परिनिष्ठित हिन्दी शब्द-भण्डार की दृष्टि से तत्समरूपप्रधान है ही।"[4]

---

1. कुमारसंभव, 2–50
2. मानस-बालकाण्ड, 14–5
3. पृथ्वीराजरासउ, भूमिका, पृ. 157
4. हिन्दी साहित्य (प्रथम खण्ड), पृ. 175

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

रामचन्द्रिका में शास्त्रीय दृष्टि अपेक्षाकृत अधिक है। केशव ने संस्कृत साहित्य से अविकल रूप में कई अंश ग्रहण किये थे। अतः तत्सम शब्दों का बाहुल्य स्वाभाविक है। समूह रूप में विचार किया जाय तो, हिन्दी महाकाव्यों की भाषा तद्भव शब्दप्रधान है और इसका मुख्य कारण यही हो सकता है कि हिन्दी कवियों के सामने अपभ्रंश की परंपरा थी। डॉ. रामसिंह तोमर का अधोलिखित कथन सच है कि—"भावधारा के लिए मध्ययुगीन अनेक हिन्दी कवियों ने संस्कृत साहित्य की ओर देखा, किन्तु काव्य के बाह्य समस्त रूपों के लिए वे अपभ्रंश की ओर झुके हैं।"[1] भाषा भी काव्य के बाह्य रूपों में से एक है।

कवियों की प्रेरक परिस्थितियाँ, युग तथा रुचि-वैशिष्ट्य के अनुरूप उनकी काव्य-भाषा में अन्तर है। गोस्वामी जी और जायसी ने अपने महाकाव्यों में अवधी भाषा का प्रयोग यद्यपि किया है, फिर भी तुलसी की अवधी और जायसी की अवधी में भेद है। आचार्य शुक्ल के अनुसार "जायसी की भाषा बहुत ही मधुर है, पर उसका माधुर्य निराला है। वह माधुर्य भाषा का माधुर्य है, संस्कृत का माधुर्य नहीं। वह संस्कृत की कोमलकान्त पदावली पर अवलंबित नहीं है। उसमें अवधी अपनी स्वाभाविक मिठास लिए हुए है।.........जायसी की पहुंच अवध में प्रचलित लोकभाषा के भीतर बहते हुए माधुर्य स्रोत तक ही थी, पर गोस्वामी जी की पहुंच दीर्घ संस्कृत कवि-परंपरा द्वारा परिपक्व चाशनी के भाण्डागार तक भी पूरी-पूरी थी।"[2]

तुलसी और केशव ने रामकथा के आधार पर महाकाव्य-रचना की। किन्तु दोनों की भाषा में भारी अन्तर है। यह अन्तर अवधी और ब्रजभाषा का ही अन्तर नहीं है, प्रत्युत् सादगी और कृत्रिमता का अंतर है। "तुलसीदास की अनुपम शैली का सौन्दर्य उसकी ऋजुता, उसकी अल्पालंकार-प्रियता, उसकी रमणीयता, उसके लालित्य और उसके प्रवाह में है और ये गुण रामचरितमानस में चरम उत्कर्ष को प्राप्त होते हैं।"[3] केशव की भाषा में इस प्रकार का सौन्दर्य दिखाई नहीं पड़ता। वहाँ पर श्लिष्ट शब्दों की योजना से संबंधित चातुर्य दिखाई पड़ता है।

पृथ्वीराजरासो की भाषा के संबंध में डॉ. नामवर सिंह का यह कथन द्रष्टव्य है। वे कहते हैं—"निश्चय ही चन्द बिहारी की भांति एक-एक शब्द

---

1. प्राकृत और अपभ्रंश साहित्य तथा उनका हिन्दी साहित्य पर प्रभाव, पृ. 210
2. जायसी ग्रन्थावली की भूमिका, पृ. 197
3. तुलसीदास, पृ. 369

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

बहुत तराश खरादकर, बहुत सोच-विचार के साथ प्रयोग करनेवाले जडाऊ या शिल्पियों में से न थे। वे मस्तमौला की तरह शब्दों का बेलाग प्रयोग करते थे।"[1] इस प्रकार कवियों के भिन्न व्यक्तित्वों के अनुसार हिन्दी महाकाव्यों की भाषा वैविध्य से पूर्ण है।

तुलसी के महाकाव्य में संस्कृत भाषा काण्डों के आरंभ में निबद्ध श्लोकों के रूप में दिखाई पड़ती है। इसके अलावा स्तोत्रों में भी दिखाई पड़ती है, जैसे–

मुनि मानस पंकज भृंग भजे। रघुबीर महा रनधीर अजे॥
तव नाम जपामि नमामि हरी। भवरोग महागदमान अरी॥[2]

जायसी, लाल, मान आदि के काव्यों में संस्कृत श्लोक बिल्कुल नहीं हैं। भाषा भी प्राय: तद्भवशब्द-प्रधान है। तेलुगु महाकाव्यों की भांति 'शीतांशोरमृतार्पणम्' 'आनन्दोब्रह्म' 'कृपया भोक्तव्यम्' जैसे वाक्य हिन्दी महाकाव्यों में तद्भव शब्दों के साथ प्रयुक्त नहीं हैं। वास्तव में लंबे लंबे समास हिन्दी की प्रकृति के विरुद्ध हैं। आधुनिक काल में हरिऔध जी ने 'रुपोद्यानप्रफुल्लप्रायकलिका राकेंदुबिबानना' आदि सुदीर्घ समासों का प्रयोग किया है, किन्तु यह शैली लोकप्रिय नहीं बन सकी। तेलुगु महाकाव्यों में पद्य के तीन या चारों चरणों में परिव्याप्त एक ही समास का प्रयोग दिखाई पड़ता है। तुलसी ने भी इतने लंबे समासों का प्रयोग नहीं किया है। इस प्रकार तत्सम शब्दों के प्रयोग में तेलुगु के कुछ महाकाव्य हिन्दी से बहुत आगे बढ़ गये है।

हिन्दी के कुछ महाकाव्यों में प्रसंगानुकूल रूप में भाषा-प्रयोग दिखाई पड़ता है। मानस की निम्नलिखित पंक्तियों की तुलना, रावण पर युद्ध करनेवाले राम के वर्णन की पंक्तियों से करने पर यह विशेषता स्पष्ट होती है।

"सुंदरता कहुं सुंदर करई। छविगृह दीपसिखा जुन बरई॥
सब उपमा कवि रहे जुठारी। केहिं पटतरौ विदेहकुमारी॥"[3]

वाटिका-प्रसंग की उपर्युक्त पंक्तियों का सन्दर्भ कोमल है, क्योंकि राम अपने मन में सीता के सौन्दर्य की सराहना करते हैं। यहाँ पर भाषा कोमल है, द्वित्व वर्णों की आवृत्ति बिल्कुल नहीं है। अब राम के क्रोध का वर्णन करनेवाला छन्द भी द्रष्टव्य है।

---

1. संक्षिप्त पृथ्वीराजरासो, परिशिष्ट (क), पृ. 196, 197
2. मानस–उत्तरकाण्ड, 13 (क)–9
3. मानस–बालकाण्ड, पृ. 230

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

"भए क्रुद्ध विरुद्ध रघुपति त्रोन सायक कसमसे ।
कोदंड धुनि अतिचंड सुनि मनुजाद सब मारुत ग्रसे ।।
मंदोदरी उर कंप कंपति कमठ भू मूधर त्रसे ।
चिक्करहिं दिग्गज दसन गहि महि देखि कौतुक सुर हंसे ।।"[1]

जोधराज ने मीर महिमाशाह एवं कुसुमविचित्रा के मिलन के अवसर पर सुकुमार शैली का प्रयोग किया है, जैसे—

"कंचनलता सी थहरात अंग अंग मिलि
सीकर समूह अंग अंगनि में दरसै ।
चुम्बन कपोल नैन खण्डन अधर नख
गहत पयोधर प्रचण्ड पानि परसै ।।
आनंद उमंगन मैं मुसुकात बाद तुत
रात बतरात सतरात रस बरसै ।
लपटनि झपटनि मसकनि अनेक अंग
रति रंग जंगतै अनंग रंग सरसैं ।।"[2]

यह सुकुमार शैली वीरोत्साहपूर्ण उद्धत शैली से तुलनीय है। तुलना करने पर प्रसंगानुसार भाषा की योजना में कवि की सिद्धहस्तता स्पष्ट होती है। द्वित्व वर्णों के प्रयोग से युक्त शैली के लिए निम्नोक्त पंक्तियाँ उदाहरण हैं।

'गजराजन सज्जै अग्गौ रज्जै वीर गज्जै लखि लज्जैं ।
नीसान फरक्कैं धीर धरक्कैं, हर हर बक्कैं गल गज्जैं ।।
दोउ ओर उमग्गैं समर सुरड्डैं, बढ़ि बढ़ि तडै नख खंडैं ।
बहु तोपन छुटैं बीर अहुट्टैं, फिर फिर जुट्टै बल चंडैं ।।"[3]

इस प्रकार हिन्दी के महाकाव्यों में वर्ण्य-विषय के अनुरूप भाषा-शैली लक्षित होती है।

हिन्दी क्षेत्र में मध्यकाल के कवियों की भाषा में अव्यवस्था दिखाई पड़ती है, जिस पर खीझकर आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा—"भाषा जिस समय सैकड़ों कवियों द्वारा परिमार्जित होकर प्रौढ़ता को पहुँची, उसी समय व्याकरण द्वारा उसकी व्यवस्था होनी चाहिए थी कि जिससे उस च्युतसंस्कृति दोष का निराकरण होता जो व्रजभाषा काव्य में थोड़ा-बहुत सर्वत्र पाया जाता है।"[4] तुलसी की भाषा परिनिष्ठित है, किन्तु जायसी में न्यूनाधिक मात्रा में

---

1. मानस, लंकाकाण्ड, 91 2. हम्मीररासो, 242 3. वही, 783, 784
4. हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ. 220

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

अव्यवस्था है। शुक्ल जी के अनुसार "जायसी की वाक्यरचना...तुलसी के समान सुव्यवस्थित नहीं है। उसमें जो वाक्य-दोष मुख्यतः दिखाई पड़ता है, वह न्यूनपदत्व है। विभक्तियों का लोप, सम्बन्धवाचक सर्वनामों का लोप, अव्ययों का लोप जायसी में बहुत मिलता है।...इस लोप के कारण प्रसाद गुण बिल्कुल जाता रहा है और अर्थ का पता लगाना दुष्कर हो गया है।"[1]

इस प्रकार की अव्यवस्था तेलुगु महाकाव्यों की भाषा में नहीं मिलती। कारण तिक्कना, पेद्दना, रामराजभूषण, सूरना, तिम्मना आदि महाकवि बड़े ही व्युत्पन्न थे। तेलुगु की काव्यभाषा अपने मूल रूप में नन्नय भट्ट के द्वारा अनुशासित थी जिसका अनुसरण परवर्ती कवियों ने किया। हिन्दी महाकाव्यों में बोलियों का वैविध्य भी मिलता है। रासो, मानस और रामचन्द्रिका में शब्दों के रूप एक समान नहीं हैं। उनमें भिन्नता है। रासो में प्राकृत-अपभ्रंश के पुराने रूप हैं, मानस में परिनिष्ठित अवधी है और केशव की ब्रजभाषा पर बुन्देलखण्डी प्रभाव है। किन्तु तेलुगु के सभी महाकाव्यों की भाषा संरचना की दृष्टि से एक है। कवियों की व्यक्तिगत रुचि के अनुसार शैली-भेद हो सकता है। शब्दयोजना भिन्न-भिन्न हो तकती है, शब्द-भण्डार में अन्तर भी स्वाभाविक है। इन सब के बावजूद आलोच्यकाल के तेलुगु महाकाव्यों में प्रयुक्त भाषा का व्याकरण एक ही है। हिन्दी और तेलुगु की काव्य-भाषा का यह स्पष्ट अंतर है।

तेलुगु और हिन्दी के महाकाव्यों में संस्कृत-गर्भित भाषा के अतिरिक्त तद्भव-देशज शब्दों के बाहुल्य की शैली भी दिखाई पड़ती है। हिन्दी में प्राचुर्य की दृष्टि से तद्भवात्मक शैली प्रधान है, यद्यपि तुलसी और केशव के प्रकाण्ड पाण्डित्य के फलस्वरूप काफी संस्कृत शब्दों का प्रवेश हो गया है। तेलुगु में प्रचुरता संस्कृत गर्भित भाषा-शैली की है। हिन्दी में अपभ्रंश काव्यों की भाषा-विषयक प्रवृत्ति का पालन हुआ है, परन्तु भक्ति आन्दोलन आदि सांस्कृतिक परिस्थितियों के कारण हिन्दी में अपभ्रंश की तुलना में तत्सम शब्दों की मात्रा बढ़ती गयी। तेलुगु के महाकाव्यों में कवियों की व्यक्तित्व-भिन्नता के बावजूद भाषा की संरचना एक है। हिन्दी क्षेत्र में बोली-वैविध्य के कारण संरचना की एकता संभव नहीं थी। कोमल प्रसंगों में श्रवण-रंजक भाषा और उद्धत प्रसंगों में कठोर वर्णों की योजना की प्रवृत्ति दोनों क्षेत्रों में समान है।

---

1. जायसी ग्रन्थावली की भूमिका, पृ. 194

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

दशम अध्याय

उपसंहार

हिन्दी और तेलुगु आधुनिक भारतीय भाषाएँ हैं, जो लगभग एक हज़ार वर्ष के साहित्य से समृद्ध हैं। इन भाषाओं के साहित्य-संपन्न होने से पूर्व इस देश में प्राचीन एवं मध्यकालीन भाषाओं में यथेष्ट साहित्य-सर्जना हो चुकी थी। संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, तमिल तथा कन्नड़ के साहित्यों में प्राप्त विविध काव्यरूपों, कला संबंधी परंपराओं और रचना-रीतियों को सम्मुख रखकर उनके आधार पर आलोच्य भाषा-कवियों ने साहित्य-सृजन किया। पूर्ववर्ती काव्यरूपों का अपूर्व विकास अपनी प्रतिभा के बल पर किया। हिन्दी 'मध्यदेश' की भाषा है जो संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश की उत्तराधिकारिणी केवल भाषा की दृष्टि से ही नहीं, प्रत्युत् साहित्य के विषय में भी है। आन्ध्र प्रान्त की तेलुगु भाषा-वैज्ञानिक दृष्टि से दूसरे परिवार की भाषा होने पर भी साहित्य की दृष्टि से संस्कृत और प्राकृत से पर्याप्त प्रभावित रही है। साथ ही भौगोलिक दृष्टि से समीपस्थ तमिल तथा कन्नड की रचनाओं का प्रभाव तेलुगु पर न्यूनाधिक मात्रा में पडना स्वाभाविक था। अपभ्रंश के उत्कर्षकाल तक तेलुगु साहित्य का भी समानान्तर रूप से विकास हो रहा था और अपभ्रंश साहित्य विशेषतः गूर्जर प्रदेश और हिन्दी प्रदेश तक ही सीमित था। संस्कृत और प्राकृत के समान देश के दक्षिणी प्रान्तों में इसका प्रसार नहीं था। परिवेशगत इस साम्य और अन्तर के अनुरूप महाकाव्य का स्वरूप हिन्दी और तेलुगु में समझा जा सकता है।

भारतीय साहित्य-दृष्टि में महाकाव्य को कवि की कीर्ति का मूलाधार समझा जाता था, क्योंकि मुक्तक रचनाओं से आरम्भ होकर कवि की कला निबद्ध काव्य में परिणति को प्राप्त करती है। प्रकारान्तर से ड्रैडेन, जानसन आदि पाश्चात्य विद्वानों ने महाकाव्य की श्रेष्ठता का प्रतिपादन करते हुए कहा कि इस प्रकार की रचना में विविध शक्तियों की अपेक्षा होती है, जबकि अन्य काव्यरूपों में बहुमुखी प्रतिभा की आवश्यकता नहीं पड़ती।

संस्कृत के आचार्यों ने अपने समय में उपलब्ध काव्य-ग्रन्थों के आधार पर महाकाव्यों के लक्षणों का निरूपण किया था। प्राकृत और अपभ्रंश के सृजनात्मक साहित्य में इन लक्षणों का पूर्ण पालन सम्भव नहीं था, क्योंकि मौलिक प्रतिभा के कलाकार नवीन विशेषताओं को समाविष्ट करने में दत्तचित्त होते हैं, आचार्यों के अंकुश से सर्वथा अनुशासित नहीं होते। हिन्दी के रीतिकाल में केशवदास, भिखारीदास आदि आचार्यों ने काव्य-भेदों की चर्चा ही नहीं की थी, अधिक से अधिक ध्वनि के आधार पर उत्तम, मध्यम और अधम

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

काव्यों की चर्चा अवश्य की थी। हिन्दी की इस प्रवृत्ति के विपरीत तेलुगु के लक्षणग्रन्थों में 'प्रतापरुद्रीयम्' के आधार पर महाकाव्य का लक्षण निरूपित किया गया। इस लक्षण में अष्टादश वर्णनों की सूची उदाहरणसहित प्रस्तुत की गयी। इससे यह अनुमान किया जा सकता है कि आलंकारिकों के एक वर्ग ने इतिहास, पुराण आदि अन्य काव्यरूपों से महाकाव्य को पृथक करने के लिए वर्णनात्मकता को भेदक लक्षण के रूप में स्वीकार किया होगा।

हिन्दी और तेलुगु के कवियों ने परिस्थिति-सापेक्ष रूप में अपनी धार्मिक, दार्शनिक और कलापरक मान्यताओं के अनुरूप कई निबद्ध काव्यों की सृष्टि की है, जिनमें से कुछ को साहित्यिक गरिमा, आदर्श चरित्रों की अवतारणा और वस्तुसंगठन के आधार पर महाकाव्य मानना संगत है। आधुनिक काल में तेलुगु के आलोचकों के द्वारा निरूपित 'प्रबन्ध' नामक विशिष्ट काव्य-विधा और महाकाव्य में मौलिक अन्तर नहीं है। तेलुगु के विशेष सन्दर्भ में इस 'प्रबन्ध' को अनन्तरकालीन महाकाव्य कहा जा सकता है। विकास की प्रक्रिया को स्वीकार करते हुए रामचरितमानस, पद्मावत आदि प्रबन्धकाव्यों को महाकाव्य मानना युक्तियुक्त है, यद्यपि संस्कृत महाकाव्यों से ये कृतियाँ कतिपय अंशों में भिन्न हैं। भिन्न-भिन्न शैली-शिल्प के तथा पृथक् भाषा-क्षेत्रों के बहुत से प्रबन्धकाव्यों को महाकाव्य मानने का आधार उनके शाश्वत लक्षण हैं, जो वस्तु, नेता और रस से सम्बन्धित हैं। देश और काल के अनुसार विकसित बाह्य लक्षणों में स्थिरत्व नहीं होता।

मध्यदेश में हिन्दी के साहित्यारूढ होने से पूर्व कला और साहित्य को राजकीय संरक्षण प्राप्त था। कनिष्क, हर्ष, यशोवर्मा आदि नरेशों के विद्यानुराग के फलस्वरूप सौन्दरनन्द, बुद्धचरित, कादम्बरी, हर्षचरित, गउडबहो, नैषधीयचरित आदि उत्कृष्ट कृतियों की सृष्टि हुई थी। गुणग्राहक प्रभुओं के द्वारा साहित्य को प्रदत्त आलम्बन की यह पूर्व-परम्परा हिन्दी और तेलुगु में अनुस्यूत रही। राजाश्रय ने महाकाव्य के स्वरूप को पर्याप्त प्रभावित किया है।

हिन्दी और तेलुगु में राजाश्रय-विमुख सन्त कवियों का एक वर्ग दृष्टिगत होता है, जिनका उद्देश्य प्राकृत जन गुणगान नहीं था। तुलसी इस प्रकार के महाकवि हैं, जिनको लोकनायक, उदारचेता एवं समन्वयात्मक भावना के कवि कह सकते हैं। इनका महाकाव्य मानस में व्यापक स्तर पर सगुण-निर्गुण, शिव-केशव, भक्ति-ज्ञान के साथ साथ कलासंबंधी मान्यताओं का समन्वय दिखाई पड़ता है। तेलुगु में तुलसी के समान भक्तिमय महान् व्यक्तित्व कविवर पोतन्ना का है। पोतन्ना के भागवत में अतीव मधुर भक्तिकवित्व की अमूल्य निधि है। किन्तु काव्य-रूप की दृष्टि से पोतनाकृत भागवत पुराण है, महाकाव्य नहीं।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

हिन्दी साहित्य का उत्कर्षकाल मुसलमान शासकों के राज्यकाल के अन्तर्गत आता है। इन विदेशी नरेशों के संरक्षण में फारसी भाषा की विदेशी शैली के अतिरिक्त भारतीय शब्दों के अच्छे-खासे प्रयोग से फारसी की एक भारतीय शैली का भी विकास हुआ। साहित्य के क्षेत्र में आदान-प्रदान के फलस्वरूप भारतीय कथाओं के आधार पर फारसी की मसनवी शैली में ऐतिहासिक काव्य रचे गये। कालान्तर में यह परम्परा जायसी, कुतुबन, मंझन आदि प्रेमाख्यान काव्यकर्ताओं को प्राप्त हुई। भारतीय वेदान्त और इस्लाम के समन्वय से रूपायित सूफी साधनापरक रहस्यवाद और इस रहस्यवाद की काव्यात्मक अभिव्यक्ति का श्रेय भारत में मुसलमानी राजसत्ता की सुस्थिरता को दिया जा सकता है। पद्मावत जैसे महाकाव्य के सृजन के लिए प्रेरक परिस्थितियों की उपर्युक्त पृष्ठभूमि उत्तरदायी है।

मुसलमानों की भाषा, संगीत, साहित्य, शिल्प, धर्म आदि का जो समन्वय इस देश की स्वकीय भाषा, संगीत, साहित्य आदि से मध्यदेश में संपन्न हुआ, उस व्यापक पैमाने पर दक्षिण के आन्ध्र प्रान्त में नहीं। यही कारण है कि पद्मावत जैसा महाकाव्य, जिसमें सूफी दार्शनिक विचारधारा को काव्यात्मक अभिव्यक्ति मिली है, इस दार्शनिक पृष्ठाधार के कारण जिसमें प्रतीकतत्व का समावेश हुआ है, जिसपर फारसी की मसनबियों का भी प्रभाव है, तेलुगु में रचा नहीं गया। इस प्रकार हिन्दी में सूफी प्रेमाख्यान काव्यों के सद्भाव और तेलुगु में उनके नितान्त अभाव के लिए इन भाषा-क्षेत्रों में विद्यमान भिन्न राजनैतिक-सांस्कृतिक परिस्थितियाँ ही उत्तरदायी हैं।

अलाउद्दीन, औरंगजेब आदि शासकों के धार्मिक विद्वेष के कारण भारतीय जनता संत्रस्त हो गई तो उस अत्याचारी शासन का विरोध राजपूतों, जाटों और मराठों ने किया था। फलस्वरूप समकालीन एवं अनन्तर-कालीन कवियों ने राजसिंह, सुजानसिंह, छत्रसाल, शिवाजी आदि प्रतापी नरेशों के वीर चरित्रों की अवतारणा करते हुए ऐतिहासिक महाकाव्यों की सृष्टि की। शहबुद्दीन से डटकर मुकाबला करनेवाले पृथ्वीराज चौहान की वीरगाथा के आधार पर रासो सरीखे ऐतिहासिक महाकाव्य की रचना हुई। संस्कृत, प्राकृत आदि अन्य भाषाओं में भी ऐतिहासिक महाकाव्यों की परंपरा दृष्टिगत होती है। इन महाकाव्यों में इतिहास के तथ्यों को कल्पना के अंशों से मिश्रित करके चारुत्व का समावेश किया गया। आन्ध्र प्रान्त में विजयनगर साम्राज्य के पराक्रमी प्रभुओं एवं काकतीय वंश के विख्यात नरेशों ने उत्तर की राजसत्ता का प्रतिरोध करके जनता को सुखमय जीवन प्रदान किया। साथ ही साहित्य,

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

संगीत आदि विद्याओं को प्रश्रय दिया। फलतः कृष्णरायविजय, सिद्धेश्वर चरित आदि ऐतिहासिक महाकाव्यों की रचना हुई।

तेलुगु भाषियों के इतिहास में विजयनगर साम्राज्य का युग वैभवयुग रहा है। इस युग में राजनैतिक सुस्थिरता के कारण जनजीवन सुखपूर्ण था। परिणामस्वरूप संस्कृति एवं साहित्य की श्रीवृद्धि हुई। तेलुगु साहित्य के इतिहास में इसको स्वर्णयुग माना जाता है। महाकाव्य-विधा का भी यह उत्कर्षकाल है। कलात्मक प्रौढता से युक्त त्रिविध शैलियों के महाकाव्यों का प्रचुर रूप में सृजन इस युग की विशेषता है। हिन्दी के भक्तिकाल का भी लगभग यही समय है, जिसको हिन्दी साहित्य का स्वर्णयुग माना जाता है। इस युग ने पद्मावत और रामचरितमानस के रूप में प्रौढ और उत्कृष्ट महाकाव्य हमें प्रदान किये हैं। तेलुगु क्षेत्र में राजकीय संरक्षण के कारण महाकाव्य-सृष्टि हुई तो हिन्दी में एक सूफी सन्त और एक वैष्णव सन्त ने इस काव्य-रूप का संवर्धन किया। पृष्ठभूमि की इस भिन्नता के अनुरूप 'मनुचरित्र' आदि तेलुगु महाकाव्यों तथा रामचरितमानस आदि हिन्दी महाकाव्यों में शैलीगत अन्तर है।

आधुनिककाल से पूर्व के युगों में साहित्य का मेरुदण्ड एवं प्राणतत्त्व धर्म को कहा जा सकता है। कवियों की वृत्ति इष्टदेवता की उपासना, धार्मिक ग्रन्थों के अध्ययन, मनन एवं चिन्तन में खूब रमती थी। महाकाव्य-रचना के लिए स्वीकृत इतिवृत्त और उस इतिवृत्त के निर्वहण पर धार्मिक प्रभाव दृष्टिगत होता है। जायसी ने ईश्वरोन्मुख प्रेम को साहित्यिक अभिव्यक्ति देने के लिए लौकिक प्रेमाख्यान को स्वीकार करके अपने महाकाव्य में प्रतीकतत्व का समावेश किया। तुलसी ने वैष्णव धर्म भावना से परिचालित होकर मानस में आध्यात्मिक सिद्धान्तों की काव्यात्मक व्याख्या प्रस्तुत की। तेलुगु में नन्नेचोड के कुमारसंभव पर कालामुख शैव सम्प्रदाय का प्रभाव वस्तुयोजना एवं वर्णन-विधान में दिखाई पड़ता है। एक आलोचक का यह कथन है कि नन्नेचोड ने कालामुख शैव मत की दार्शनिक विचारधारा को काव्यात्मक रूप देने के लिए ही इस महाकाव्य की रचना की। सम्राट श्रीकृष्णदेवराय की आमुक्तमाल्यदा में स्वीकृत इतिवृत्त वैष्णवधर्म से संबंधित है। कवि ने पात्रों के माध्यम से स्थान-स्थान पर वैष्णव धर्म की श्रेष्ठता का प्रतिपादन इस महाकाव्य में किया है। कविवर धूर्जटी के महाकाव्य का आरंभ 'श्रीविद्या' शब्द से हुआ है। यह शब्द शाक्त साधना में पारिभाषिक शब्द है।

बौद्ध धर्म का प्रभाव आधुनिक भारतीय भाषाओं के साहित्यारूढ होने से पहले ही समाप्त हो चुका था। फिर भी वैष्णव धर्म में उसके कुछ अंश

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

विद्यमान हैं। यही कारण है कि तेलुगु के 'शृंगारनैषध' 'मनुचरित्र' 'पांडुरंग माहात्म्य' आदि के अन्तर्गत दशावतार-स्तोत्र में बुद्ध भगवान की भी वन्दना की गई है। हिन्दी के महाकाव्यों पर जैन धर्म का प्रभाव वर्ण्य-विषय में उल्लेखनीय नहीं है। परन्तु पउमचरिउ आदि जैनों के अपभ्रंश काव्यों के रचना-विधान का प्रभाव मानस, पद्मावत आदि महाकाव्यों पर लक्षित किया जाता है। तेलुगु में जैन कवियों की रचनाएँ आजकल उपलब्ध नहीं होतीं, यद्यपि तेलुगु-प्रदेश पर जैन-प्रभाव इतिहास-विदों ने प्रस्तर-मूर्तियाँ आदि के आधार पर स्वीकार किया है। संभव है कि जैन काव्य धार्मिक विद्वेष के कारण नष्ट कर दिये गये हों। अतः तेलुगु के महाकाव्यों पर जैन धर्म के प्रभाव के विषय में निश्चित रूप से कुछ कहा नहीं जा सकता।

तेलुगु के महाकाव्यों पर संस्कृत के महाकाव्यों और शास्त्रीय मान्यताओं का अपेक्षाकृत अधिक प्रभाव दिखाई पड़ता है। इसका यही कारण प्रतीत होता है कि तेलुगु का अधिकांश साहित्य राजाश्रय में संस्कृत के पण्डित कवियों के द्वारा प्रणीत हुआ है। संस्कृत साहित्य के विपुल प्रचार-प्रसार के अतिरिक्त गीर्वाण वाणी में साहित्य-सृजन के भी उस वातावरण में तेलुगु महाकाव्य का उद्भव, विकास और उत्कर्ष सम्पन्न हुआ। इधर हिन्दी क्षेत्र के कवियों ने भावधारा के लिए संस्कृत साहित्य की ओर देखा है और काव्य के बाह्य रूपों के लिए वे अपभ्रंश की ओर झुके हैं। संस्कृत में शास्त्रपक्ष की प्रधानता तथा प्राकृत-अपभ्रंश में लोक-दृष्टि की प्रमुखता उल्लेखनीय विशेषताएँ हैं।

तेलुगु महाकाव्यों पर संस्कृत के अलावा प्राकृत का भी प्रभाव दृष्टिगत होता है। साहित्यदर्पण के अनुसार महाकाव्य संस्कृत में सर्गबद्ध, प्राकृत में आश्वासबद्ध तथा अपभ्रंश में कुडवकबद्ध होता है। तेलुगु के अधिकांश महाकाव्य आश्वासबद्ध हैं। कन्नड साहित्य के काव्यों में भी आश्वास-विभाजन है। अतः कहा जा सकता है कि तेलुगु एवं कन्नड़ पर आश्वास-विभाजन के रूप में प्राकृत का प्रभाव है। तेलुगु महाकाव्यों में मात्रिक छन्दों के प्रयोग में भी प्राकृत की प्रवृत्ति लक्षित होती है। कुकवि-निन्दा की काव्य-रूढ़ि का जो पालन तेलुगु क्षेत्र में किया गया है उसका भी मूलस्रोत प्राकृत साहित्य है।

आलोच्य भाषाओं के महाकाव्यों में वस्तु प्रायः पौराणिक, ऐतिहासिक तथा लोककथात्मक प्रख्यात स्रोतों से ग्रहण की गयी है। इतिवृत्तात्मक अंशों के साथ मार्मिक प्रसंगों की योजना करके वस्तु को कलात्मक रूप में विन्यस्त किया गया है। रामकथा के आधार पर रचित महाकाव्य उभय क्षेत्रों में मिलते हैं।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

हिन्दी में रामायणेतर पुराणकथाश्रित महाकाव्यों की विरलता है और तेलुगु में हरिवंशपुराण, मार्कण्डेयपुराण, महाभारत आदि से वस्तु ग्रहण करके महाकाव्यों की रचना की गई। अपभ्रंश के कथा-काव्यों से विशेष प्रभावित होने के कारण पृथ्वीराजरासो, रामचरितमानस और पद्मावत में वर्णनात्मकता की अपेक्षा आख्यान-कथन की प्रवृत्ति मुख्य है। रामचन्द्रिका में कथा-कथन गौण और वर्णनों की योजना पर विशेष आग्रह दिखाई पड़ता है, जिसको संस्कृत प्रभाव मान सकते हैं। तेलुगु के पूर्वकालीन महाकाव्यों में आख्यान-कथन को और अनन्तरकालीन महाकाव्यों में वर्णनों को मुख्य स्थान प्राप्त हुआ है।

दोनों क्षेत्रों के महाकाव्यों में प्रायः राम को परब्रह्म रूप में परिकल्पित किया गया है। इसका कारण यही है कि रामकथा के साथ भक्ति भावनाओं के समावेश के उपरान्त आधुनिक भाषाओं में इन काव्यों की सृष्टि हुई। तेलुगु के अनन्तरकालीन महाकाव्यों में युगधर्म के अनुसार पात्र-परिकल्पना शृंगाररस की दृष्टि से की गयी। स्वल्प कथानक और विस्तृत वर्णनों के कारण जीवन के व्यापक पक्ष में चरित्र-चित्रण नहीं हो सका। हिन्दी के प्रेमाख्यानक काव्यों में आध्यात्मिक प्रेमसिद्धान्त के प्रतिपादन के फलस्वरूप प्रतीकात्मक दृष्टि ने चरित्रचित्रण को नियन्त्रित किया है। तुलसी, पिंगलि सूरना आदि प्रतिभाशाली कवियों की कृतियों में सजीव पात्रकल्पना दृष्टिगत होती है।

अलंकार-प्रयोग के विषय में निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि दोनों भाषाओं के महाकाव्य-स्रष्टाओं की कल्पना-शक्ति वैविध्यपूर्ण और उच्च कोटि की है। जीवन के विविध क्षेत्रों से गृहीत अप्रस्तुत कवियों के व्यापक अनुभव और पारदर्शी काव्य-प्रतिभा को प्रकट करते हैं। सांस्कृतिक पृष्ठभूमि की समानता के कारण कवि-समय-सिद्ध उपमान दोनों क्षेत्रों में समान हैं। कुछ काव्यों में सचेष्ट प्रयास के फलस्वरूप और कुछ में अनायास शब्दालंकारों का प्रयोग हुआ है। दोनों स्थितियों में इस परिणति के लिए उत्तरदायी शब्द-साधना प्रकट होती है। संस्कृत साहित्य के मूलस्रोत से अप्रस्तुतों को ग्रहण किये जाने पर भी शिल्प की दृष्टि से हिन्दी और तेलुगु के महाकाव्यों में एक अन्तर है। यह अन्तर शास्त्रीयता और लोकोन्मुखता का अन्तर है।

तेलुगु के महाकाव्यों में प्रायः शृंगाररस के प्रसंग प्रभूत मात्रा में संयोजित हैं। अंगीरस के रूप में अधिकांश महाकाव्यों में शृंगार सुप्रतिष्ठित है। इस प्रवृत्ति का कारण तत्कालीन नरेशों का भोगवादी दृष्टिकोण है और दूसरा कारण संस्कृत महाकाव्यों की परम्परा है। मानस में व्यंजित शृंगार अत्यन्त

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

पवित्र है। पद्मावत, रासो, अपभ्रंश के चरितकाव्य आदि के अनावृत श्रृंगार से यह भिन्न है। हिन्दी के महाकाव्य-साहित्य में वीररसात्मक स्थल अपेक्षाकृत अधिक हैं, यद्यपि तेलुगु में वीररस के प्रसंगों का अभाव नहीं है। दोनों क्षेत्रों के महाकाव्य-वाङ्मय में नवरसों के अतिरिक्त रसाभास और मिश्रित रसों के उदाहरण भी प्राप्त होते हैं।

प्रसंगोचित रूप में छन्दविधान की प्रवृत्ति हिन्दी एवं तेलुगु में समान है। हिन्दी महाकाव्यों में प्राचुर्य की दृष्टि से वर्णिक छन्दों की अपेक्षा मात्रिक छन्द अधिक हैं। हिन्दी की तुलना में तेलुगु क्षेत्र में वर्णिक छन्दों का प्रयोग अधिक है। तेलुगु महाकाव्यों में बहुधा व्यवहृत 'कंदमु' हिन्दी में प्रयुक्त गाथा छन्द से साम्य रखता है, क्योंकि इन दोनों छन्दों का मूलस्रोत प्राकृत साहित्य है। हिन्दी महाकाव्यों में मात्रिक छन्दों की अधिकता और उनकी तुकान्तता अपभ्रंश की लोकोन्मुखी प्रवृत्ति का द्योतक है। तेलुगु महाकाव्यगत श्रुतिरंजकता यतिनियम एवं प्रासनियम के कारण है। तेलुगु के ये नियम अन्य साहित्यों में दिखाई नहीं पड़ते।

हिन्दी में अपभ्रंश काव्यों की भाषा-विषयक प्रवृत्तियों का पालन हुआ है। फिर भी भक्ति आन्दोलन आदि सांस्कृतिक परिस्थितियों के कारण हिन्दी में अपभ्रंश की अपेक्षा तत्सम शब्दों की मात्रा बढ़ती गयी। तेलुगु के महाकाव्यों में कवियों की व्यक्तित्व-भिन्नता के बावजूद भाषा की संरचना एक है। हिन्दी-क्षेत्र में बोली-वैविध्य के कारण संरचना की एकता संभव नहीं थी। हिन्दी में प्रचुर रूप में तद्भवात्मक शैली प्रचलित है तो तेलुगु में संस्कृत-गर्भित भाषा-शैली का प्राचुर्य है। कोमल प्रसंगों में श्रवण-सुखद भाषा तथा उद्धत प्रसंगों में कठोर वर्णों की योजना की प्रवृत्ति दोनों क्षेत्रों के महाकाव्यों में समान है।

आरम्भ से मध्यकाल तक की समयावधि में हिन्दी और तेलुगु के पृथक् भाषा-क्षेत्रों में विकसित महाकाव्य-विधा का इतिहास तुलनात्मक दृष्टि से प्रस्तुत हुआ है। इतिहास में प्रमुख घटनाओं, प्रधान व्यक्तियों एवं मुख्य रचनाओं के आधार पर प्रवृत्तियों की व्याख्या की जाती है, विकास-क्रम पर ध्यान केन्द्रित रहता है और कार्य-कारण सम्बन्ध का अन्वेषण होता है। हर व्यक्ति को समाविष्ट करने का प्रयत्न नहीं होता। इस अध्ययन में भी सभी कवियों और रचनाओं की चर्चा के लिए अवकाश नहीं मिलना स्वाभाविक था। कवियों की व्यक्तिगत रुचि और साहित्य-सृजन की प्रेरक परिस्थितियों में जो अन्तर रहा है, वही आलोच्य महाकाव्यों के स्वरूप में प्रतिफलित हुआ है। साम्य के लिए भारत की सांस्कृतिक एकता उत्तरदायी है। इस प्रकार साम्य और अन्तर

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

यादृच्छिक नहीं हैं। आगे चलकर पाश्चात्य शिक्षा-संस्कारों के प्रभाव से भारतीय महाकाव्य की धारा में एक मोड़ उपस्थित हुआ जो स्पष्ट रूप से बीसवीं शताब्दी के महाकाव्यों में दृष्टिगत हुआ, जैसे छायावादी युग में प्रगीत-तत्व का अधिक समावेश आदि। आधुनिक यांत्रिक सभ्यता, बुद्धिवाद, गद्य की प्रचुरता और मनुष्य के पास समयाभाव ऐसे कारण हैं, जिनको महत्त्व देते हुए वर्तमान युग को महाकाव्य-रचना के लिए उपयुक्त नहीं माना जाता। परिवर्तित परिस्थितियों से महाकाव्य का रूप अवश्य प्रभावित होगा, किन्तु इस काव्य-विधा की रचना समाप्त नहीं होगी।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Pres

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

सं०—193

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh